देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

Impact Factor
7.523

ISSN : 2395-7115
September 2023
Vol.-18, Issue-3(1)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

सम्पादक : डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

Publisher :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 18 **ISSUE-3 (1)** **(सितम्बर 2023)** **ISSN : 2395-7115**

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

शोध–पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के **Arial, Times New Roman** में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी **Email ID : grsbohal@gmail.com** पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज **7x9.5** पर टाईप कराकर **JPG** या **PDF** फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट :

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

सितम्बर 2023

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	10–10
2.	कुमाउँनी लोकसाहित्य के लोकगीतों में जनसरोकार : एक दृष्टि	डॉ. डी.सी. पाण्डेय	11–18
3.	कृषि श्रमिक महिलाएं एवं रोजगार (कुमाऊँ मण्डल के विशेष सन्दर्भ में)	डॉ. श्वेता चनियाल	19–23
4.	ROLE OF VITAMIN K IN THE SUSTENANCE AND WELL-BEING OF HUMAN BEINGS	DIPIKA, Dr. Avadh Narayan Dwivedi	24-30
5.	भारतीय संदर्भ में मानवाधिकार	डॉ. ऋतु कोहली, डॉ. नरेन्द्र कुमार संत	31–39
6.	भारत में महिला सशक्तिकरण एवं शिक्षा	डॉ. डी. जयभारती	40–44
7.	प्रसाद की रंगदृष्टि और हिंदी आलोचना	चुन्नू कुमार	45–51
8.	भारतेन्दु युगीन काव्य में राष्ट्रीयता	राजकुमार सिंगौर	52–54
9.	A STUDY OF ENDANGERED INDIGENOUS 'HO' TONGUE IN THE CONTEXT OF LINGUISTIC HUMAN RIGHTS IN INDIA	Anil Kumar Tiriya	55-63
10.	ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में दलित चेतना	डॉ. सुशील कुमार 'लोहट'	64–73
11.	समकालीन आदिवासी कथा-साहित्य में आदिवासी जीवन दृष्टि	डॉ. संजय कुमार	74–88
12.	संस्कृति के उद्भव और विकास	Sabana Rahman	89-92
13.	नागपुरी भाषा : उद्भव विकास तथा क्षेत्र	सौरभ आनंद बर्मन	93–96
14.	आधुनिक हिंदी कविता में युगीन संदर्भ	सिद्धेश्वर काश्यप	97–101
15.	महापाषाण कालीन संस्कृति : एक ऐतिहासिक अध्ययन	संजीत कुमार दास	102–104
16.	भारतीय परिप्रेक्ष्य में हिन्दी साहित्य और नारी सशक्तिकरण	डॉ. शकुन्तला प्रजापति	105–108
17.	ज्ञानपीठ पुरस्कृत हिन्दी साहित्यकारों में अस्मिता मूलक विमर्श	एमडी मतीन	109–113
18.	प्रकाश मनु के बाल नाटकों में जीवन-मूल्य एवं शिक्षा ('हमारा हीरो शेरू', 'मुझसे दोस्ती करोगे' और 'कहानी नानी की' नाटकों के विशेष संदर्भ में)	अमित कुमार, रमेश यादव	114–119
19.	कवि कुलगुरू कालिदास के ग्रन्थों में नारी चित्रण	डॉ. कविता जैन	120–123

20.	हरिवंशराय 'बच्चन' की कविता में विचलन : शैलीगत अध्ययन	डॉ. सुनील दत्त	124–130
21.	उषा प्रियंवदा 'अल्पविराम' सार्थक जीवन की तलाश में स्त्री यात्रा	रीना नागर प्रो० रश्मि कुमारी,	131–135
22.	मधु कांकरिया के उपन्यासों में निम्नवर्गीय जीवन	नितिन कुमार डॉ० मिन्तू,	136–140
23.	China's Strategy in South China Sea	Saumya Verma	141-146
24.	अर्थावबोधे निरूक्तशास्त्रस्यउपादेयता	जयकिशन नैनानी, प्रो. मनोज कुमार मिश्र	147–153
25.	राधावल्लभ सम्प्रदाय – परिचय एवं परम्परा	प्रोफेसर मधुबाला मीना	154–159
26.	हिन्दी साहित्य में दलित	Dr. Praveen Kumar Mishra	160-163
27.	मानवीय मूल्य : समाज और शिक्षा	डॉ. दारा योगानंद, प्रभाकर झा	164–168
28.	आधुनिकता के परिपेक्ष्य में संस्कार	सरला जांगिड़	169–172
29.	CASE STUDY : SINGAPORE	NIPUNIKA RAJAK	173-176
30.	From Village to Virtual : The Evolution of Rural Youth Identity in Haryana through Electronic Media	Deepika, Dr. Deepika Deswal	177-181
31.	UNLOCKING THE LEGAL FRAMEWORK OF GREEN KEY : ENVIRONMENTAL COMPLIANCE AND SUSTAINABILITY	Dr. Aayushi Pareek	182-196

सम्पादक की कलम से.....

बोहल शोध मंजूषा ज्ञान के खजाने की खोज में एक महत्वपूर्ण कदम है। मानव समाज की तरक्की और विकास में शोध का महत्वपूर्ण योगदान होता है। शोध जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। बोहल शोध मंजूषा, जिसे अक्सर सहभागिता करती रहती। हम सदैव प्रकाशित शोध आलेख के माध्यम से संसाधन के महत्व को समझाने का प्रयास करते हैं। हम विशेषज्ञों, शिक्षार्थियों, और समाज के लिए महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते है। विभिन्न विषयों पर किए गए अनुसंधानों के परिणामों का एक संग्रह सदैव हमारे प्रकाशित अंक में होता है, जिसमें नवाचार, तकनीकी ज्ञान, सामाजिक अध्ययन, और विज्ञान के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जाता है।

बोहल शोध मंजूषा का उपयोग नई और अद्वितीय जानकारी के लिए स्रोत के रूप में किया जा सकता है। यह शिक्षार्थियों को उनके अध्ययनों के लिए सामग्री प्रदान करने में मदद कर रहा है। विशेषज्ञों को नवाचारों का पता लगाने में सहायक हो रहा है। आज विभिन्न विश्वविद्यालयों के शोधार्थी, प्राध्यापक अपने सुझाव/संदर्भो में पत्रिका का उल्लेख करने लगे हैं।

इसलिए, हम सभी को बोहल शोध मंजूषा के महत्व को समझने और उसका सही तरीके से उपयोग करने के लिए इसका सही मूल्यांकन करना चाहिए। यह हमारे समाज और शिक्षा की तरक्की, विकास के लिए एक महत्वपूर्ण साधन है जिसे हमें सदैव सहयोग करना चाहिए। इसके लिए आप अपने मौलिक लेख प्रकाशन के लिए भेजकर अपने परिचितों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

शोधार्थी को लेख लिखते समय निम्न तत्वों को शामिल करना चाहिए :-

1. **विषय चयन :-** एक अच्छा लेख के लिए सबसे पहला कदम है एक दिलचस्प और महत्वपूर्ण विषय का चयन करना।
2. **प्रस्तावना :-** अपने शोध आलेख प्रस्तावना में अनुसंधान के मुख्य उद्देश्य के बारे में स्पष्टता प्रदान करें।
3. **खोज :-** अपने लेख के लिए पूर्व अनुसंधान करें और तथ्यों की पुष्टि करें।
4. **संरचना :-** एक लेख को एक स्पष्ट संरचना में व्यवस्थित करें, जैसे कि प्रस्तावना, मुख्य विषय, तर्क और निष्कर्ष।
5. **रचनात्मकता :-** अपने लेख में रचनात्मक तत्व शामिल करें, जैसे कि उदाहरण, कहानियाँ, और चित्र।
6. **तर्क और प्रमाण :-** अपने विचारों को तर्क और प्रमाण के साथ प्रस्तुत करें, ताकि पाठक से सहमति प्राप्त करने में मदद मिले।
7. **ताजगी :-** आपके लेख को ताजा और रुचिकर बनाने के लिए ताजगी की आवश्यकता होती है।
8. **समापन :-** अपने लेख को एक संक्षेपित तरीके से समापन दें, और पाठकों को कुछ सोचने के लिए छोड़ें।
9. **परिणाम :-** अपने शोध के परिणामों को प्रस्तुत करें, जैसे कि ज्ञान की नई प्राप्तियाँ या विशेषज्ञता के क्षेत्र में आपके योगदान का महत्व।
10. **निष्कर्षण :-** आपके अनुसंधान से प्राप्त किए गए निष्कर्षणों को सारांश दें।
11. **सुझाव :-** अगर आपके पास किसी संदर्भ में सुझाव हैं, तो उन्हें प्रस्तुत करें।
12. **संदर्भ :-** उपयोग किए गए संदर्भों की सूची प्रदान करें।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 11-18

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कुमाउँनी लोकसाहित्य के लोकगीतों में जनसरोकार : एक दृष्टि

डॉ. डी. सी. पाण्डेय

सहा0 आचार्य हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय हल्द्वानी शहर किशनपुर, गौलापार (नैनी0) उत्तराखण्ड–263139

सारांश :–

भारतीय संस्कृति का प्रधान वाहन साहित्य आध्यात्मिकता एवं त्याग से अनुप्राणित, तपस्या से पोषित सदा सर्वदा से जन–मन के सरोकारों को पुष्पित–पल्लवित करता आया है। भारतीय संस्कृति समन्वित संस्कृति के उदात्त स्वरूप को प्रस्तुत करती है। विश्व में जो भी सर्वोत्तम जाना या कहा गया है, इन सबसे स्वयं को परिचित कराना ही संस्कृति है जिसमें मानव मन मस्तिष्क एवं रूचियों का परिष्कार होता है। प्रत्येक संस्कृति की मौलिकता उसे विलक्षण बनाती है। संस्कृति सम्पूर्ण समाज का प्रतिविबिंत रूप होता है। जन्मोपरान्त अर्जित सुसंस्कृति तत्वों को व्यक्ति के आचार–विचार में देखा जा सकता है। संस्कृति रूढ़िगत समझ, प्रत्यक्ष कला और शिल्पकृति की संगठित संरचना हैं, जो परम्परा के माध्यम से बने रहते हुए किसी समाज का सामूहिक परिचय का द्योतक होती है। धर्म भारतीय संस्कृति का प्राण तत्व है। भारतीय संस्कृति में अनेक संस्कृतियों का संगम है जिसमें मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन प्रभावित होता रहता है। समस्त सामाजिक व्यवस्थाएँ धर्म के आधार पर ही निश्चित हुई हैं। मनुष्य का कर्म धर्म पर आधारित है।

बीज शब्द : कूर्म, कुमाऊँ, कुमाउनी, लोकसाहित्य, लोकसंस्कृति, लोकगीत, फोकलोर, देवभूमि, कृषि–पशु, हिमालय।

प्रस्तावना :–

कुमाउनी संस्कृति भी विराट भारतीय संस्कृति की ही एक बहुमूल्य क्षेत्रीय संस्कृति है। जिसमें भारतीय संस्कृति की कुछ मूलभूत विशेषताएँ अपनी कुछ मौलिक विशेषताओं के साथ गतिमान हैं। प्राकृतिक सम्पदा से समृद्ध एवं जैव विविधता को अपने आँचल में समेटे हुए कुमाऊँ हिमालय अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण उत्तरी भारत का वह महत्वपूर्ण भू–भाग है जिसके पूर्वी भाग में नेपाल राष्ट्र पश्चिम में गढ़वाल मण्डल, उत्तर में तिब्बत तथा दक्षिण में उत्तर प्रदेश के तराई–मैदानी जनपद आते हैं। श्रीहरि जी के कूर्मावतार के मौलिक नाम से उद्भावित कूर्मांचल के उद्भव कुमाऊँ मण्डल में वर्तमान में नैनीताल, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, ऊधमसिंह नगर, बागेश्वर और चम्पावत कुल 06 जनपदों का भू–भाग है। ''कुमाऊँ का यह क्षेत्र उत्तरी अक्षांश $28^0$51′ से $30^0$49′ तथा पूर्वी देशान्तर $77^0$43′ से $81^0$31′ के मध्य स्थित है।''[1] इसके मूल निवासियों ने अपने भाषिक, सांस्कृतिक विरासत से अपनी कला एवं लोक संस्कृति के द्वारा इसके लोक साहित्य को जीवंत बनाने में महती

भूमिका का निर्वहन किया है। 'फोकलोर' अर्थात् लोक संस्कृति शब्द सत्ता का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना मनुष्य का इतिहास। ''डब्ल्यू0 जे0 टॉमस ने सन् 1846 ई0 में सर्वप्रथम लोकसाहित्य के सन्दर्भ में इसका उपयोग अंग्रेजी में किया था।''[2] एक समान निवास, भाषा, बोली, धर्म, जीवन यापन भौली, प्रथा, परम्परा एवं विश्वास का अनुगमन करने वाले समूह अपनी कला, कृषि एवं व्यवहार के मानकों के लिए जिस व्यवस्था के अन्तर्गत संचालित होता है वहीं लोक समाज है।

मूल शोधालेख :-

कुमाऊँ के मैदानी क्षेत्रों यथा ऊधमसिंह नगर, नैनीताल का तराई–भाबर का अंश, चम्पावत का मैदानी क्षेत्र छोड़कर शेष तीनों जनपदों अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ एवं बागेश्वर के सुदूर ग्राम्यांचलों की जनभावना का प्रकाशन जिन लोकगीतों के माध्यम से होता आया है वह कुमाउनी भाषा–बोली की अभिव्यक्ति है। चूँकि लोकसाहित्य का मूलाधार कंठ–कर्ण परम्परा है तथापि किसी क्षेत्र के समूचे लोक साहित्य को लिपिबद्ध करना सरल कार्य नहीं है। भौतिकवादी चकाचौंध तथा वैश्वीकरण की आँधी में हम लोकसाहित्य को या तो विस्मृत करते जा रहे हैं या उसमें बाजारू मिश्रण का गड़बड़झाला कर बैठे हैं। ''इंटरनेशनल इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज (1968 विलियम वास्कॉम) की परिभाषा के अनुसार वाचिक या मौखिक परम्परा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी हस्तान्तरित किया जाने वाला समस्त ज्ञान लोकसाहित्य की श्रेणी में आता है।''[2] किसी भी समुदाय की साझा विरासत चाहे वह लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकवाद्य, लोकाभूषण, तर्कोपचार विधि, लोकनाट्य, नौटंकी, राम–रास लीला या फिर लोकपरम्परा के विभिन्न उपादानों का किसी भी रूप में प्रकटन को लोक साहित्य की परिधि में देखा जा सकता है। लोक साहित्य वस्तुतः परिनिष्ठित साहित्य की प्रेरणा बनता है। शिष्ट साहित्य की बहुत सी कथावस्तु पूर्वरूप में हमें लोकसाहित्य में मिलती रही है, रामायण और महाभारत इसके प्रबल प्रमाण हैं। ''हिन्दी में लोकवार्ता या लोकसाहित्य का फोकलोर शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग डा0 वासुदेवशरण अग्रवाल ने किया।''[3] लोकमानस की अकृत्रिम अभिव्यक्तियुक्त लोकसाहित्य का रचयिता तथा रचनाकाल अज्ञात रहता है। अर्द्ध–अल्पशिक्षित तथा निरक्षर समाजों में लोकसंगीत गीत मौलिक रूप में सुने जा सकते हैं।

आज लोकसाहित्य का उपयोग व्यावसायिक सिनेमा, नाटकों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों, रेडियो, टेलीविजन, धारावाहिकों, राजनेताओं के सम्बोधन, शिक्षण समुदाय और प्रशासकों द्वारा खुलकर किया जा रहा है। हिन्दी लोकसाहित्य के मर्मज्ञ डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा है कि ''लोक साहित्य उस निर्मल दर्पण के समान है जिसमें जनता–जनार्दन का अलिखित तथा विराट स्वरूप पूर्णरूपेण दिखाई पड़ता है। लोक संस्कृति का दिव्य तथा अकृत्रिम प्रतिविम्ब इस साहित्य में उपलब्ध होता है। उसका दर्शन अन्यत्र कहाँ।''[3] वास्तव में लोकसाहित्य की गंगा कभी नहीं सूखती है।

''ई0टी0 एटकिन्सन के गजेटियर में उल्लेखित तथ्यों को चुनौती देने वाला नवशोध कार्य अद्यतन प्रकाश में आता नहीं दिखता जिस आधार पर कहा जा सके कि कुमाऊँ हिमालय का प्रामाणिक सांगोपांग समीक्षात्मक नवशोधपरक अध्ययन लोकार्पित हो गया हो।''[3] लोकसाहित्य किसी समाज के समृद्ध पृष्ठभूमि से परिचित होने का सरल माध्यम है। सांस्कृतिक इतिहास के परिप्रेक्ष्य में लोक साहित्य का महत्व बताते हुए डा0 कन्हैयालाल सहल ने लिखा है– ''सांस्कृतिक इतिहास की सामग्री तो लोकसाहित्य में ही सुरक्षित रहती है, लोक साहित्य उस गंगोत्री के समान है जो कभी सूखती नहीं है।''[4] लोक साहित्य के इतिहास में अनेक कड़िया विद्यमान रहती हैं

और उसमें इतिहास का सांस्कृतिक पक्ष सर्वथा सुरक्षित बना रहता है। सामाजिक, सांस्कृतिक पक्ष सर्वथा सुरक्षित बना रहता है। सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से कुमाउनी संस्कृति से अभिप्रायः प्रमुखतया कुमाउनी भाषा–बोली का प्रयोग करने वाले लोक जन समुदाय से है। यूँ तो कुमाऊं क्षेत्र में सिख, इसाई, मुस्लिम, थारू, भोटिया, बनरौत, बोक्सा, बंगाली समुदाय भी अत्यल्प संख्यामें विद्यमान हैं, किन्तु मूल निवासी कुमाउनी भाषा–बोली के प्रयोक्ता ही हैं। यह समाज पुरूष प्रधान है। कृषि–पशु आधारित जीवन, संयुक्त परिवार, लोक विश्वास, स्थानीय पर्व–उत्सव–त्यौहार, लोककला, धार्मिक भावना, प्रकृति पूजा, आदि इस संस्कृति की प्रधान विशेषताऐं हैं। जिनमें समय के साथ परिवर्तन देखे–महसूस किये जा सकते हैं।

लोक साहित्य ही लोक संस्कृति की आत्मा है तथा कुमाउनी लोकसंस्कृति की आत्मा साधारण कुमाउनी जनमानस में समाहित है। जो कुमाउनी संस्कृति के जीवंत, जाग्रत प्रहरी हैं। कुमाउनी लोक हृदय में स्पंदन करने वाले भावों की सुर, लय एवं शब्दों के साथ अभिव्यक्ति ही लोकगीत है। लोकगीतों में उन आदिम प्रवृतियों की अभिव्यक्ति होती है जो हमें हमारे पूर्वजों से दायरूप में प्राप्त हैं तथा ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में अद्वितीय प्रगति के उपरान्त भी समय–समय पर लोककंठ से प्रकट होती रहती है, जो कि मानवीयता, अंधविश्वास, रहस्य, रोमांच तथा रूढ़ियों के साथ स्वास्थ्य परम्पराओं को भी व्यक्त करती आई है इसी कारण विशेषज्ञों ने लोकगीतों को स्वतः स्फूर्त एवं असभ्य तथा अर्द्धसभ्य मानस की उपज कहा है। कुमाउनी लोक संस्कृति के अन्तर्गत मानव मन की सहज–सरल अभिव्यक्ति लोक–गीतों में हुई है। इसमें कृत्रिमता और यांत्रिकता के लिए स्थानाभाव है। सरल गीतों की सरल अभिव्यक्ति ही लोक–गीतों की आत्मा है। कुमाउनी लोकगीत मानव जीवन के लोकगीत हैं। हर्डर ने कहा है कविता का जन्म आदिम मनोभावों के प्रकृत प्लावन में हुआ है यह टिप्पणी काव्य एवं लोकगीत दोनों संदर्भ में सार्थक है। इनसाइक्लोपीडिया आफ ब्रिटेनिका ने लोकगीतों के सम्बन्ध में कहा है– ''लोकगीत, नाम व्यक्तिहीन रचना होती है, जो कि शुद्ध रूप से मौखिक परम्परा में जीवित रहती है। लोकगीत न तो नया होता है न ही वह पुराना। वह जंगल के वृक्ष के समान है, जिसकी जड़ें–भूतकाल की जमीन में गहरी समाई हुई हैं, परन्तु उसमें निरन्तर नई–नई डालियाँ, पल्लव ओर फल उगते रहते हैं।''[5] लोकगीतों का कोई विशेष गीतकार नहीं होता। वह सामूहिक रचना होती है। जब तक कोई रचना लिपिबद्ध नहीं होती तब तक लेखक का महत्व नहीं होता है और वह रचना परिवर्तित होती रहती है समय के साथ–साथ। लोकगीत का रचनाकाल अज्ञात होता है, समय के साथ उसमें नई पंक्तियां जुड़ती चली जाती हैं। आशु रचना एवं पुनरावृत्ति सहित तत्कालीन समाज में जिन विषयों को प्रत्येक व्यक्ति जानता रहता है लोकगीत में उनका ही उल्लेख होता है। अज्ञात गीतकार सामूहिक भावभूमि पर सहजता एवं अकृत्रिमता के साथ स्वतः स्फूर्त भाव प्रस्फुटन करता हुआ चलता है। लोकप्रियता मौखिक परम्परा, नामोल्लेख, प्रश्नोत्तर प्रवृत्ति तथा स्वच्छन्दतापूर्ण गेयता, रसभरे संगीत एवं लय के साथ इनमें उपदेशात्मक भाव भी देखा जा सकता है।

कुमाउनी लोकगीतों में भी देश काल की आत्मा की पुकार सहजता के साथ सुनी जा सकती है। जिस प्रकार संसार में समग्र वस्तुओं का उद्‌गम धूमिल एवं रहस्यमय है उसी प्रकार कुमाउनी लोकगीतों के जन्म की कहानी भी गोपनभाव युक्त है। लोकगीतों का सृजन हर्ष–विशाद, की भावोभूमि पर ही देखा गया है। कुमाउनी लोकगीत यहाँ के जनजीवन का प्रतिविम्ब है। इन लोकगीतों को सुनकर लगता है कि वास्तव में लोकगीतों को प्राकृत काव्य क्यों कहा जाता है। प्रकृति के गीत ही लोकगीत है। प्रकृति ने सतरंगी लोकधुनों से लोकगीतों को

सजाया है। प्रकृति स्वयं संगीतमय है इसलिए लोकगीतों का संगीतमय होना स्वाभाविक है।

कुमाउंनी लोकगीतों की स्वच्छन्दता, सरलता एवं उसकी मर्मस्पर्शी शब्दावली बरबस ही पाठक का मन मोह लेती है। इन लोकगीतों में लोकमन की एकात्मकता की भावना प्रच्छन्न रहती है। कुमाउंनी लोकगीतों की मधुरिमा सीमित नहीं बल्कि जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्र के साथ ही वह जीवनेत्तर है। कुमाउनी लोकगीतों को सरलता की दृष्टि से प्रमुखतया निम्न उपश्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1.	देवी–देवता व पूजन के गीत	2.	संस्कार के गीत
3.	वैवाहिक/मांगलगीत	4.	कृषि गीत
5.	ऋतुगीत	6.	प्रेम गीत
7.	विरह के गीत	8.	मेले, त्यौहारों, उत्सवों के लोकगीत
9.	छपेली	10.	न्यौली
11.	जोड़	12.	झोड़ा
13.	चाँचरी	14.	होलिका गीत
15.	बैर–भगनौल लोकगीत	16.	बालगीत
17.	स्वदेश गीत	18.	राज्य निर्माण के लोकगीत
19.	जागर लोकगीत गाथाएं	20.	घनेली लोकगीत गाथाएं
21.	बैसीगीत	22.	जातियों के गीत
23.	वीरगाथा के गीत	24.	बारहमासा गीत
25.	जोग–बैरागी गीत	26.	तन्त्र–यन्त्र गीत
27.	आँठ के लोकगीत	28.	प्रकृति के लोकगीत

कुमाऊं को देवभूमि भी कहा जाता है। इस कारण यहां के लोकगीतों में देवस्तुति, अतिमानवता, सामाजिक चेतना तथा जन जागृति के स्वर सुनाई देते हैं। गरीबी, निर्धनता, कुपोषण, युद्ध, देश–प्रेम, अन्धविश्वास, भूत–पिशाच, तन्त्र–मन्त्र, जादू–टोना, भूख, अकाल, वर्षाधारित कृषि जीवन, पर्यावरण प्रेमातुरता सहित विषम भौगोलिक परिस्थितियों के मध्य फिर भी हँसते हुए जीवन के गीत यहाँ के नर–नारियों द्वारा गाये जाते रहे हैं। कुमाउनी संस्कृति के लोकगीत जन जाग्रति के प्रतीक हैं। इनमें गाँवों, खेतों, खलिहानों की अमिट छाप व मधुमय सुगन्ध है। प्रेम की बसन्ती बयार से भीगीं सावन की रिमझिम लड़ियाँ हैं। भारद की सुनहरी शशि रश्मियाँ हैं। अपनी जन्मभूमि की विशाल–गहन संस्कृति, गौरवमय इतिहास तथा मानवता से ओत–प्रोत चेतना की लोक धुन–ध्वनि कुमाउनी लोक गीतों में यत्र–तत्र सर्वत्र विस्तीर्ण है। यही कुमाउंनी लोकगीत हमें अपनी सभ्यता के अतीत की संस्कृति का स्मृति भान कराते हैं ये लोकगीत अमिट, अजर, अमर हैं। लोकगीतों की बासमती सुगन्ध के अभाव में लोकसाहित्य की लोक सांस्कृतिक वाटिका सूनी–सूनी व हरितिमा रहित है। कुमाउनी लोकगीत मानव जीवन का सप्राण काव्य है जो अविरल गतिमान चक्र है। यह गढ़–अनगढ़ शैली–शब्दों में कर्ण परम्परा से प्रवाहित होती आई है। यदि सही मायने में इनका रसानन्द लेना है तो वह ठेठ गाँव के मेलों–खेलों, तीज–त्यौहारों, शादी–बारातों, प्रथा–परम्पराओं में देखे–सुने जा सकते हैं उनमें मात्र बाजारवाद की चासनी में भिगोकर परोसे गये शब्दाडम्बर के दर्शन नहीं होंगे–

देवी स्तुति का उदाहरण दृष्टव्य है–

ओ हो खोल दे माता खोल भवानि धरमा किवाड़ा, ओ हो के ल्यै रै छै भेट पखोवा के छू तेरि सेवा द्वि ज्वाड़ा निशाण ल्यायूँ तेरो दरबारा.....

''देवी धुरा भवानी माँ मेरि धरि दियै पति। ये आषाड़ी कौतिका में फूल चढ़ौनू पाती।।''[6]

कृषि–पशु आधारित लोक जीवन से समृद्ध कुमाउनी संस्कृति में लोकगीतों में उसे विस्मृत कैसे किया जा सकता है–

''हौले, हौले, हौ, हौले बल्दा हौले हो।
गैला गिवाड़ की सैल्या बल्दा, हौले हौले हौले हौं
कमोला धमोला बै सींग लै–ल्यायै, धणियाकोट बै पुठि मे ल्यायै
स्यैण कत्यूर बै सैल्या बल्दा, रंगीली बैराठ बै सैल्या बल्दा
हौले बल्दा हौले हो, हौले बल्दा हौले हौले हौं।''[7]

किसान एवं बैल के मध्य यह भाव सम्प्रेषण कितना मधुर आत्मीय है इस कुमाउनी लोकगीत में कृषि संस्कृति की विरासत, पशु–प्रेम संरक्षण सहित चित्रित किया गया है। चौखुटिया गिवाड़, माँसी, चौकोट, कमोला–धमोला, रामनगर, धनियाकोट, बेतालघाट, कत्यूर एवं बैराठ की उपजाऊ भूमि का हवाला देकर हलवाहा किसान बैलों को प्यार की उलाहना पुचकार के साथ खेत जोतता चलता है।

कष्ट एवं श्रमसाध्य संघर्षपूर्ण कुमाउनी लोक जीवन का चित्रण देखते ही बनता है जहाँ प्रकृति के सुन्दर वर्णन के साथ ही लोकगीत में जीवन के गीत गाते गुनगुनाते चलने की परम्परा संवेदनात्मक प्रस्तुति है–

डाँसि लागछँ घाम कसैलो मेरि हौसिया बिन, हिट नरैणाँ स्योव भैटून पाल गध्याारा छिन।
चटकैली य घाम निगुरा, य जेठा का दिन, असमानीझलैंन गोरू की सुकि गेछ कचिन।
डॉसि लणछँ .....।

कृषि प्रधान स्थानीय समाज का जनजीवन लोकगीतों में कदम–कदम पर सुनाई पड़ता है। धान की रोपाई–मडुवा–मादिरा की गोढ़ाई के सहकारितापरक समापन का यह लोकगीत किसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित नहीं करेगा–

तुमरी सेरी में रोपाई है रेछ हो हरू हिट। नौ बिसी रोपार छै बीसी तोपार।.....
बाल गोरी बल उठनी बाढ़ चंपावत ही, गैला गदार हो हर हिय सैला सिमार
गण चंपावत जगण लागि।.....
वाल धारा मुरूली बाजि रे, माल धारा सुणी छ, नैनुऑ छुम, नैनुऑ दोराई नैनुऑ छुम
मलि बटि बगी ऐगा चॉदी का त्रिशूला, इतु गलती हैगै नैनुऑ न पड़ो इस्कूला–नैनुऑ छम।

कुमाउनी लोकगीतों में गीत, संगीत एवं नृत्य की त्रिवेणी के मध्य पाठक, श्रोतागण, एक नये सुखद अनुभूति के साथ स्वयं को उनके मोहपाश में बंधा पाता है–

हई हई हई सुपारी खई, खई, सुण माया, क्या रामरो घाम लागौ छौ।
द्वि तारि को तारा सुआ द्वि तारि को तारा, जी रया बची रया यो धरती की चारा।

पलायन कुमाउनी समाज की शाश्वत समस्या रही है जो कभी शिक्षा, कभी रोजगार तो कभी स्वास्थ्य के

कारणों से अपना रूप बदलता रहता है। कैसो रहा होगा वह दृश्य जब शिक्षा, सड़क, संचार की प्राथमिक सुविधाओं से दूर ससुराल में सास ससुर की सेवा में कृषि–पशु की दिनचर्या में अपना जीवन खपा देनी वाली बहू–बेटियाँ, प्रोषित पतिकाएं। विवाह से पूर्व वह अपने पिता से निवेदन कर रही है कि छाना बिलौरी मेरा विवाह–ससुराल मत करना, बाबूजी वहाँ बहुत श्रमसाध्य जटिल जीवन है, धूप असहनीय लगती है वहाँ–

झन दिया बौज्यू छाना बिलौरी, लगाला बिलौरी का घामा।
हाथै की दातुली हाथै रै जाली, लागला बिलौरी का घामा।।

विरहन की भावना को लोकगायक गोपालबाबू गोस्वामी ने कितने करूण स्वर में सजाया है, कैसा मार्मिक भाव प्रेषण है–

कैले बजें मुरूली ओ बैना, ऊँचा–ऊँचा डाँड़यूँ माँ
मैरा मैते कि भगवती तू दैणा है जैये, कुशल मंगल म्यारा स्वामी घर लैये
नड़ारा निशाणा चाडूला देवी मैं त्यरा थान माँ, स्वामी मेरा परदेशा ऊ जैंरीं लाम माँ
पंचनामा देवों तुम सुणि लियो धाता, भूमि का भूमिया देवा धरि दिया लाजा
गावे की चरेउ माला सब तेरा हाथा।

कुमाउनी लोकगीतों में पर्यावरणीय चेतना के स्वर प्रभावशाली रूप में देखने को मिलते हैं–

सरकारी जंगल लछिमा बाँजा, नि काट लछिमा बाँजा नि काट,
यो हमारा धुर जंगला बाँजा, नि काट लछिमा बाँजा नि काट।
ओ धन धनुली धना, बाँजा काटियेझन, अखौड़ै की डाई धना, कॉ मिलली ठंडी हवा
का मिललै पॉणि, बाजा काटिये झना, डालि वोटि के तू मानिये, जस घरू का नाना तिना।
नी काटो नी काटो झुबरयाली बाजा, सरकारी जंगल लछिमा बाँज नि कट
''पारा का भीड़ा को छै घस्यारी मालू वे तू मालू नि काट।''[7]

कुमाउनी लोकगीतों में श्रृंगार की छटा–फुहार देखिए जरा –

पारे भीड़ैकि बसन्ती छयोड़ी रूमाझुमा। पार भीड़े कि मेरी माया रूमा झुमा
(जो0) पाणि को मसीकौ भागि पाणि को मसीका। तुम जाला तलि हुणी मै रूलो कसिका।
ईस्कुली लौडौलै म्यरो डारा घुरयाये सिना। धन सिंग पतरौवा म्यरो डालो घुरयायों सिना।।
(जो0) द रे घट बुजी बाना घट बुजी बाना, पटि में पटवारि हुं गौं में हुं पधाना
आब जै के हुँ छै खड़यूणी बुड़ियैकि ज्वाना, ईस्कूली लौड़ौलै म्यरौ डाला घुरयायो सिना।।

हास्य व्यंग्य की झलकी से भला कौन अछूता रह सकता है, कलियुग की जो माया है –

रख दे सासु रख दे होटल में खाने को, आम रस्ता छोड़ दे बम्बई जाने को
बम्बई जैबेरा रेलमा बैठूलो, सासु का अनाड़ा तेल में भुटुलो।।

नायिका का आशंकित मन पति को युद्ध में न जाने के लिए निवेदन करता है बड़ी मुश्किल से तो छुट्टियाँ मिली हैं आपको, फिर उस पर देखिए गेहूँ की फसल खड़ी है–

हरी भरी ग्यूँ की सेरी स्वामी नि जाओ लड़ाई मा मेरा स्वामी।
चार दिन ब्या का भया, स्वामी नि जाओ लड़ाई मा मेरा स्वामी

गरूड़ा भरती कौसानी ट्रेनिंग। देश का लीजिया लड़े में मरूलो।
बार वर्षों की कमला, स्कूल हुनेली। आठ बरसा का हेमुआ स्कूल हुनौलो।
देश का लीजिया लड़े में मरूलौ।

शोधपत्र लेखन विधि :-

कुमाउनी साहित्य लोक साहित्य और संस्कृति की परिसीमान्तर्गत समाहित यहाँ के लोकगीतों में जनमन की धड़कनों, स्पंदनों को आम अवाम की वाणी में प्रतिध्वनित होते नई पीढ़ी को सुनाने–समझने का एक लघु प्रयत्न है। इसमें पूर्ववर्ती सम्बन्धित उपलब्ध साहित्य, विशेषज्ञ एवं नवसम्भावनाओं के खुलते किवाड़ों से दिखती रोशनी में डिजिटल तकनीक के सहयोग के साथ बाल स्मृतियों, किशोर एवं छात्र जीवन के ग्राम्यांचलीय दुधिया अनुभवों को भी समावेशित किया गया है।

उद्देश्य :-

लोकगीतों के नाम पर फूहड़ता एवं अश्लीलता की घनेरी धुंध के कुहासे से मूल लोकभावना को लोकगीतों के संरक्षण द्वारा सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया है। वैश्वीकरण के बयार से बचा नहीं जा सकता परन्तु मौलिकता का परित्याग किये बिना आधुनिकता का लोकराग कैसे पल्लवित–पुष्पित हो सकेगा। इस ओर ध्यानाकर्षण का प्रयास मात्र है।

निष्कर्ष :-

सारांशतया कह सकते हैं कि लोकगीत पूर्णतया लोक की ही सम्पत्ति होते हैं। लोकगीतों का सम्बन्ध सीधे–सादे, भोले–भाले, निश्छल लोगों से होता है। कुमाउनी लोकगीतों में भी बुद्धि की नहीं हृदय की प्रधानता दृष्टव्य है। हिमालय के आँगन के लोक गीत, पर्वत शिखरों, गहरी घाटियों, झील, झरनों, सरिता, स्रोतों के मध्य जीवन का राग सुनाते हैं। इधर नवीन परिस्थितियों ने पारम्परिक जीवन को प्रभावित किया है। भूमण्डलीयकरण की किरणों ने लोकसाहित्य के लोकगीतों की मौलिक उद्भावनाओं को प्रभावित किया है तथापि लोक तो लोक ही है। कुमाउनी लोकगीतों की अमृत धारा अविरल प्रवाहमान है नवोदित लोकगायकों ने इसे नये कलेवर के साथ लोक जन–मन के सम्मुख प्रस्तुत करने का पुनीत कार्य किया है।

कुमाउनी लोक साहित्य के लोकगीतों में जितनी भी वीर गाथाएं प्रणय विरह, पर्यावरण, रीति परम्परा के गीत हैं उनकी भूमि में आंशिक रूप से राजनीतिक और सामाजिक मान्यताओं के द्वन्द रहे हैं। कश्मीर से असम तक विस्तीर्ण हिमालयी परिक्षेत्र की अपनी एक सुदीर्घ एवं समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा रही है। कुमाऊं हिमालय भी विविधता में एकता के लघु भारत के मनोहारी स्वरूप के साथ अपनी पहचान प्रमाणित करता है। चिर–परिचित शब्दाक्षर, चिर–परिचित बातें–बहाने, चित–परिचित स्वर संगीत, सुर कुमाउनी लोकगीतों की अदम्य शक्ति है। जब तक जीव है इन लोकगीतों की अमृत धारा भी अनंतकाल तक प्रवाहित होती रहेगी। कुमाउनी लोकगीत यहाँ के जीवन का महाकाव्य हैं। अपनी अस्मिता के साथ गौरवमयी परम्परा एवं राष्ट्रीय एकता की मुख्य धारा में अपनी आहुति देने वाला कूर्मांचल अंग्रेज व गोरखालियों के आने तक स्वतंत्र रहा। इसके कुशल प्रबन्धन पर अठकिन्सन ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है "I can therefore thoroughly put this account forward as an unique record of the civil administration of a hill state untaintes almost by any foregin admixture, for until the Gorkhali conquest and subsequently the British occcutpation kumaon was always independent."[8]

संदर्भ सूची :-

1. जोशी, पाण्डे एवं दुबे : कुमाऊँ की सांस्कृतिक विरासत, प्राक्कथन, देवभूमि प्रकाशन, हल्द्वानी, प्र0स0, पृ0सं0 05
2. एल0एस0 मिश्रा, स0–नि0स0 : समाज और लोक साहित्य, ग्लोवल विजन, इलाहाबाद, पृ0सं0 101
3. जैन, कुलश्रेष्ठ एवं चतुर्वेदी, हि0नि0 लोक साहित्य स्वरूप और महत्व, उपकार प्रकाशन, आगरा–2, पृ0सं0– 51
4. बिष्ट शेर सिंह, कुमाऊँ हिमालय समाज एवं संस्कृति, भूमिका, गोपेश प्रकाशन, अल्मोड़ा, प्र0स0, 1999, पृ0सं0–2
5. पाण्डेय आनन्दनारायण, लोक साहित्य के सिद्धान्त एवं भोजपुरी साहित्य, राजेन्द्र पब्लि0 गोरखपुर, पृ0सं0 43–44
6. शाकुनी दिवान सिंह : उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक धरोहर, कुमाउनी लोकगीत संकलन, कुमाउनी साहित्य प्रकाशन, हल्द्वानी (नैनीताल), पृ0सं0 36
7. जोशी, पाण्डे एवं दुबे, कुमाऊँ की सांस्कृतिक विरासत, कुमाऊँ में प्रचलित कृषि गीत, देवभूमि प्रकाशन, हल्द्वानी, नैनीताल, पृ0सं0 98
8. पाण्डे बद्रीदत्त कुमाऊँ का इतिहास, श्याम प्रकाशन अल्मोड़ा स0 1990–1997 चंदों की कर नीति, पधान, पृ0सं0 373

डॉ. डी.सी. पाण्डेय, सहा. आचार्य

राजकीय महाविद्यालय, हल्द्वानी शहर, किशनपुर गौलापार, हल्द्वानी (नैनीताल)

जनपद : नैनीताल–उत्तराखण्ड

पिन : 263139

drdcpandey3075@gmail.com

सचल दूरभाष सं0– 94111319412

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 19-23

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कृषि श्रमिक महिलाएं एवं रोजगार

(कुमाऊँ मण्डल के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. श्वेता चनियाल

सहायक प्राध्यापक, अर्थ शास्त्र विभाग, परिसर अल्मोड़ा, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

शोध सारांश :-

अर्थव्यवस्था में कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं हैं जहाँ पर महिलाएँ कार्य नहीं कर रहीं है चाहे वह क्षेत्र संगठित हो या असंगठित है, कृषि जो कि अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण क्षेत्र है वहाँ पर भी महिलाएं संलग्न रहती है, कृषि में रोजगार के अतिरिक्त महिलाएं वर्ष के अन्य दिनों में गैर कृषि कार्यों में भी संलग्न है। प्रस्तुत शोध पत्र कृषि श्रमिक महिलाओं जो कि उत्तराखण्ड के कुमाऊँ मण्डल के तराई सम्भाग में कृषि में रोजगार में संलग्न है कि स्थिति को स्पष्ट कर रहा है साथ ही उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डालने के साथ उनके रोजगार का स्तर उनकी समस्याओं के निदान हेतु सुझाव भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द – 1. कृषि श्रमिक 2. रोजगार 3. आर्थिक व सामाजिक स्थिति 4. समस्याओं।

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ पर आज 54 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य में संलग्न है। कृषि का कार्य श्रम प्रधान तकनीक पर आधारित होने के कारण कृशि क्षेत्र में कृषि श्रमिकों का महत्वपूर्ण स्थान है। पुरूष श्रमिक ही नहीं अपितु महिला श्रमिक भी कृषि क्षेत्र में संलग्न रहती है। जनगणना 2011 के अनुसार कृषि श्रमिक उस व्यक्ति को माना जाता है जो कि मुद्रा अथवा वस्तु के रूप में मजदूरी प्राप्त करने के लिए दूसरे व्यक्ति की भूमि पर कार्य करता है जिसका कृषि का कोई जोखिम नहीं होता वह मात्र मजदूरी पर कार्य करता है। कृषि श्रमिक जिस भूमि पर कार्य करता है उस पर उसका कोई अधिकार नहीं होता है (मिश्रा : 2022 : 154) राष्ट्रीय श्रम आयोग के अनुसार कृषि श्रमिक वह है जो कि मूलतः असंगठित एवं अकुशल है जिसके पास जीविकोपार्जन के लिए श्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता ऐसे श्रमिकों की आय का अधिकांश भाग खेती से प्राप्त आय पर निर्भर करता है। भारत में कृषि श्रमिकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है जो कि तालिका के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

तलिका –1

भारत में कृषि श्रमिकों की संख्या (लाख में)

क्र. सं.	वर्ष	संख्या	क्रम	वर्ष	संख्या
1	1881	75	6	1961	320
2	1891	187	7	1971	480
3	1911	216	8	1981	555
4	1921	210	9	1991	747
5	1951	280	10	2001	1074

स्रोत – Indian Journal of Research Paripex Issue : 3, Vol. 6 March-2017

" Socio economic conditions of agricultural Labour in India"

वर्ष 2011 में कृषि श्रमिकों की संख्या बढ़कर 10.7 करोड़ हो गयी थी। कृशि श्रमिकों की वृद्धि के अनेक कारण है जिसमें जनसंख्या की तीव्र वृद्धि होना, जोतों का अनार्थिक होना, कृषि की अनिश्चिता होना, गरीबी एवं ऋणग्रस्तता में वृद्धि हैं। ये श्रमिकों के द्वारा निम्न मजदूरी की दरों में भी काम किया जाता है क्योंकि जीविका का साधन कृषि एवं उससे सम्बन्धित कार्यों में संलग्न रहते है। महिला श्रमिक में गतिशीलता का पूर्णतः अभाव पाया जाता है इसलिए श्रमिक महिलाएं निम्न मजदूरी की दरों में भी कार्यों में लगी रहती है।

प्रथम जाँच समिति के अनुसार कृषि श्रमिकों में पुरूष श्रमिक को वर्ष में 218 दिन का रोजगार प्राप्त होता है जिसमें से 189 दिन कृषि एवं 29 दिन गैर कृषि क्षेत्र में का रोजगार प्राप्त होता है व महिला श्रमिक को 134 दिन का रोजगार प्राप्त होता है (ममोरिया व त्रिपाठी : 198 : 162)।

प्रस्तुत शोध पत्र राज्य उत्तराखण्ड के कुमाऊँ मण्डल में स्थित तराई क्षेत्र से सम्बन्धित है। उत्तराखण्ड हिमालयी क्षेत्र में बसा राज्य है जो कि 09 नवम्बर सन् 2000 में अस्तित्व में आया इससे पहले यह राज्य उत्तर–प्रदेश का ही अंग है। (1) कुमाऊँ मण्डल एवं (2) गढ़वाल मण्डल।

कुमाऊँ मण्डल में 6 जनपद है जिसमें जनपद अल्मोड़ा, बागेश्वर, चम्पावत, नैनीताल, पिथौरागढ़, उधमसिंह नगर है और गढ़वाल में 7 जनपद है जिसमें जनपद चमोली, रूद्रप्रयाग, देहरादून, टिहरी गढ़वाल, हरिद्वार, पौढ़ी गढ़वाल, उत्तरकाशी है इस प्रकार कुल 13 जनपद राज्य में स्थित है।

अध्ययन क्षेत्र जनपद ऊधमसिंह कुमाऊँ मण्डल में स्थित है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या 1648902 है तथा कुल कामगार की संख्या 591458 है तथा कृषि श्रमिकों की संख्या 107603 है। (सांख्यिकी डायरी : 2021–22 8, 14)।

जनपद ऊधमसिंह नगर कुमाऊँ मण्डल का तराई सम्भाग है जहाँ पर कृषि की विलक्षण उत्पादकता है। जीविकोपार्जन हेतु जनसंख्या अधिकांश कृषि व कृषि से सम्बन्धित कार्यो में संलग्न है मैदानी भाग होने से कारण कृषि उन्नत है भूमि उर्वरक है सिंचाई की पूर्ण सुविधाएँ उपलब्ध है खेती हेतु उन्नत बीज व कीटनाशक दवाओं का प्रयोग किया जाता है। जनपद में 7 विकासखण्ड है जिसमें काशीपुर, बाजपुर, गदरपुर, रूद्रपुर, सितारगंज व खटीमा है जिसमें से अध्ययन हेतु गदरपुर विकास खण्ड का चयन किया गया क्योंकि उक्त विकास खण्ड में कृषि श्रमिकों का बाहुल्य पाया गया (द्वितीय समंक के आधार पर) अध्ययन का मुख्य उद्देश्य महिला श्रमिकों की

आर्थिक व सामाजिक स्थिति का अध्ययन करना एवं रोजगार के स्तर रहा है जिसके लिए विकासखण्ड गदरपुर में से दैव निदर्शन पद्धति के आधार पर 120 श्रमिक महिलाओं का चयन किया गया।

ये श्रमिक महिलाएं मजदूरी पर कृषि एवं गैर कृषि क्षेत्र में संलग्न रहती है गैर कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत ये विनिर्माणी क्षेत्र, ईट भट्टा व घरेलू कार्यो में भी कार्य करती है, महिला श्रमिकों की आयु संरचना का तालिका के माध्यम से दर्शाया गया है।

तालिका संख्या-02

महिला श्रमिकों की आयु संरचना

क्र0सं0	आयु वर्गान्तर	संख्या	प्रतिशत
1	18–28	29	24.2
2	28–38	51	42.5
3	38–48	25	20.8
4	48–58	15	12.5
5	58–68	120	100.00

स्रोत– सर्वेक्षण के आधार पर।

उपरोक्त तालिका के माध्यम से स्पश्ट हो रहा है कि उपरोक्त आयु वर्गान्तर में सर्वाधिक महिलाए 28 से 38 आयु वर्ग की है जिनका प्रतिशत 42.5 है जब न्यूनतम प्रतिशत 48 से 56 आयु वर्ग की महिलाएँ हैं।

तालिका संख्या- 03

श्रमिक महिलाओं की शैक्षिक संरचना

क्र0सं0	शैक्षिक संरचना	संख्या	प्रतिशत
1	शिक्षित	98	81.7
2	अशिक्षित	22	18.3
3	कुल	120	100.00

स्रोत– सर्वेक्षण के आधार पर।

उपरोक्त तालिका के आधार पर स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में 81.7 प्रतिशत श्रमिक महिलाएं शिक्षित है, जिसमें से अधिकांश महिलाएं प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर तक शिक्षित है जबकि 18 प्रतिशत महिला श्रमिक अशिक्षित है। शिक्षा के अतिरिक्त उनकी वैवाहिक स्थिति के विवरण को तालिका के माध्यम से स्पष्ट किया गया।

तालिका संख्या-04

श्रमिक महिलाओं की वैवाहिक स्थिति

क्र0सं0	वैवाहिक स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1	विवाहित	62	51.7
2	अविवाहित	38	31.6
3	विधवा	20	16.7
4	कुल	120	100.00

स्रोत– सर्वेक्षण के आधार पर।

उपरोक्त तालिका के माध्यम से स्पष्ट होता हैं सर्वाधिक प्रतिशत महिलाएं 51.7 प्रतिशत है जब कि निम्न प्रतिशत विधवा महिलाओं का पाया गया है। ये महिलाएं परिवार के मुखिया न होने के कारण भी इस कार्यो में संलग्न हैं।

ये महिलाएं 6 से 8 घंटा या कभी उससे अधिक घंटों तक कार्य करती हैं ये महिलाएँ रू. 350 दैनिक मजदूरी पर कार्य कर रही हैं। इन्हें प्राप्त होने वाले रोजगार की स्थिति को भी तालिका के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

तालिका–05

श्रमिक महिलाओं की रोजगार स्थिति

क्र0सं0	रोजगार का क्षेत्र	रोजगार दिवस	प्रतिशत
1	कृषि क्षेत्र	189	75.9
2	गैर कृषि क्षेत्र	60	24.1
3	कुल	249	100.00

स्रोत–सर्वेक्षण के आधार पर।

तालिका संख्या– 04 के आधार पर स्पश्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में वर्ष में कुल रोजगार में कृषि क्षेत्र में 75.9 प्रतिशत रोजगार कृषि क्षेत्र से प्राप्त हो रहा है तथा 24.1 प्रतिशत रोजगार गैर कृषि क्षेत्र से प्राप्त हो रहा है, कृषि उत्पादकता की विलक्षणता एवं के कारण वर्ष में अधिकांश रोजगार कृषि में प्राप्त हो रहा है। जिस समय में कृषि कार्य नहीं होता तब ये गैर कृषि क्षेत्र के कार्यो में संलग्न रहते हैं। अशिक्षा के कारण ये महिलाएँ इन कार्यो में संलग्न है क्यों कि अन्यत्र कार्य के लिए विशेष कौशल की आवश्यकता होती हैं।

रोजगार के अतिरिक्त बेरोजगारी के स्तर का भी आकलन किया गया है जो कि तालिका के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

तालिका संख्या–06

श्रमिक महिलाओं की बेरोजगी की स्थिति

क्र0सं0	बेरोजगारी	दिवस/प्रतिशत
1	कुल रोजगार दिवस	300
2	प्रति श्रमिक औसत रोजगार दिवस	249
3	प्रति श्रमिक बेरोजगारी दिवस	51
4	कुल रोजगार दिवस में रोजगार का प्रतिशत	83
5	कुल रोजगार दिवस में बेरोजगार का प्रतिशत	17

स्रोत– सर्वेक्षण के आधार पर।

उपरोक्त तालिका के माध्यम से स्पष्ट हो रहा है कि ये महिलाएं वर्ष में रोजगार प्राप्त करने का प्रतिशत 83 प्रतिशत व बेरोजगारी का प्रतिशत 17 प्रतिशत है। जिसके कारण ये महिलाओं आर्थिक रूप से परेशानियों का सामना करना पड़ता है। परिवार के मुखियां की आय के उचित स्रोत या रोजगार न होने के कारण ये महिलाएं

निर्धनता में जीवन व्यतीत कर रही हैं।

समस्या व सुझाव :–

ये श्रमिक महिलाएं निर्धनता का जीवन व्यतीत कर रही है जिसका मुख्य कारण निम्न मजदूरी की दरें का होना है साथ ही सर्वेक्षण के माध्यम से जानकारी प्राप्त हुई कि ये महिलाओं को कल्याणकारी योजनाओं व प्रदत्त सुविधाओं के सम्बन्ध में भी जानकारी की कमी पायी गयी है। मजदूरी के सन्दर्भ में भी लिंग–भेद पाया जाता है। श्रमिक वर्ग गरीबी रेखा के नीचे निवास कर रहे है। आर्थिक रूप से परिवार में सहभागिता करने के उपरान्त भी ये श्रमिक महिलाएं उपेक्षित जीवन व्यतीत कर रही हैं। असंगठित क्षेत्र में कार्य करने के कारण महिला श्रमिक को कार्य दशाओं के अन्तर्गत किसी प्रकार के लाभ प्राप्त नहीं है, जिसके कारण असुरक्षा का भाव सदैव बना हुआ रहता है ये महिलाएं सुविधाओं के अभाव, अवसर के अभाव के कारण दयनीय जीवन व्यतीत कर रही है। गतिशीलता का अभाव भी पाया जाता गया है। परिवार दायित्वों के निर्वहन के कारण अन्यत्र जगह कार्य करना सम्भव नहीं हो पा रहा है फलस्वरूप जीवन में सुधार हो पाना सम्भव नहीं हो पा रहा है। सामाजिक व आर्थिक स्थिति में अत्यन्त सुधार की आवश्यकता है। जिसके लिए शिक्षित होने के साथ–साथ जागरूकता का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है। जिसके कारण यें अपने अधिकारों व स्थिति के लिए सदैव अग्रसर रहे। श्रमिकों की दैनिक मजदूरी की दरों में वृद्धि करना अत्यन्त आवश्यक है ताकि बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। स्वयं सहायता समूह के माध्यम से तथा आर्थिक समूहों के माध्यम से इन श्रमिक महिलाओं को सबल बनाये जाने का प्रयास किया जाना चाहिए। महिला सशक्तीकरण कार्यक्रमों का लाभ उठाकर श्रमिक वर्ग को लाभ पहुँचाया जा सकता है जिससे सामाजिक स्थिति में सुधार के साथ–साथ सामाजिक सुरक्षा की स्थिति में भी सुधार किया जा सकता है क्योंकि सामाजिक जीवन में दृष्टि डालने पर यह स्थिति स्पष्ट हो रही कि इनकी सामाजिक स्थिति अत्यन्त दयनीय है। जिसमें सुधार होना आवश्यक है। सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त होने पर ही ये अपने परिवार, समाज में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे पायेंगी।

सन्दर्भ :–

1. मिश्रा जय प्रकाश (2022) ''कृषि अर्थशास्त्र'' साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, पृ0सं0 – 154
2. बिडराली लक्ष्मी आर0 (2017) शोध पत्र ''सोशियो इकॉनामिक कन्डीशन ऑफ एग्रीकल्चरल लेबर इन इण्डिया'' ''Indian journal of research paripex'' Vol. 06 Issue-03 march.
3. ममोरिया सी0बी0 एवं त्रिपाठी बी0 बी0 (1782) ''एग्रीकल्चर प्रॉब्लम इन इण्डिया'' किताब महल, इलाहाबाद, पृ0 सं0 – 162
4. सांख्यिकी डायरी 2021–22 उत्तराखण्ड अर्थ व संख्या निदेशालय पृ0सं0– 7, 8, 14
5. कल्याणविझी ए0 (2019) शोध पत्र ''प्रॉब्लम एण्ड प्रोस्पेक्ट्स ऑफ एग्रीकल्चरल लेवर्स इन इण्डिया ओबर व्यू'' JETIR January, Vol-06, Issue-1
6. सांख्यिकी पत्रिका जनपद ऊधमसिंह नगर अर्थ व संख्या विभाग, ऊधमसिंह नगर (2019)
7. कुमाऊँ मण्डल सांख्यिकीय पत्रिका कुमाऊँ मण्डल 2019, उपनिदेशक, अर्थ व संख्या हल्द्वानी (नैनीताल) उत्तराखण्ड।

Dr. Shweta Chaniyal, Savindar Apartment, Near DIET Gate, SBI ATM, Jakhan Devi, Almora, Distt. Almora, Uttrakhand, Pin- 263601, Mail id - drshwetachaniyal@gmail.com, M. : 9084510220

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 24-30

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ROLE OF VITAMIN K IN THE SUSTENANCE AND WELL-BEING OF HUMAN BEINGS

DIPIKA, Research Scholar,
Dr. Avadh Narayan Dwivedi
Department of Life Sciences, Chhatrapati Shahu ji Maharaj University, Kanpur.

ABSTRACT :-

The health and well being of mankind along with the sustainability of the environment is the foremost need for the sustenance of life. The proper balance of the environment is needed for the well sustained health of human beings for which both external and internal factors are responsible and their working in a balanced way is the need of an hour. The vitamins and minerals are needed by the body for further enhancement of body systems. The dietary intake of vitamins, be it internally synthesized or taken as a supplement, plays a vital role in the balanced working of the body. One of the vitamin, Vitamin K, is a fat-soluble vitamin needed for the postsynthesis modification of various kinds of respective proteins for the synthesis of blood coagulation factors or more precisely, it helps in controlled binding of calcium in bones and other tissues. Vitamin K is synthesized only in eubacteria and plants and plays a crucial role in maintaining intracellular redox homeostasis.An unknown fraction of vitamin K in humans is derived from menaquinone biosynthesis in the intestinal flora. The deficiency of Vitamin K, on the other hand, leads to varied degree of diseases like osteoporosis and may also promote calcification of arteries and other soft tissues. With the rapid pace of development, human life expectancy is rising along with the increase in the age associated diseases. Thus , research and analysis have proved that balanced diet with proper intake of vitamins, minerals, could have antioxidant and anti-inflammatory effects along with good amount ofantiageing effect.While the proper intake of Vitamin K may acts as a neurodegenerative disease inhibitor, lowering diabetes risk, with a reduced risk of cancer as well as lead to prevention inthe cytokine storm observed in COVID-19 cases.

KEYWORDS :-

Phylloquinone, menaquinone, osteocalcin, matrix Gla protein, bone health, osteoporosis, calcification, homeostasis, dietary supplement, minerals, nutrients.

INTRODUCTION :-

The daily intake of minerals, nutrients and vitamins in the diet or as a supplement plays a vital role in the balanced life style. Some are synthesized naturally while the rest is being taken in the dietary supplement for the proper maintenance and repair of the damaged cells and coordinated working of the organ system. Vitamin K plays a crucial role in the bone and muscle homeostasis as it is a cofactor for the ?-glutamyl carboxylase enzyme, is required for the post-translational activation of osteocalcin and matrix Gla protein. The research and analysis have shown that in case of Osteoporosis and sacropenia, vitamin K plays an important role by increasing osteoblastogenesis in bone and decreasing osteoclast formation and functions, while in muscles, it helps in increasing the satellite cell proliferation and migration as well as in metabolism. The other role Vitamin K is that it is required for the post-translational modification of liver precursors of prothrombin, blood coagulation Factors VII, IX, and X and additional proteins of undetermined functions in plasma and other tissues along with the involvement of formation of gammacarboxyglutamic acid, an acidic amino acid which is needed for the interaction of varied levels of proteins with calcium ions.

Vitamin K includes two natural Vitamers, namely, Vitamin K1 (Phylloquinone) and Vitamin K2 (Menaquinone).Vitamin K1 (Phylloquinone) is made by plants and therefore, the highest amount is mainly found in green leafy vegetables as it is directly involved in photosynthesis. Vitamin K1 found in animals, is being specialized in the production of blood clotting proteins, while the same Vitamin K can also be converted to Vitamin K2 (Menaquinone), variant MK-4, by animals. Bacteria present in the gut flora also possess the ability to convert Vitamin K1 into MK-4. These forms of Vitamins, K1 and K2, are used up during anaerobic respiration.Vitamin K1 is mainly found in green leafy vegetables like collard greens,kale and spinach, whereas, Vitamin K2 is said to be present in animal foods and fermented foods and can also be produced by bacteria in the human body.

USES OF VITAMIN K FOR THE SURVIVAL OF LIFE :-

Vitamin K and its variant plays a very important in the overall development of the body system. It is not only needed for blood clotting but also for the development of bones and posses an anticancer effect. Vitamin K dependent proteins like themain blood clotting factor Prothrombin, Osteocalcin for healthy bone tissue, etc are only produced with the help of it. Vitamin K is also found majorily in the liver, brain, heart, pancreas and bone and gets broken down quickly and excreted in urine or stool. In animals, the variant of Vitamin K, Vitamin K2 aids in adding a carboxylic acid functional group to Glutamate (Glu) amino acid residue in a protein to form gammacarboxyglutamate (Gla) residue, which is majorily known as the " Gla protein" that helps in chelating calcium ions associated with the triggering of vitamin K dependent clotting factors. Deficiency of vitamin K rarely happens when

vitamin K2 is continuously recycled in cells. "Gla Poteins", associated with Vitamin K,regulates the level of primary structure of blood coagulation factors and anticoagulant protein C and protein S and the factor X-targetting Z and mainly occurs in mammals, birds, reptiles and fish. Gla protein also regulates and maintain cardiovascular health like in arteries, functions as an anti-calcification protein and prevents coronary heart disease, arterial calcification and arterial stiffness.

In plants, variants of vitamin K plays a vital role as a chemical in green plants and in some species of cynobacteria for the initiation of photosynthesis as Vitamin K1 is found largely in photosynthetic tissues of plants like in green leaves and dark green leafy vegetables. Bacteria, especially Escherichia coli, can synthesize vitamin K2. Gamma-carboxylation of osteocalcin, vitamin K dependent protein, is required for the treatment of osteoporosis, maintaining bone mineral density and fractures, maintaining post-menopausal related issues.

Research and analysis have also revealed that improper or poor intake of vitamin K and its variant may lead to inflammation, poor brain and endocrine function. The role of vitamin K is widespread in nature as it supports bone, cognitive and heart health, while, its deficieny may contribute to increase in clotting time, resulting in hemorrhage and excessive bleeding.

S.N.	TYPES OF VITAMIN K	FUNCTION IN THE BODY	SOURCES
1.	K1	● Participates in blood clotting. ● Serves as a co-factor for carboxylation of protein bound glutmate Gla, containing factors II, VII, IX, and X.	● Green leafy vegetables. ● Some plants oil.
2.	K2, Menaquinone-4 (MK-4)	● Osteocalcin, synthesized in bone. ● Involved in calcium transport. ● Prevent calcium deposition in the lining of blood walls. ● Helps improve bone density	● Butter, eggs yolks, animal based food ● Synthesized by intestinal bacteria
3.	K2, Menaquinone-7(MK-7)	● Osteocalcin, synthesized in bone.	● Fermented foods ● Cheese

		• Involved in calcium transport. • Prevent calcium deposition in the lining of blood walls. • Helps improve bone density	
4.	K3, Menadione	• Banned by FDA in the USA because of potential toxicity (hemolytic anemia). • Research is ongoing for its application in the treatment of prostate or hepatocellular cancer therapy and in skin toxicities.	• Synthetic analogue of vitamin K considered as a provitamin.

The aging process and it's neurodegenerative diseases such as Alzheimer disease or Parkinson's disease can gradually be overcome by the antioxidant and anti-inflamatory activity of vitamin K as it reduces cognitive decline by modulating sphingolipids metabolism. Gla protein, associated with vitamin K, is found to be potent inhibitor of vascular calcification and nephrocalcin which is involved in kidney functions. Several research associated with the beneficial effects of vitamin K has proved its utility in caseof varied level of chronic diseases. Research and analysis have shown that vitamin Kplays a substantial role in blocking cellular senescence, DNA damage, and inflammation. Newly borns are prescribed to receive the vitamin K injection in order to protect their skull from bleeding so as to prevent it from becoming fatal. Proper intake of vitamin K is recommended as per the age and gender. For example, women of and above the age of 19 are advised to intake approx 90 micrograms, while men should intake 120 micrograms, of vitamin K as a supplement. The other vital role of vitamin K has been found to maintain blood pressure lower by the process of mineralisation, where minerals gets accumulated in the arteries, thereby, enabling the heart to pump blood properly throughout the body and thus, prevent the risk of stroke.The role of vitamin K is divergent in nature as it can interact with several types of medications including blood thinners, anticonvulsants, antibiotics, cholesterol lowering drugs, and weight-loss drugs. Inadvertent role of vitamin K is discussed to have an adverse effect on the muscular function and it's mass and works smoothly if the plasma concentration

consists of higher concentration of vitamin K.

PROBLEMS ASSOCIATED WITH THE DEFICIENCY OF VITAMIN K :-

Vitamin K is basically absorbed through the jejunum and ileum in the small intestine along with the help of bile and pancreatic juices. Vitamin K and it's derivatives are involved in calcium binding, regulation of three physiological processes: Blood coagulation of prothrombin (factor II), factors VII, IX, and X, and proteins C, S, and Z; Bone metabolism involving osteocalcin, matrix Gla protein (MGP), periostin, and Gla-rich protein; and vascular biology involving growth and arrest of certain proteins. The kidney has no major role in vitamin K metabolism, while, the vitamin K is majorily metabolised in the liver and excreted in the urine and bile. The balanced and healthy diet doesn't constitute to vitamin K deficiency but the exception being the infants who are at an increased risk of getting deficient, even if the mother possess sufficient vitamin K but the poor transfer of the vitamin K either through breast feeding or placenta, may amount to low passage of vitamin K. The deficiency may also occur even if adequate amount of vitamin K is consumed or processed, like in case of cystic fibrosis, chronic pancreatitis, liver damage or diseases and kidney failures and disease or taking vitamin K antagonist drug like warfarin which is an anticoagulant drug. While, the newly introduced anticoagulants like apixaban, dabigatran and rivaroxaban are not the vitamin K antagonists.

The antibiotic medicines may destroy vitamin-producing bacteria in the gut, thereby potentially decreasing vitamin K levels, especially if the medicine is consumed for more than a weeks. Thus, it can be said that vitamin K deficiency is rare in adults but may occur if those medications are taken which may block vitamin K metabolism. The signs of deficiency can be indicated if the blood clotting or prothrombin takes longer or prolonged time leading to bleeding, hemorrhage, osteopenia or Osteoporosis. It's deficiency can also leads to alleviation of heart diseases. Deficiency of Vitamin K can delay healing of wounds, may cause blood thinning, bleeding disorders in the newborns exhibiting haemorrhagic diseases, binding of calcium for bones and gums may get prevented, weakening of skeletal structure, decrease in bone density with increased risk of fracture, increased risk of peripheral arterial disease, increased risk of mineralisation in the arterial walls, fluctuations in the blood pressure may stimulate cardiac arrest, degrades dental health as production of osteocalcin may get deactivated along with loosening of the root of teeth leading to loss or decay, degrades the memory power and cognitive function, enhances itching due to biliary cirrhosis, causes enhancement of blood cholesterol level, leads to a variety of skin associated problems like redness, pimples and rosacea along with decline in the healing process in skin, may increase the chances of liver and breast cancer, coagulopathy, haematoma, petechia, cartilage calcification, vitamin K deficiency bleeding or VKDB, etc.

TOXICITY OF VITAMIN K :-

The Vitamin K and its derivatives plays a pivotal role in the entire coordinated functioning of the body system. Although adverse effects have not been summarised or observed but the overdose may leads to allergic reactions in most of the cases. Over consumption may also interfere with those medicines taken to prevent blood coagulation in the arteries which are supplying blood to the heart or brain and this may be fatal for the sustenance of life and well being. The research and analysis have shown that the Recommended Dietary Intake (RDA) of Vitamin K is 55 mcg a day for both men and women aged 19 years and older but its overdose, other than the recommended and intended dose may cause toxicity like decreased appetite, enlarged liver, breathing difficulty, muscle stiffness, paleness and swelling of the body. Hence, it is recommended and advised to intake the vitamin K sources in diet naturally, otherwise, the supplements is must only after proper consultation with the respective doctor, dietician or physician. The toxicity of Vitamin K1 leads to severe adverse reactions like bronchospasm and cardiac arrest when given intravenously. Another form of vitamin K, a natural compound referred to as Menadione or Vitamin K3 which is used in pet food industry has been mostly banned as it not only causes allergic reactions, hemolytic anemia but also cytotoxicity in liver cells.

CONCLUSION :-

The scientific research and analysis have proved that Vitamin K has a significant role in maintaining the health and well being of mankind. The Vitamin K has proved its worth by mitigating the onset of fatal diseases and its efficacy has contributed in the improved medications with age related issues as well as varied levels of fatality. The potential outcome of the vitamin K naturally or as dietary supplement has been presented in recent findings of COVID-19 cases as well as in the potential effects on reducing fatal outcomes in many cases. The strategic use of vitamin K along with various supplements and medicine can be used as a better strategy for the prevention of disease but the concern also arises if used unknowingly. Vitamin K has tackled the age-related neurodegenerative diseases as well like Alzheimer disease, etc. But can also help in the brain physiology by reducing its cognitive decline. The multiple role of vitamin K modulates it to be more profound in nature with respect to health and ailments respectively. Even the research has been initiated in the anticancer potential of vitamin K which has been reviewed in vitro and epidemiological studies. In cases related to COVID-19, research and analysis have shown that the vitamin K possess the ability to activate protein S that can prevent the generation of inflammatory cytokines and it's related storms, detected in COVID-19 cases. Oral intake of vitamin K is also needed, especially those that have comorbidities conditions and elderly who are deficient in vitamin K. Despite having known the limited vital role of vitamin K in our life, research has been ongoing as the knowledge regarding the same is not sufficient

enough, therefore, cautious steps are taken ahead to manoeuvre the various application of vitamin K in our life. The broadly available analytical methods helps in quantifying the reliable limits of its uses in day to day life. Thus, higher level of studies are needed to get to know the various role of vitamin K and the underlying mechanism with a fully validated and quality control method. A well systematic study is needed to understand the preclinical data that can help in unraveling the molecular effects of vitamin K in varied body organ system, both in vitro and in vivo, respectively. Thus, it is the need of an hour to consume a better diet with proper and sufficient knowledge in order to maintain and promote the wellbeing.

REFERENCES :-

1. Binkley, N.C. & Suttie, J.W. 1995. Vitamin K nutrition and osteoporosis. J. Nutr., 125:1812-21.
2. Bender, D.; Vitamin, K. Nutritional Biochemistry of the Vitamins; Cambridge University Press: Cambridge, UK, 2003; pp. 131–147.
3. Elder, S.J.; Haytowitz, D.B.; Howe, J.; Peterson, J.W.; Booth, S.L. Vitamin K Contents of Meat, Dairy, and Fast Food in the U.S. Diet. J. Agric. Food Chem. 2006, 54, 463–467.
4. Furie, B. & Furie, B.C. 1990. Molecular basis of vitamin K-dependent gg-carboxylation. Blood, 75: 1753-62.
5. Ferland, G. 1998. The vitamin K-dependent proteins: an update. Nutr. Revs., 56: 223-30.
6. Harshman, S.; Shea,M. The Role of Vitamin K in Chronic Aging Diseases: Inflammation, Cardiovascular Disease, and Osteoarthritis. Curr. Nutr. Rep. 2016, 5, 90–98.
7. Luo, G. 1997. Spontaneous calcification of arteries and cartilage in mice lacking matrix GLA protein. Nature, 386: 78-81.
8. Shearer, M.J., Bach, A. & Kohlmeier, M. 1996. Chemistry, nutritional sources, tissue distribution and metabolism of vitamin K with special reference to bone health. J. Nutr.,126: 1181S-6S.
9. Shearer, M.J. 1995. Fat-soluble vitamins: vitamin K. Lancet, 345: 229-34.
10. Suttie, J.W. 1985. Vitamin K. 1985. In: Fat-soluble vitamins: their biochemistry and applications. Diplock, A.D., ed. p. 225-311.
11. Vermeer, C., Jie, K.S. & Knapen, MHJ. 1995. Role of vitamin K in bone metabolism. Ann. Rev. Nutr., 15: 1-22.

Dr. Avadh Narayan Dwivedi
04, Parsan House, Dubauli Parsan, Patti, Pratapgarh,U.P.
Pin Code - 230 135
M. : 09415702566
tripathidipika772@gmail.com
bablupcb@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 31-39

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय संदर्भ में मानवाधिकार

डॉ. ऋतु कोहली, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग,
महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
डॉ. नरेन्द्र कुमार संत, शोधार्थी

सार :–

मानव अधिकार की आवश्यकता सम्भवतः मानवीय सभ्यता के साथ प्रारम्भ हुई। जब मनुष्य का जीवन एकाकी था तब मानव अधिकारों की शायद आवश्यकता न हुई होगी। परन्तु, जैसे–जैसे मनुष्य ने प्रगति की और परिवार, समाज, राज्य, देश और विश्व की कल्पना हुई, वैसे–वैसे मनुष्य की जरूरतों और आकांक्षों ने विस्तार लेना प्रारम्भ कर दिया। साथ ही मनुष्य में एक दूसरे के प्रति छोटे–बड़े की कल्पना भी घर करने लगी तथा मनुष्य स्वयं मनुष्य पर हावी होने लगा। मनुष्य ने मनुष्य पर श्रेष्ठता और आधिपत्य जमाने और उसे निरन्तर बनाए रखने के लिए दूसरे मनुष्य को जीवन यापन की मूलभूत सुविधाओं से वंचित करना प्रारम्भ कर दिया। पहले स्वयं कबीले और उसके सरदार के रूप में तथा बाद में राज्य और राजा या शासक के रूप में स्थापित कर स्वयं को शक्तिशाली और दूसरों को अपने अधीन प्रजा के रूप में स्थापित किया। यहीं से जन्म लेती है मानव जीवन के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं की जिसे हम आज मानव अधिकारों के रूप में जानते हैं।

इक्कीसवीं शताब्दी मानवाधिकारों की शताब्दी है। मानव अधिकार वे परिस्थितियां हैं जो साधारणतः जीवन के लिए, विशेष रूप से गरिमामय जीवन जीने के लिए न केवल अनिवार्य हैं अपितु प्रत्येक व्यक्ति में जन्म से निहित भी हैं। मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो मनुष्य को विश्व की अन्य सजीव प्रजातियों से अलग करते हैं और विशिष्ट बनाते हैं। इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता भी प्राप्त है। मानव अधिकार राष्ट्रीय सीमाओं से ऊपर हैं। यद्यपि राज्य से यह अपेक्षा की जाती है कि वह मानवाधिकारों की रक्षा करे, किन्तु मानव अधिकारों के क्रियान्वयन के बारे में यह प्रश्न स्वभावतः उठता ही है कि जो राज्य अपने बनाए हुए कानूनों को ही प्रभावी रूप से लागू नहीं कर सकता, वह मानव अधिकारों की रक्षा कैसे कर पाएगा। मानव अधिकारों को लागू करने के बारे में राज्य की सीमाएं और मर्यादाएं हैं। मानव अधिकारों को लागू करने के सम्बन्ध में राज्य की भूमिका को कम करके आंकना हमारा उद्देश्य नहीं है, लेकिन यह प्रश्न उठना तो स्वाभाविक ही है कि क्या मानवाधिकार लागू करने के बारे में केवल राज्य पर निर्भर रहने से काम चलेगा या कुछ अन्य पूरक और सहायक व्यवस्थाएं भी खड़ी करनी पड़ेंगी। इन अन्य व्यवस्थाओं के अभाव में मानव अधिकार महज़ कागज़ पर ही रह जायेंगे, वे यथार्थ नहीं बन पायेंगे।

मुख्य शब्द :– मानवाधिकार, अन्तरर्राट्रीय, राष्ट्रीय, समता, स्वतंत्रता।

शोध का उद्देश्य :–

'भारतीय संदर्भ में मानवाधिकार' शोध पत्र का उद्देश्य मानव अधिकारों के प्रति अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, राज्य और समाज के उद्देश्यों एवं दायित्वो की समीक्षा करना तथा मानव कल्याण में उनकी भूमिका का विश्लेषण करना है। शोध में 'भारतीय संविधान', 'पुलिस और मानवाधिकार', 'कौटिल्य : आधुनिक कल्याणकारी राज्य का दार्शनिक भाग XXXVII', 'कौटिल्य अर्थशास्त्र (1965) खण्ड 1–3', 'स्टडीज इन कौटिल्य (1958)' एवं 'कौटिल्य के राजनैतिक विचार तथा संस्थाएं (1971)' से एकत्रित की गई है।

परिकल्पना :–

मानवाधिकार एक ऐसा विषय है जिसे पूरी तरह से पाश्चात्य या पूरी तरह से भारतीय नहीं कहा जा सकता। समय और परिस्थितियों के अनुसार विश्व के प्रत्येक देश में मानवाधिकारों का हनन हुआ है। भारत भी अछूता नहीं रहा। भारत में सदियों तक मानव ने मानव को शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों सें वंचित रखा। यदि यह देखा जाए कि मानवाधिकारों का विचार पहले कहां आया अर्थात इस विचार की व्युत्पत्ति कहां हुई तो ध्यान में आएगा कि 'आधुनिक इतिहासकार इस संकल्पना का उद्भव का श्रेय 1215 के मैग्ना कार्टा को देते हैं। यदि गौर से देखा जाए तो पता चलेगा कि मैग्ना कार्टा की एक याचिका थी, जिसमें राजा से प्रार्थना की गई थी कि वह जनसाधारण के कुछ विशिष्ट वर्गों को कतिपय अधिकार प्रदान करें।''[1] परन्तु ध्यान रहे कि मानवाधिकारों की आवाज तो भारत के ऋषियों द्वारा प्राचीन काल में ही उठा दी गई थी। इसके प्रमाण यहां अनेक ग्रंथों में आसानी से मिलते हैं। तथागत बुद्ध, कबीर, रविदास, कौटिल्य ऐसे अनेक महापुरूष हुए हैं जिन्होंने अपने काल में मानव मात्र के कल्याण तथा उनको समान अधिकार की न केवल कल्पना की बल्कि उसके प्रचार–प्रसार के लिए आजीवन प्रयासरत रहे।

आधुनिक इतिहास वेत्ताओं ने भले ही इसका श्रेय संयुक्त राज्य अमेरिका को दिया हो। उनके अनुसार–'' सर्वप्रथम सन 1776 में संयुक्त राज्य अमेरिका के स्वतंत्रता संबंधी घोषणा पत्र में मानव अधिकार शब्द का प्रयोग किया गया था। इसके अनुरूप, संयुक्त राज्य के संविधान में भी इन अधिकारों से संबंधित बिल शामिल किया गया। फ्रांसीसी क्रांति के दौरान 1789 में मनुष्य तथा नागरिकों के अधिकारों से संबंधित घोषणा पत्र सामने आया। सन 1929 में अन्तरराष्ट्रीय विधि संस्थान, न्यूयार्क, संयुक्त राज्य अमेरिका ने मानव अधिकारों तथा कर्तव्यों के घोषणा पत्र तैयार किया। तत्पश्चात सन 1945 में इंटर अमेरिकी कॉन्फ्रेंस ने संकल्प पारित किया, जिसमें 'मानव जाति के अधिकार' की संकल्पना को बढ़ावा देने के लिए अंतरराष्ट्रीय फोरम तैयार करने का प्रयत्न किया गया।''[2]

अतः वर्तमान में अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर निहित मानवाधिकारों की संकल्पना और भारत की मानवाधिकारों की मूल संकल्पना पर विचार करते हुए उन्हें मूर्त रूप देने और मानव को स्व से प्रेरित करने का प्रयास इस शोध पत्र में किया जा रहा है।

3. विश्लेषण और चर्चा :–

अंतरराष्ट्रीय संकल्पना

मानवाधिकारों की अंतरराष्ट्रीय संकल्पना के अनुसार उन्हें नागरिक तथा राजनैतिक अधिकार, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों के अंतर्गत विभाजित किया गया है। नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों के

अंतर्गत ''व्यक्ति के जीवन, सत्यनिष्ठा, स्वतंत्रता तथा सुरक्षा से संबंधित अधिकार, न्याय का अधिकार, एकांतता का अधिकार, धर्म व संप्रदाय तथा विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार, संचरण (आने जाने) की स्वतंत्रता, सभा तथा संगठन का अधिकार, राजनीतिक भागीदारी का अधिकार''[3] तथा आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों के तहत– ''कार्य करने का अधिकर, जीवनयापन का समुचित स्तर पाने का अधिकार (इसमें रोटी, कपड़ा और मकान भी शामिल हैं), स्वास्थ्य संबंधी देखभाल का अधिकार और सांस्कृतिक जीवन से जुड़े कार्यकलापों में भाग लेने का अधिकार सम्मिलित किए गए।

उपरोक्त अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकारों को, इस प्रकार विस्तार पूर्वक समझ सकते हैं :–

नागरिक तथा राजनीतिक अधिकार :–

– व्यक्ति के जीवन, सत्यनिष्ठा, स्वतंत्रता तथा सुरक्षा से संबंधित अधिकार।
– न्याय का अधिकार।
– एकांतता का अधिकार।
– धर्म या संप्रदाय तथा विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार।
– संचरण (आने–जाने) की स्वतंत्रता।
– सभा तथा संगठन का अधिकार।
– राजनीतिक भागीदारी का अधिकार।

आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकार :–

– कार्य करने का अधिकार।
– जीवनयापन का समुचित स्तर पाने का अधिकार (इसमें रोटी, कपड़ा और मकान भी शामिल हैं),
– स्वास्थ्य संबंधी देखभाल का अधिकार।
– सांस्कृतिक जीवन से जुड़े कार्यकलापों में भाग लेने का अधिकार।''[4]

राष्ट्रीय संकल्पना :–

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 26 नवम्बर, 1949 को भारतीय संविधान आत्मार्पित किया गया और 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान लागू हुआ। संविधान की मूल प्रस्तावना में मानवाधिकारों एवं नीति निर्देशकों को स्थान दिया गया। उद्देशिका में लोकतांत्रिक समाजवाद का आशय बताया गया है तथा नीति निर्देशक सिद्धांतों कर अर्थ स्पष्ट किया गया है। संविधान के इस प्रारम्भिक भाग में उन संदर्भों का भी उपबंध रखा गया है, जिसमें मानव अधिकार प्राप्त किए जा सकते हैं।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में यह निहित है कि –

'''हम भारत के लोग, भारत को सम्पूर्ण (प्रभुत्व संपन्न समाजवादी पंथ निरपेक्ष लोकतांत्रिक गणराज्य) बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

''सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और (राष्ट्र की एकता और अखण्डता) सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत दो हजार छह विक्रमी) को एतद् द्वारा इस

संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।''[5]

भारतीय संविधान के भाग 3 में मानवाधिकारों को परिभाषित एवं विस्तार पूर्वक उल्लखित किया गया है। भारतीय संविधान के अनुसार– '' इस भाग में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, ''राज्य'' के अंतर्गत भारत की सरकार और संसद तथा राज्य की सरकार और विधान मंडल तथा भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सभी स्थानीय और अन्य प्राधिकारी हैं।''[6] जिसमें समता, स्वातंत्र्य, शोषण के विरूद्ध, धर्म की स्वतंत्रता, संस्कृति और शिक्षा एवं संवैधानिक उपचार के अंतर्गत अधिकार सम्मिलित हैं।

''इन सभी अधिकारों को विभिन्न अनुच्छेदों के माध्यम से वर्णित किया गया है :–

1. **समता का अधिकार :–**

– अनुच्छेद 14 – विधि के समक्ष समता।
– अनुच्छेद 15 – धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिशेध।
– अनुच्छेद 16 – लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता।
– अनुच्छेद 17 – अस्पृश्यता का अंत।
– अनुच्छेद 18 – उपाधियों का अंत।

2. **स्वातंत्र्य अधिकार :–**

– अनुच्छेद 19 – वाक्–स्वातंत्र्य आदि विषयक कुछ अधिकारों का संरक्षण।
– अनुच्छेद 20 – अपराधों के लिए दोष सिद्धि के संबंध में संरक्षण।
– अनुच्छेद 21 – प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार।
– अनुच्छेद 22 – कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और बंदी बनाने से संरक्षण।

3. **शोषण के विरूद्ध अधिकार :–**

– अनुच्छेद 23 – मान के दुर्व्यापार और बलात् श्रम का प्रतिशोध।
– अनुच्छेद 24 –कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिशोध।

4. **धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार :–**

– अनुच्छेद 25 – अंतः करण की और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता।
– अनुच्छेद 26 – धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता।
– अनुच्छेद 27 –किसी विशिष्ट धर्म की अभि वृद्धि के लिए करों के संप्रदाय के बारे में स्वतंत्रता।
– अनुच्छेद 28 – कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में स्वतंत्रता।

5. **संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार :–**

– अनुच्छेद 29 – अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण।
– अनुच्छेद 30 – शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार।
– अनुच्छेद 31 – संपत्ति का अनिवार्य अर्जन।
– अनुच्छेद 32 – संवैधानिक उपचारों का अधिकार।''[7]

उपरोक्त अन्तरराष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय मानवाधिकारों के कानूनी एवं संवैधानिक स्वरूप को नकाराना या उनकी अवमानना किसी भी रूप में उचित नहीं हो सकती। परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि क्या मानवाधिकारों को मनवाना केवल राज्य पर छोड़ा जा सकता है। जबकि यह प्रश्न तो मानव के हृदयंगत का है। एक मानव दूसरे मानव को उसके मानवीय अधिकारों से कैसे वंचित कर सकता है। भारत जैसे देश में अनेक नीतिगत सिद्धांत हैं जिनको मनुष्य द्वारा अपनाकर मानव मात्र के कल्याण में भागीदार बना जा सकता है। इन सिद्धांतों में कौटिल्य के 'योग क्षेम' सिद्धांत को अपनाकर हम पुनः विश्व गुरू बन सकते हैं।

मानव अधिकारों के सफल और प्रभावी क्रियान्वयन की दृष्टि से भारतीय संदर्भ में कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित्य 'योगक्षेम' का सिद्धान्त अन्य सभी व्यवस्थाओं की तुलना में उपयुक्त लगता है। योग क्षेम का अर्थ है सबका भला, सबका कल्याण। मानवाधिकारों की रक्षा करके ही हम मानव का योग क्षेम सुनिश्चित कर सकते हैं। कौटिल्य ऐसे वातावरण के निर्माण पर बल देते हैं जहां मनुष्य निर्भय मुक्त और प्रसन्न रह सके तथा समानता की अनुभूति कर सके। दूसरे शब्दों में मनुष्य को न्याय पूर्ण और समता युक्त वातावरण उपलब्ध हो सके। मानव अधिकारों की आधुनिक संकल्पना भी मोटे तौर पर यही है। इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए कौटिल्य ने त्रिस्तरीय व्यवस्था पर बल दिया है :

1. राज्य की ओर से सहायता।
2. स्वयं की सहायता।
3. समाज की ओर से सहायता।

कौटिल्य के अनुसार भारत में अधिकार तथा कर्तव्य की अवधारणा राज्य के कार्यों, व्यक्ति के कर्तव्यों और दायित्वों तथा सामाजिक व्यवस्था के ढांचे में अन्तर्निहित है।

राज्य का कार्य ऐसे कानूनों और नीतियों की रचना करना है जो मानव अधिकारों की सुरक्षा करें न कि उनका हनन। कौटिल्य इस बात पर जोर देते हैं कि राज्य आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा प्रशासनिक कार्यों में समानता तथा न्याय सुनिश्चित करने के लिए हस्तक्षेप करे। राज्य का काम केवल कानून बनाना और जीवन की सम्पत्ति की रक्षा करना ही नहीं है, उसका काम इससे कहीं अधिक और व्यापक है। राज्य का काम अपने नागरिकों की सुख सुविधा में वृद्धि करना और उन्हें सभी प्रकार की सुरक्षा प्रदान करना भी है। कौटिल्य राज्य सहायता की व्यवस्था सुशासन के रूप में करता है। सुशासन के अभाव में मानव अधिकारों की कल्पना का अर्थ ही क्या है। सुशासित राज्य में नागरिक अपने को सुरक्षित अनुभव करता है। इसलिए सुशासन और मानव अधिकारों का चोली–दामन का संबंध है। प्रो. रे ने भी मानव अधिकारों को सुशासन की महत्वपूर्ण कसौटी बताया है। कौटिल्य उपेक्षित–वंचित वर्गों–महिलाओं, बच्चों, विकलागों इत्यादि के लिए राज्य की अग्रणी भूमिका को रेखांकित करता है। राज्य को इन जरूरतमंद वर्गों को विशेष अधिकार और सुविधाएं उपलब्ध कराने के प्रति सजग और सक्रिय रहना चाहिए।

स्व–सहायता का अर्थ है कि मनुष्य की अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों के प्रति चेतना और जागरूकता ताकि राज्य भी उसके अधिकारों का हनन न कर सके। कौटिल्य राज्य सहायता से भी अधिक बल स्व–सहायता पर देता है। स्व–सहायता एक उच्चतर आध्यात्मिक सिद्धान्त पर आधारित व्यवस्था है। वह आध्यात्मिक सिद्धान्त 'सर्वस्वल्विदंब्रह्म' और 'अहंब्रह्म्मास्मि' जैसे सूत्रों में वर्णित है, जिसका अर्थ है ईश्वर की सर्वव्यापकता, सभी जीवों

में ईश्वर की विद्य मानता। यदि मुझमें ईश्वर है तो वह अन्यों में भी है। इस सिद्धान्त का व्यावहारिक और मानवीय पक्ष है एक–दूसरे के प्रति अपनत्व, सम्मान, विश्वास और निष्ठा का भाव। कौटिल्य की समाज व्यवस्था में व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है अतएव उसे दूसरों के प्रति अपने नैतिक दायित्वों का निर्वाह करना ही होगा, अन्यथा वह दण्ड का भाग होगा।

मानव अधिकारों की रक्षा, उपयोग और वृद्धि का सबसे महत्वपूर्ण कारक है समाज द्वारा सहायता। इसका आशय यह है कि मानव अधिकार न केवल राज्य द्वारा बनाए गए कानूनों से सुनिश्चित किए जा सकते हैं और न व्यक्ति के दूसरों के प्रति नैतिक दायित्व से। उन्हें सुनिश्चित करने के लिए सामाजिक चरित्र, मानसिकता और दृष्टिकोण जरूरी है। दूसरे अर्थ में समानता, स्वतंत्रता तथा न्याय जैसी संकल्पनाएं केवल राजनैतिक या कानूनी नहीं हो सकतीं। वे सामाजिक–आर्थिक संकल्पनाएं भी हैं। शोषण मुक्त समाज के लिए शोषण विरोधी सोच तथा दृष्टिकोण अनिवार्य है। इसे हम उच्चतर सामाजिक चेतना या उदात्त सामाजिक भाव कह सकते हैं। कौटिल्य राज्य के निम्नलिखित आधार स्तम्भों का प्रतिपादन करता है।

1. शासक तथा शासन जनता का सेवक है न कि स्वामी।
2. धर्म का पालन अर्थात् विधि द्वारा शासन।
3. आत्मनिर्भर और स्वस्थ अर्थव्यवस्था। आर्थिक अपराधों का कठोर दण्ड व्यवस्था द्वारा दमन।
4. दण्ड नीति का सम्यक् पालन ताकि सम्पदा और भौतिक संवृद्धि का न्यायोचित संवृद्धि भी है।
5. राज्य का काम विनियमन है, कठोर एवं सर्वग्राही नियंत्रण नहीं।
6. वर्णाश्रम धर्म का पालन। यहां वर्ण से अभिप्रायः समाज का कार्य मूलक विभाजन है, जन्म आधारित जड़ जाति व्यवस्था नहीं। आश्रम का अर्थ जीवन की चार अवस्थाएं (ब्रहम्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास) है। जो उत्तरोत्तर मनुष्य को जीवन की पूर्णता की ओर ले जाती है।
7. चार पुरूषार्थ। ये हैं, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। चार पुरूषार्थों पर आधारित जीवन–व्यवस्था और समाज व्यवस्था मानव जीवन को उसकी सम्पूर्णता में देखती है, एकांगिता में नहीं।

कौटिल्य का राज्य वास्तव में कल्याणकारी है जिसका लक्ष्य सभी संसाधनों का भरपूर प्रयोग करके मानव का अधिकतम कल्याण सुनिश्चित करना है।

भूमण्डलीकरण और वैश्वीकरण के मौजूदा दौर में कौटिल्य की राज्य व्यवस्था और भी सार्थक लगती है। भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण की संकल्पना विश्व को एक इकाई मानने पर पर आधारित है। भारतीय संस्कृति तो आरम्भ से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त को मानती आई है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' –भारतीय संस्कृति का उद्घोष वाक्य है, जिसका अर्थ है सर्व जन कल्याण, मानव मात्र का कल्याण। वर्तमान आर्थिक उदारवाद में बाजार की केन्द्रीय भूमिका है जो मुनाफे पर आधारित है। इससे अमीर और गरीब की खाई पटने के बजाए बढ़ती जा रही है। भूमंडलीकरण आर्थिक दृष्टि से विकसित देशों की नव साम्राज्यवादी प्रवृत्ति है, जिससे मानव अधिकारों की सुरक्षा कैसे हो जाएगी। मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए अनियंत्रित उपभोग का रास्ता सहायक नहीं हो सकता। यही वजह है कि कौटिल्य ने राज्य को सलाह दी है कि वह मनुष्य की शोषणकारी प्रवृत्ति पर अंकुश लगाया जाए। कौटिल्य राज्य को निर्देश देता है कि वह निम्नलिखित व्यवस्थाएं करे :

1. अत्याधिक मुनाफे पर प्रतिबंध।

2. नाप–तोल का मानकीकरण।
3. वस्तुओं के अधिकतम मूल्य का निर्धारण।
4. व्यापार–वाणिज्य में पारदर्शिता ताकि भ्रष्टाचार और धोखाधड़ी पर काबू रखा जा सके।
5. नियोक्ता तथा कर्मचारी के बीच मित्रता पूर्ण सम्बन्ध।
6. प्राकृतिक संसाधनों पर राज्य का स्वामित्व।
7. सभी प्रकार की व्यापारिक गतिविधियों के मूल में सामाजिक हित की दृष्टि रखना।
8. केन्द्रीय पर्यवेक्षण।
9. प्रत्येक स्तर पर व्यक्ति की स्वेच्छा से भागीदारी।
10. स्वधर्म का पालन।

कौटिल्य संकट के समय में राज्य को पिता (अभिभावक) के रूप में सहायक मानता है परन्तु सामान्य परिस्थितियों में व्यक्ति तथा समाज को एक दूसरे के सहायक के रूप में देखता है।

कौटिल्य की व्यवस्था किसी युद्ध या क्रांति से उद्‌भूत नहीं है, उसकी जड़ें मानव प्रकृति तथा मानव मनोविज्ञान में निहित हैं। कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था का लक्ष्य मानव कल्याण है। कौटिल्य जिस सामाजिक व्यवस्था की कल्पना करता है, वह निम्नलिखित बातों पर आधारित हैं :

1. चयनात्मक दृष्टि बनाम सार्वभौमिक दृष्टि :–

कौटिल्य के अनुसार संसाधनों की कमी के कारण राज्य को चयनात्मक दृष्टि के आधार पर प्राथमिकताएं तय करनी होंगीं। उदाहरण के तौर पर वृद्ध, रोगी, विकलांग, महिलाएं, बच्चे, अनाथ आदि वर्गों के कल्याण की योजनाओं की रचना करने के लिए इन वर्गों का चयन कर इन्हें प्राथमिकता दी जाएगी। यह दृष्टि आर्थिक न्याय के सिद्धान्त पर भी खरी उतरती है। गांधी जी भी यह मानते थे कि प्रकृति के पास सबकी जरूरतों को पूरा करने के साधन तो हैं, पर सबकी लालसाओं को पूरा करने के लिए नहीं।

2. समाज बनाम राज्य की दृष्टि :–

आधुनिक व्यवस्था राज्य पर मानव कल्याण की जिम्मेदारी डालती है जबकि कौटिल्य मानव कल्याण के लिए मुख्यतः समाज पर जिम्मेदारी डालते हैं। उनकी दृष्टि में समाज स्वामी है, संप्रभु है और राज्य या शासन उसका सेवक। नोबल पुरस्कार विजेता सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. आमर्त्य सेन भी सभ्य समाज से ही परिवर्तन की आशा रखते हैं।

3. स्वरोजगार बनाम सरकारी रोजगार :–

राज्य की अर्थव्यवस्था इस प्रकार से नियोजित होनी चाहिए। जिससे व्यक्ति स्वावलम्बी बन सके और उसकी राज्य पर निर्भरता कम हो। राज्य लोगों के लिए स्वरोजगार के अधिकाधिक अवसरों का सृजन करे। इसके दो लाभ हैं। पहला राज्य पर निर्भरता में कमी और दूसरा आत्म निर्भरता प्रवृत्ति का विकास।

4. कर्तव्य बनाम अधिकार :–

राज्य व्यक्ति को अधिकार दे ताकि उसका सर्वांगीण विकास हो सके। परन्तु यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करे। भारतीय संस्कृति में कर्तव्य और अधिकार को एक दूसरे का पूरक माना गया है। अधिकारों की मांग के लिए नैतिक बल कर्तव्य पालन से ही मिलता है।

5. आत्म का विस्तार :–

आत्म सिकुड़कर अहंकार का रूप ले लेता है और विस्तार होने पर मानवता का। मनुष्य आत्म केन्द्रित होगा तो उसमें लोभ, द्वेष, शोषण जैसी नकारात्मक प्रवृत्तियां हावी होंगी, यदि वह आत्म का विस्तार कर जड़–चेतन सम्पूर्ण सृष्टि से एकाकार हो जाएगा तो उसमें सकारात्मक और रचनात्मक प्रवृत्तियां विकसित होंगी।

6. परिवार एक इकाई :–

कौटिल्य मानव विकास तथा कल्याण के लिए व्यक्ति को नहीं परिवार को समाज की इकाई मानता है। परिवार सामाजिक सुरक्षा का प्रभावी साधन है। कठिनाई के समय परिवार की भावनात्मक देखरेख का कोई विकल्प नहीं है। पारिवारिक लगाव और त्याग से जितना कल्याण हो सकता है उतना राज्य की नीतियों से नहीं। आधुनिक युग में परिवार नामक संस्था विघटित होती जा रही है। परिणाम स्वरूप मानव एकाकी जीवन की त्रासदी झेलने को अभिशप्त है।

आधुनिक व्यवस्थाओं को भारत के प्राचीन इतिहास से बहुत कुछ सीखना होगा। आधुनिक राज्य कार्य के अत्यधिक बोझ के कारण अक्षम होते जा रहे हैं। वे बुनियादी समस्याओं जैसे बेरोजगारी, गरीबी, अशिक्षा इत्यादि का भी समाधान नहीं कर पा रहे हैं। अपने देश की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत से कट कर सार्थक परिवर्तन कर पाना कठिन है। इसके लिए अपनी विरासत और परम्परा से जुड़ना होगा।

मानव अधिकारों के संदर्भ में कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था की सार्थकता :–

क्रीमीलेयर स्वयं ही अपना हित साध सकता है। उसे राज्य की सहायता की अधिक आवश्यकता नहीं रहती। प्रो. ए.पी. विजयापुर इसी मत के हैं।

राज्य पर निर्भरता कम होने से राज्य को वित्तीय संकट में फंसने से भी बचाया जा सकता है। परिवार सामाजिक सुरक्षा की जिम्मेदारी अपने पर लेकर राज्य के बोझ को कम कर सकता है।

दण्ड नीति राष्ट्रीय हितों और सामाजिक हितों को साधने का प्रभावी हथियार होती है। विधि का शासन शासक की तानाशाही के विरूद्ध सुरक्षा की गारंटी है। प्रो. शेखर सिंह ने कानून द्वारा संरक्षण के सिद्धान्त पर बल दिया है।

राज्य तथा व्यक्ति एक दूसरे के पूरक हैं, न कि विरोधी।

राज्य की भूमिका पर्यवेक्षक की भूमिका है, कठोर नियंत्रक की नहीं।

निष्कर्ष :–

अतः हम कह सकते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय मानवाधिकारों का सम्मान करते हुए बिना 'राज्य' पर बोझ बने कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार मानव का कल्याण, मानव के विकास तथा अधिकारों के संरक्षण से भी संभव है। मानव कल्याण की कौटिल्य की दृष्टि समग्र, सम्पूर्ण और सर्वांगीण कल्याण की दृष्टि है, मात्र भौतिक कल्याण की एकांगी दृष्टि नहीं। कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक व्यवस्थाओं की बारीकियों पर प्रकाश डालता है।

संदर्भ :–

1. डॉ. एस. सुब्रह्मण्यम, पुलिस और मानवाधिकार, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 16

2. वही, पृ. 16–17
3. वही, पृ. 19
4. वही, पृ. 19
5. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, भारत का संविधान, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 33
6. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, भारत का संविधान, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 37
7. डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, भारत का संविधान, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 38–39
8. सांख्यधर, एम.एम. कौटिल्य : आधुनिक कल्याणकारी राज्य का दार्शनिक भाग XXXVII, नं. 36, जनवरी 18, पृ. 19–2
9. कांगले, आर.पी. कौटिल्य अर्थशास्त्र (1965) खण्ड 1–3, मोतीलाल बनारसीदास।
10. राव, एम.पी. कृष्ण, स्टडीज इन कौटिल्य (1958), मुंशीराम मनोहर लाल।
11. चौधरी राधाकृष्ण : कौटिल्य के राजनैतिक विचार तथा संस्थाएं (1971) चौखम्भा संस्कृत श्रृंखला, बनारस।
12. कोहली ऋतु : कौटिल्य का राजनीतिक सिद्धान्त (1995) दीप एंड दीप, दिल्ली।

Dr. Ritu Kohli
Associate Professor, Department of Political Science, Maharaja Agrasen College, University of Delhi
(M) 9968283323
Email.: ritukohli9@gmail.com
Dr. Narendra Kumar, Reseacher
(M) 9891921365
Email:narendrakumar.sant@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 40-44

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत में महिला सशक्तिकरण एवं शिक्षा

डॉ. डी. जयभारती

सहायक प्राध्यापक, एस.आर.एम, आई.एस.टी, वड़पलनी, चेन्नई।

महिलाएं देश के सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए आवश्यक हैं। महिलाएं परिवार नियोजक, शिक्षिका और श्रम प्रदाता हैं। वे कृषि, औद्योगिक और सेवा क्षेत्रों के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। लेकिन महिलाओं की स्थिति इतनी खराब है और गरीबी उन्हें पुरुषों की तुलना में अधिक प्रभावित करती है, महिलाओं को सशक्त बनाना हर मुद्दे को हल करने का एकमात्र तरीका है। शिक्षित महिलाओं के रूप में, भारत सरकार और नागरिक समाज का महिलाओं की शिक्षा पर बड़ा प्रभाव है। शिक्षा महिलाओं को सशक्त बनाने की दिशा में पहला कदम है क्योंकि यह उन्हें बाधाओं को दूर करने, उनकी पारंपरिक जिम्मेदारियों को स्वीकार करने और उनके जीवन को बदलने में सक्षम बनाती है। इस प्रकार हमें भारत के हाल ही में एक बिजलीघर और महिला सशक्तिकरण के रूप में उभरने के आलोक में शिक्षा के महत्व को कम नहीं आंकना चाहिए। समाज में महिलाओं की स्थिति को बदलने का सबसे प्रभावी साधन शिक्षा है। इसके अतिरिक्त, शिक्षा इक्विटी को बढ़ावा देती है और इसका उपयोग किसी के परिवार की स्थिति और विकास में सुधार के लिए किया जा सकता है। शिक्षा में महिला सशक्तिकरण के मूल्य, भारत में महिलाओं की उपलब्धियों, सरकार की पहल और महिला शिक्षा में बाधाओं पर चर्चा की गई है।

महिला सशक्तिकरण :–

महिला सशक्तिकरण महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और कानूनी शक्ति को बढ़ाने और विकसित करने की प्रक्रिया है ताकि उनके समान अधिकारों की गारंटी दी जा सके, उन्हें आत्म–आश्वासन दिया जा सके और उन्हें स्वतंत्र रूप से और आत्म–सम्मान और सम्मान के साथ जीने में सक्षम बनाया जा सके। यह विचार दर्शाता है कि कैसे लोग उन विकल्पों में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं जो यह निर्धारित करते हैं कि उनके जीवन को कैसे आकार दिया जाता है। महिलाओं की उन्नति और सशक्तिकरण के बिना समावेशी विकास और मानव विकास को पूरा नहीं किया जा सकता है।

भारत में महिला :–

पूरे भारतीय इतिहास में महिलाओं की स्थिति में भारी बदलाव आया है। भारत के प्राचीन इतिहास के प्रारंभ में, विशेष रूप से इंडो आर्यन–भाषी क्षेत्रों में, उनकी सामाजिक रैंक में गिरावट आई और प्रारंभिक आधुनिक युग में उनकी अधीनता अच्छी तरह से बनी रही। लोकसभा अध्यक्ष, भारत के राष्ट्रपति और भारत के प्रधान मंत्री, कुछ ऐसे ही महत्वपूर्ण पदों में से कुछ हैं जो महिलाओं ने भारत सरकार में धारण किए हैं। लेकिन कई भारतीय

महिलाओं को अभी भी महत्वपूर्ण बाधाओं का सामना करना पड़ता है। भारत में, कुपोषण बच्चों के स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है और विशेष रूप से गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं और किशोरियों में प्रचलित है। महिलाओं के खिलाफ हिंसा, विशेषकर यौन उत्पीड़न, देश में एक प्रमुख मुद्दा है।

भारत में शिक्षा :–

भारत की शिक्षा प्रणाली ज्यादातर प्रबंधित है और इसे तीन स्तरों में विभाजित किया गया हैरू केंद्रीय, राज्य और स्थानीय। छह से चौदह वर्ष की आयु के बच्चे भारतीय संविधान के अनुच्छेदों और 2009 के बच्चों के मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के अधिकार अधिनियम के तहत मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के हकदार हैं। भारत में, निजी स्कूलों के लिए 7 : 5 पब्लिक स्कूल हैं। भारतीय शिक्षा में विभिन्न नीतिगत पहलें हैं। संविधान के 42वें संशोधन के बाद से, जिसने 1976 में शिक्षा को 'समवर्ती विषय' घोषित किया, शिक्षा नीतियों और उनके कार्यान्वयन को भारत के प्रत्येक संवैधानिक राज्य के कानूनों द्वारा नियंत्रित किया गया है। यह प्रासंगिक है कि संघीय और राज्य सरकारें संयुक्त रूप से शिक्षा का प्रशासन और वित्त करती हैं।

प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों का बड़ा हिस्सा राज्य और नगरपालिका सरकारों द्वारा चलाया जाता है, और सरकारी–प्रबंधित प्राथमिक विद्यालयों की संख्या बढ़ रही है। 2005–2006 के शैक्षणिक वर्षों के दौरान, प्राथमिक शिक्षा (ग्रेड 1–8) प्रदान करने वाले 16.86% स्कूल निजी संगठनों द्वारा संचालित किए गए, जबकि सरकार द्वारा संचालित 83.13% स्कूल। निजी तौर पर चलाए जा रहे स्कूलों में से एक तिहाई 'सहायता प्राप्त' हैं, जबकि दो तिहाई 'गैर–सहायता प्राप्त' हैं। सरकारी और निजी तौर पर संचालित स्कूल 73:27 के अनुपात में कक्षा 1 से 8 तक के छात्रों का नामांकन करते हैं। हालाँकि, यह अनुपात ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च (80 : 20) और महानगरीय क्षेत्रों (36 : 66) में बहुत कम (80 रू0) है।

2011 की जनगणना के अनुसार, 73% लोग साक्षर थे, जिनमें पुरुष साक्षरता दर 81% और महिला साक्षरता दर 65% थी। 2017–18 में, राष्ट्रीय सांख्यिकी आयोग ने साक्षरता दर की जांच की, जो 77.7% थी, जिसमें 84.7% पुरुष और 70.3% महिलाएं प्रतिक्रिया दे रही थीं। दर की तुलना 1951 से की जाती है, जब दरें 18%, 27% और 9% थीं, और 1981 से, जब वे क्रमशः 41%, 53% और 29% थीं। भारत की बेहतर शिक्षा प्रणाली को अक्सर देश के आर्थिक विकास के प्रमुख कारकों में से एक के रूप में श्रेय दिया जाता है। अधिकांश प्रगति, विशेष रूप से उच्च शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधान में, विभिन्न सार्वजनिक संस्थानों को जिम्मेदार ठहराया गया है। हालांकि, उच्च शिक्षा में बढ़ते नामांकन के बावजूद, जो 2019 में 26.3% के सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) तक पहुंच गया, भारत को विकसित देशों के तृतीयक शिक्षा नामांकन स्तरों के साथ पकड़ने से पहले अभी भी एक लंबा रास्ता तय करना है। इसके अलावा भारत में सहशिक्षा भी स्कूलों और कालेजों में दिया जा रहा है ब्रिटेनिका विश्वकोश के अनुसार, सह शिक्षा का अर्थ है कि "लड़के तथा लड़कियों को एक ही समय एक ही स्थान पर एक ही अधिकारी द्वारा एक ही शासन के अधीन एक ही तरीके से एक ही कोर्स पढ़ाया जाए।"[1] माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53) के शब्दों में "समता के आधार पर एक ही संस्था में लड़कों और लड़कियों को शिक्षा देना सह शिक्षा कहलाता है।"[2]

सह शिक्षा संस्थाओं में लड़के एवं लड़कियाँ इकट्ठे पढ़ते हैं, इकट्ठे खेलते हैं, इकट्ठे काम करते हैं। सहशिक्षा व्यवस्था भारत के लिए नई नहीं है। वैदिक काल में गुरु के आश्रम में लड़के–लड़कियाँ एक साथ पढ़ते

थे। स्वतंत्रता के पश्चात सह शिक्षा संस्थाओं का बहुत विकास हुआ है, विशेषकर पब्लिक स्कूल प्रणाली में।

भारत में महिला :–

पूरे भारतीय इतिहास में महिलाओं की स्थिति में भारी बदलाव आया है। भारत के प्राचीन इतिहास के प्रारंभ में, विशेष रूप से इंडो आर्यन–भाषी क्षेत्रों में, उनकी सामाजिक रैंक में गिरावट आई और प्रारंभिक आधुनिक युग में उनकी अधीनता अच्छी तरह से बनी रही। लोकसभा अध्यक्ष, भारत के राष्ट्रपति और भारत के प्रधान मंत्री, कुछ ऐसे ही महत्वपूर्ण पदों में से कुछ हैं जो महिलाओं ने भारत सरकार में धारण किए हैं। लेकिन कई भारतीय महिलाओं को अभी भी महत्वपूर्ण बाधाओं का सामना करना पड़ता है। भारत में, कुपोषण बच्चों के स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है और विशेष रूप से गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं और किशोरियों में प्रचलित है। महिलाओं के खिलाफ हिंसा, विशेषकर यौन उत्पीड़न, देश में एक प्रमुख मुद्दा है।

महिला शिक्षा की आवश्यकता :–

'एक महिला को शिक्षित करने से एक पूरा परिवार शिक्षित होता है, 'जवाहरलाल नेहरू, पीटी का कहना है।' एक पुरुष को शिक्षित करना एक व्यक्ति को शिक्षित करता है। भारत माता भी तब सशक्त होती है जब महिलाएं करती हैं, 'महिलाओं की शिक्षा भारत के समग्र विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है। दुनिया के आधे मानव संसाधनों को विकसित करने में मदद करने के अलावा, यह जीवन स्तर को भी ऊपर उठाती है। देश और विदेश दोनों जगह। यह कहना असत्य नहीं है कि शिक्षा सभी समस्याओं का उत्तर है। बुद्धिजीवियों द्वारा शिक्षा की कई परिभाषाएँ दी गई हैं, लेकिन एम. फुले का शब्द सबसे महत्वपूर्ण है। 'शिक्षा एक ऐसी चीज है जो अंतर को स्पष्ट करती है। अच्छाई और बुराई के बीच, 'एम. फुले कहते हैं। यदि हम उपरोक्त विचार की जांच करते हैं, तो हम देख सकते हैं कि हमारे पूरे इतिहास में हुई सभी क्रांतियों में शिक्षा को शामिल किया गया है। शिक्षा में किसी की सोच, दृष्टिकोण और दृष्टिकोण को बदलना शामिल है। व्यवहार के अन्य पहलुओं के बीच। उच्च स्तर की शिक्षा वाली महिलाएं अपनी बेटियों की शिक्षा का समर्थन करने और अपने सभी बच्चों को बेहतर मार्गदर्शन देने की अधिक संभावना रखती हैं। शिक्षित महिलाएं जनसंख्या वृद्धि और नवजात मृत्यु दर में कमी लाने में योगदान दे सकती हैं।

शिक्षा के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाना :–

किसी भी समाज, राज्य या राष्ट्र का मूलभूत घटक महिलाओं का सशक्तिकरण है। एक बच्चे के रोजमर्रा के अस्तित्व में, एक महिला प्रमुख भूमिका निभाती है। महिलाएं हमारी संस्कृति में एक बड़ी भूमिका निभाती हैं। महिलाओं के शिक्षा आधारित सशक्तिकरण से एक बेहतर मानसिकता पैदा हो सकती है। भारत की सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक प्रगति के लिए, इसलिए यह आवश्यक है। भारतीय संविधान सरकार को सकारात्मक कार्रवाई के माध्यम से महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने का अधिकार देता है। महिलाओं का जीवन शिक्षा से बहुत प्रभावित होता है। महिलाओं के राजनीतिक अधिकार दुनिया भर में कई औपचारिक और अनौपचारिक गतिविधियों का केंद्र बिंदु हैं क्योंकि महिला सशक्तिकरण एक विश्वव्यापी मुद्दा है। NAROIBI अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन वह स्थान था जहाँ पहली बार महिला सशक्तिकरण का विचार पेश किया गया था। शिक्षा महिलाओं को सशक्त बनाने की दिशा में पहला कदम है क्योंकि यह उन्हें बाधाओं को दूर करने, उनकी पारंपरिक जिम्मेदारियों को स्वीकार करने और उनके जीवन को बदलने में सक्षम बनाती है। नतीजतन, हमें महिलाओं को सशक्त बनाने

में शिक्षा की भूमिका को कम करके नहीं आंकना चाहिए। महिलाओं के शैक्षिक अवसरों में हाल के सुधारों को देखते हुए, भारत के अगले वर्षों में एक वैश्विक महाशक्ति बनने की उम्मीद है। महिला शिक्षा में बढ़ते बदलावों के परिणामस्वरूप महिला सशक्तिकरण महिलाओं की स्थिति स्थापित करने में एक महत्वपूर्ण मुद्दे के रूप में उभरा है।

महिला साक्षरता : एक विश्व परिदृश्य :–

दुनिया भर में 129 मिलियन महिलाओं के स्कूल से बाहर होने का अनुमान है, जिनमें प्राथमिक विद्यालय में 32 मिलियन, निम्न माध्यमिक विद्यालय में 30 मिलियन और उच्च माध्यमिक विद्यालय में 67 मिलियन शामिल हैं। अप्रभावित देशों की तुलना में संघर्ष प्रभावित देशों में लड़कियों के स्कूल से बाहर होने की संभावना दोगुनी है। दुनिया के केवल 49% देशों ने बुनियादी शिक्षा में लैंगिक समानता हासिल की है। सिर्फ 24% देशों ने उच्च माध्यमिक शिक्षा में लैंगिक समानता हासिल की है और निचले विद्यालयों में 42%, जो कि लैंगिक अंतर को चौड़ा करता है।

स्वतंत्र भारत में नारी शिक्षा का विकास :–

स्वतंत्र प्राप्ति के पश्चात स्त्री शिक्षा के प्रसार तथा गुणात्मक सुधार के क्षेत्र में तेजी से प्रगति हुई है, परंतु इस प्रगति को बहुत संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। संसार के उन्नतिशील देश हुमसे इस क्षेत्र में बहुत आगे हैं। भारत में इस दिशा में धीमी गति के कारणों की समीक्षा अनेक समितियों तथा आयोगों ने की है। "राममूर्ति समिति (1990) ने महिला शिक्षा की धीमी गति के बारे में कहा है कि भारत में महिलाओं की शिक्षा पर हुए अनुसंधान से मालूम होता है कि कई ऐसे सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक कारक हैं, जिनके कारण महिलाएँ शिक्षा प्रणाली में भाग नहीं ले पातीं।[3]

महिला शिक्षा का प्रभाव :–

लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने से समुदायों, देशों और दुनिया में सुधार होता है। जो लड़कियां अपनी शिक्षा पूरी कर लेती हैं उनके लंबे, सुखी जीवन की संभावना अधिक होती है और कम उम्र में शादी करने की संभावना कम होती है। वे अपना और अपने परिवार का भविष्य सुधारते हैं, अधिक पैसा कमाते हैं, और उन निर्णयों में भाग लेते हैं जो उन्हें सीधे तौर पर प्रभावित करते हैं। लड़कियों की शिक्षा अर्थव्यवस्था को बढ़ाती है और असमानता को कम करती है। यह अधिक स्थिर, मजबूत समाज के विकास को बढ़ावा देता है जहां सभी लोगों, विशेष रूप से लड़कों और पुरुषों को अपनी पूरी क्षमता का एहसास करने का अवसर मिलता है।

महिला साक्षरता दर और महिला शिक्षा के प्रभाव को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक :–

– मौसमी कार्य बल का प्रवास सामाजिक सम्मेलनों के अनुसार प्रारंभिक विवाह।
– सामाजिक मानकों के कारण लड़कियों पर प्रतिबंध लगाया गया।
– युवतियां घर का काम संभालती हैं।
– लिंग में घरेलू और सामाजिक असमानताएँ।
– अपर्याप्त शैक्षिक संसाधन।
– परिवार की आर्थिक स्थिति।
– महिलाओं की सेहत।

– भारत की कम साक्षरता दर के निहितार्थ।

भारत में अभी भी लैंगिक असमानता है, और महिला शिक्षा के क्षेत्र में अभी और काम किया जाना बाकी है। भारत में अभी भी लैंगिक असमानता है, और महिला शिक्षा के क्षेत्र में अभी और काम किया जाना बाकी है। एक बुनियादी संकेतक पुरुष और महिला साक्षरता दर के बीच विसंगति है। जबकि महिलाओं की साक्षरता दर केवल 65.46% है और पुरुषों की साक्षरता दर 82.14% से अधिक है। महिलाओं का मानना था कि एक गृहिणी होने के नाते उन्हें बस इतना ही करना चाहिए। भारत की निम्न साक्षरता दर के कारण इस प्रकार हैं।

1. महत्वपूर्ण गरीबी।
2. शिक्षा पर प्राथमिकता की कमी।
3. स्कूलों की कमी।
4. विद्यार्थियों के लिए कक्षा स्थान की कमी।
5. कई स्कूलों में पर्याप्त साफ–सफाई का अभाव है।
6. पीने के पानी तक पहुंच नहीं।
7. बाथरूम की सुविधा नहीं।
8. निचली जातियों के प्रति पूर्वाग्रह के कारण पढ़ाई बीच में ही छोड़ देना।
9. लिंग की असमानता।

निष्कर्ष :–

भारत सरकार (जीओआई) के अनुसार, एक कमजोर स्थिति से सशक्त अधिकार की ओर बढ़ने का मतलब है, 'कमजोर स्थिति से संक्रमण का मतलब है।' महिलाओं की सामाजिक स्थिति को बदलने का सबसे प्रभावी साधन शिक्षा है। शिक्षा असमानता को कम करती है, घर और काम दोनों जगहों पर महिलाओं की स्थिति में सुधार करती है, और महिलाओं को अपने कौशल विकसित करने के लिए सभी स्तरों पर प्रशिक्षित, प्रेरित और प्रेरित करती है। सरकार महिलाओं और लड़कियों के लिए कई शैक्षिक कार्यक्रम प्रदान करती है, जिसमें स्कूल में मुफ्त लंच, आवास, कपड़े, साइकिल, छात्रवृत्ति और विशेष ट्रेन किराए शामिल हैं। शिक्षा द्वारा महिलाओं को बुद्धिमान, शक्तिशाली और मजबूत बनने के लिए सशक्त किया जाता है। व्यवसाय की स्थापना एक लड़की को सशक्त बनाने की दिशा में पहला कदम है।

संदर्भ :–

1. भारत में नारी शिक्षा, पृष्ठ सं. 67
2. भारत में नारी शिक्षा, पृष्ठ सं. 67
3. भारत में नारी शिक्षा, पृष्ठ सं. 78

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 45-51

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रसाद की रंगदृष्टि और हिंदी आलोचना

चुन्नू कुमार
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

शोध सारांश :–

प्रसाद पारखी दृष्टि वाले एक पुनरुत्थानवादी और आधुनिक रचनाकारहैं। उनके नाटक शुद्ध साहित्यिक नाटक हैं। उन्होंने संस्कृत और आधुनिक नाट्यशैलियों को ग्रहण कर अपने नाटकों को आधुनिक युग तथा आधुनिक रंगमन्च के अनुकूल रखने का प्रयास किया हैं। कुछ आलोचकों ने प्रसाद के नाटकों में भाषा की जटिलता, गीतों, पात्रों और दृश्यों की अधिकता तथा संवादों में काव्यात्मकता होने के कारण माना हैं कि उन्हें रंग मंच का ज्ञान नहीं था और उनके नाटक रंगमंचीय प्रस्तुति के योग्य नहीं हैं। जबकि कुछ ने इन वजहों को रंगमंचीय प्रस्तुति में बाधा न मानकर उनके नाटकों को न केवल रंगमंचीय प्रस्तुति के योग्य माना हैं, अपितु श्रेष्ठ नाटक भी माना हैं। प्रसाद के नाटकों को रंगमंचीय प्रस्तुति के योग्य तथा श्रेष्ठ नाटक मानने वालों का मत हैं कि अगर कुशल रंग–निर्देशक और विकसित रंगमन्च हों तो उनके नाटकों में बिना किसी काट–छाँट के उन्हें सम्पूर्ण रूप में भी सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रसाद की रंगदृष्टि को देखने पर हम पाते हैं कि प्रसाद की दृष्टि में रंगमन्च के लिए नाटक नहीं, अपितु नाटक के लिए रंगमन्च उपयुक्त होना चाहिए। प्रसाद भारतीय संस्कृति के परम उपासक थे, परंतु उनके आगमन से पूर्व हिंदी के क्षेत्र में पारसी थियेटर का धाक था और सिनेमा का भी बहुत प्रचार–प्रसार हो चुका था। इन दोनों के माध्यम से भारतीय संस्कृति पर प्रहार हो रहा था। साथ ही भारतीय सांस्कृतिक नाटकों के लिए रंगमंच का अभाव था। इसलिए प्रसाद पारसी थियेटर तथा सिनेमा में कमियाँ निकालते थे और हिंदी नाटकों के लिए संस्कृत, पारसी और पाश्चात्य रंगमंच से भिन्न एक ऐसे रंगमन्च का विकास चाहते थे, जो संस्कृत, पारसी और पाश्चात्य रंगमन्च के कुछ तत्वों को ग्रहण कर बना हो, जिसके रंग–निर्देशक और अभिनेता सुशिक्षित तथा सूत्रधार मर्मज्ञ हों।

बीज शब्द :–

पुनरुत्थानवादी (एक ऐसी विचारधारा का समर्थक, जिसका उदय भारत में उस वक्त हुआ जब भारत यूरोप के सम्पर्क में आया। इस विचारधारा के अनुसार "वेद और उपनिषद भारत के समग्र इतिहास का निचोड़ है। भारत का प्राचीन ज्ञान चाहे जितना भी महान हो, किन्तु वह यथेष्ट नहीं है। इस प्राचीन ज्ञान का सामंजस्य हमें उस नवीन ज्ञान से बिठाना चाहिए जो यूरोप में जन्मा और वहीं विकसित हुआ।"),

क्लिष्ट (कठिन), मर्मज्ञ (रहस्य को जाननेवाला), परिष्कृत (सुधारा हुआ), अविरल (मिला या सटा हुआ), उच्छेद (जड़ से उखाड़ना), फीलपाँवी (ऐसी भाषा, जिसमें बड़े–बड़े वाक्यों और अनावश्यक शब्दों का जाल हों),

परम (अत्यंत, मुख्य), अतएव (इस कारण से)

शोध आलेख :-

प्रसाद शुद्ध साहित्यिक नाटक के जन्मदाता हैं और हिंदी नाटक के युग–निर्माता नाटककार के रूप में भी जाने जाते हैं। हिंदी साहित्य में विशेषकर वे अपने नाटकों एवं काव्यों के आधार पर प्रसिद्ध हुए हैं। अन्य साहित्यकारों की भाँति वे भी कुछ आलोचकों और साहित्यकारों की दृष्टि में एक बड़े कवि और नाटककार हैं तो कुछ की दृष्टि में नहीं। मिसाल के तौर पर मार्क्सवादी आलोचक आचार्य नन्द दुलारे वाजपई लिखते है कि "प्रसादजी अपने युग के सबसे बड़े पौरुषवान कवि थे। मैथिलीशरण जी का काव्य करुणा के रंग से ओत–प्रोत है, शक्ति का संकल्पात्मक स्रोत उसमें उतना नहीं है। हरिऔध जी के "प्रिय प्रवास" के संगीत में पौरुष है; किन्तु अपने समय की संकोचशील प्रवृत्तियों की छाया भी उसमें पड़ी हुई है। निराला जी का पौरुष नारी के स्नेह से ही नहीं, सम्मान से भी सम्बद्ध होने के कारण 'रोमैण्टिक टाइप' का है। श्री सुमित्रानन्दन पंत जी के सर्वश्रेष्ठ पल्लव (काव्य) में बाल्य सुलभ स्निग्धता और निर्मलता है; किन्तु प्रसाद जी का काव्य एकमात्र शक्ति की साधना का एक अविरल प्रवाह है। उनके काव्य में पुरुष और नारियाँ दोनों ही इसी शक्ति की साधना में तन्मय हैं। इसीलिए मैं प्रसाद जी को हिन्दी का सबसे प्रथम और सबसे श्रेष्ठ शक्तिवादी और आनन्दवादी कवि मानता हूँ।"

वही दूसरी तरफ प्रगतिशील लेखक प्रेमचंद ने उन्हें गड़े मुर्दे उखाड़ने वाले रचनाकार कहा है। प्रेमचन्द का साहित्य मुख्यतः दुःख पर आधारित है। दुःख का बोध करा देना ही शक्ति का स्रोत बहा देना उनका मूल मंत्र था। इसके विपरीत प्रसाद संस्कृत और स्वस्थ स्त्री और पुरुष की शक्ति का रहस्य ही प्रकट करते रहे हैं। शक्ति का परिचय करा देना ही दुःख का उच्छेद कर डालना प्रसाद का मूल मंत्र था। प्रसाद बुद्धिवादी न होते हुए भी एक आधुनिक रचनाकार है। तर्क के आधार पर वे किसी तथ्य पर पहुँचने के पक्षधर नहीं हैं। इस अर्थ में वे बुद्धिवादी नहीं हैं, परंतु प्रत्येक वस्तु को खुली निगाह से देखने और उसकी धारणा बनाने के पक्षधर हैं। इस अर्थ में वे आधुनिक है। प्रसाद ने अपने नाटकों को आधुनिक युग और आधुनिक रंगमन्च के अनुकूल रखने का प्रयास किया है। उनके नाटकों में से "कामना" और "एक घूँट" को छोड़कर शेष समस्त नाटक कल्पना–प्रधान न होकर ऐतिहासिक है और राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक चेतना से युक्त हैं। प्रसाद के नाटक जीवनी–प्रधान हैं और उनके प्रत्येक नाटक में किसी एक व्यक्ति की ही नहीं; परंतु अनेक व्यक्तियों की जीवन–घटनाएँ वर्णित हैं और देश–प्रेम का भाव भी अभिव्यक्त है। उन्होंने देश–प्रेम–संबंधि भावों की अभिव्यक्ति हेतु अतीत का सहारा लिया हैं।

इस संदर्भ में आचार्य नंददुलारे बाजपेयी और श्री राजेश्वर प्रसाद अर्गल के भी मत मिलते–जुलते हैं। आचार्य नंददुलारे बाजपेयी के अनुसार "ऐतिहासिक नाटकों की रचना करते हुए भी देश के तत्कालीन संपूर्ण राष्ट्रीय वातावरण का भी प्रसाद ने ध्यान रखा है। वहां भी युग की वस्तु से भिन्न कोई वस्तु वे नहीं लाए हैं। उनके नाटकों में इसी कारण एक भास्वरता और संपन्नता है।"

वहीं श्री राजेश्वर प्रसाद अर्गल के अनुसार "प्रसाद जी का साहित्य केवल देश–सेवा का साधन मात्र था। साहित्य–सेवा उनका प्रथम उद्देश्य नहीं जान पड़ता। अतएव उनके नाटकों में केवल साहित्य देखना उनके प्रति अन्याय करना है। अपने नाटकों में वे इस आदर्श में पूर्ण सफल भी हुए हैं। औ रइनके द्वारा जो देश–सेवा उन्होने की है वह कोई भी हिंदी संसार में कर नहीं सका है। महात्मा जी ने क्रियात्मक देश–सेवा के क्षेत्र में जो कुछ किया है प्रसाद जी ने वही साहित्य के क्षेत्र में किया। और इस रूप में प्रसाद जी का स्थान हमारे राष्ट्रीय नेता

से किसी प्रकार कम नहीं।"

प्रसाद के नाटकों में पुरुषों की तरह स्त्री किसी वर्ग का प्रतीक या प्रतिनिधि बनकर नहीं आई हैं। उनके कवि व्यक्तित्व का प्रभाव उनके नाटकों में भी दिखाई पड़ता है, क्योंकि उनके नाटक काव्यत्व प्रधान हैं। उनकी नाट्यशैली पर नाट्य–पद्धति का प्रभाव तथा उनके नाट्य–लेखन में गद्य–पद्य का मिश्रण दिखाई पड़ता है। साथ ही पौराणिक आख्यानों के प्रति उनकी रुचि भी दिखाई पड़ती है।

प्रसाद के नाटकों की रंगमंचीय प्रस्तुति के संदर्भ में आलोचकों के मुख्यतः दो मत मिलते हैं– एक मत के अनुसार "प्रसाद को रंगमन्च का ज्ञान नहीं था। उनके नाटक साहित्यिक नाटक हैं और वे रंगमंचीय प्रस्तुति के अयोग्य हैं।" वहीं दूसरे मत के अनुसार "प्रसाद के नाटक श्रेष्ठ नाटक हैं और वे रंगमंचीय प्रस्तुति के योग्य भी हैं।"

प्रसाद के नाटकों को रंगमंचीय प्रस्तुति के अयोग्य ठहराने वाले आलोचक उनके नाटकों में सबसे बड़ा दोष भाषा के संदर्भ में बताते हैं। उनका मानना है कि "प्रसाद के नाटकों की भाषा परिष्कृत, संस्कृतनिष्ठ, साहित्यिक और काव्यात्मक है। उसमें मिश्र और संयुक्त वाक्यों का प्रयोग अधिक है। इसलिए वह क्लिष्ट भाषा है। नाटक की सहज–सरल भाषा रंगकर्मियों को नाटक की ओर आकर्षित करती है जबकि क्लिष्ट भाषा उनके लिए समस्या खड़ी कर देती है। ऐसी भाषा में नाटकों को पढ़ना और समझना उन्हें कठिन लगता है, फिर नाटक के अर्थ का अभिनय व्यापार में सार्थक रूपान्तरण निश्चय ही असम्भव होगा।"

उनकी भाषा में दोष स्वीकार कर नलिन विलोचन शर्मा ने उसे "फीलपाँवी" कहा है।

नलिन विलोचन शर्मा की मान्यता है कि "प्रसाद की भाषा के बड़े–बड़े वाक्यों, शब्द जाल, शब्दों की अमितव्ययता और अनावश्यक फुलाव में 'फीलपाँवी' लक्षण विद्यमान हैं।"

नामवर सिंह भी प्रसाद की भाषा में दोष मानते हैं। वे लिखते हैं कि "भाषा की नदी के उमड़ते ही न भावों में कृपणता रही, न भाषा की। सर्वत्र शब्दों को लुटाने और मुक्त हस्तदान की प्रवृत्ति के कारण किसी भाव या वस्तु को नपे–तुले शब्दों में कसने की आकांक्षा न रही।"

प्रसाद के नाटकों को मंचन के अयोग्य ठहराने वाले आलोचक उनके नाटकों में दूसरा दोष "दृश्यों की भरमार" को बताते हैं। वे मानते हैं कि "दृश्यों की भरमार" से उनके नाटक विशाल आकार वाले हैं। जैसे– "अजातशत्रु", "स्कन्दगुप्त" और "चन्द्रगुप्त" ।वे मानते हैं कि इन नाटकों को सम्पूर्ण रूप से ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने में घंटों लग जाएंगे।

वे उनके नाटकों में पात्रों एवं गीतों की अधिक संख्या को भी दोष मानते हैं। उनकी दृष्टि से रंगमंच पर अधिक पात्रों की भूमिका निभवाना रंग–निर्देशक के लिए और अधिक गीतों का प्रयोग करना रंगकर्मियों के लिए समस्या जनक काम हैं।

प्रसाद के नाटकों को रंगमंचीय प्रस्तुति के योग्य मानने वाले आलोचकों का मत है कि "रंग–निर्देशक नाटकों को हुबहू प्रस्तुत करने के लिए प्रतिबद्ध नहीं रहता है। वह आवश्यक्तानुसार उनमें कुछ न कुछ परिवर्तन करता ही है। अतः प्रसाद के नाटकों में आवश्यक्तानुसार परिवर्तन लाकर उनकी सफल प्रस्तुति की जा सकती है और की गई भी है।"

प्रसाद के नाटकों को रंगमंचीय प्रस्तुति के योग्य ठहराने वाले आलोचकों के मत अधिक तार्किक और

प्रमाणिक हैं। वे मानते हैं कि निःसंदेह प्रसाद के नाटकों को प्रस्तुत करने में कुछ चुनौतियाँ जरूर है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उनके नाटक श्रेष्ठ और प्रस्तुति के योग्य नहीं हैं। वे मानते हैं कि सुशिक्षित, कुशल और प्रतिभाशाली निर्देशक तथा विकसित रंगमंच द्वारा उनके नाटकों की सफल प्रस्तुति की जा सकती है और अब तक कई बार की जा चुकी है। वे तर्क देते हैं कि प्रसाद के नाटकों में दृश्यों की संख्या अधिक है, किन्तु यदि उनका विश्लेषण करें तो प्रायः पाँच प्रकार के दृश्य ही मुख्य हैं –

(1) वन, उपवन, आश्रम, पथ, स्तूप;

(2) राजभवन, प्रकोष्ठ, राज्यसभा;

(3) नदीतट;

(4) स्कंधावार, शिविर;

(5) बंदीगृह।

प्रसाद के नाटकों को प्रस्तुति के योग्य मानने वाले इन आलोचकों का मत है कि "इन पाँच प्रकार के दृश्य–बन्धों के आधार पर प्रसाद के सारे नाटकों का दृश्यांकन बहुत कष्ट साध्य कार्य नहीं कहा जा सकता। राज्यश्री, विशाख जैसे प्रारंभिक और जनमेजय का नागयज्ञ तथा ध्रूवस्वामिनी जैसे बाद के नाटक इसीलिए मंचन की कोई बहुत बड़ी समस्या नहीं प्रस्तुत करते। तब केवल अजातशत्रु, स्कंदगुप्त और चन्द्रगुप्त ही तीन ऐसे नाटक रह जाते हैं जिनमें देश–काल का बिखराव ही नहीं, दृश्य–परिवर्तन भी बड़ी त्वरा से होता है। वे रंगकर्मियों के लिए चुनौती अवश्य प्रस्तुत करते हैं; किन्तु प्रतिभाशाली निर्देशक तथा विकसित रंगमंच के लिए उनका प्रस्तुतीकरण भी असंभव नहीं है।

उनमें पर्याप्त काट–छाँट की जा सकती है, कई दृश्यों को निकाला भी जा सकता है अथवा उनको एक–दूसरे में मिलाया जा सकता है।"

इन आलोचकों का यही मत गीतों के संदर्भ में भी है। ये मानते हैं कि प्रदर्शन के समय को कम करने के लिए दृश्यों की भाँति गीतों में भी काट–छाँट की जा सकती है।

वे मानते हैं कि यदि उन्हें ज्यों का त्यों प्रस्तुत करना हो तो विशिष्ट रंग–शैलियों अथवा विकसित यांत्रिक विधि–विधानों का भी सहारा लिया जा सकता है।

पात्रों के संदर्भ में उनका मत है कि प्रसाद के नाटकों में मुख्य पात्र उतने अधिक नहीं हैं, जितने सामान्य पात्र। सामान्य पात्रों की संख्या इसलिए भी और बढ़ जाती है क्योंकि उसमें सैनिक, दास, दासी, प्रहरी, अमात्य, दंडनायक, सेनापति, दूत, सखियाँ आदि भी शामिल हैं। निश्चित रूप–से ऐसे पात्रों की संख्या कम की जा सकती है। कई नाटकों में इस प्रकार के पात्र भी आते हैं जो सारे नाटक–भर में दो–चार संवाद ही बोलते हैं। वररुचि, वासवदत्ता, सुदत्त, सारिपुत्र, मौर्य, मौर्यपत्नी, गांधार नरेश आदि अनेक ऐसे पात्र हैं जिन्हें हटाया जा सकता है। शांता गांधी और सुप्रसिद्ध रंगकर्मी इब्राहिम अल्काजी ने भी प्रसाद के नाटकों को रंगमन्चीय प्रस्तुति के योग्य ठहराने के पक्ष में अपने मत दिए हैं––

शांता गांधी लिखते हैं कि "समुचित साधन होंतो सभी कठिनाइयों को दूर करके प्रसाद के नाटकों का सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया जा सकता है।"

सुप्रसिद्ध रंगकर्मी इब्राहिम अल्का जी यह मानते हैं कि "व्यावसायिक अपेक्षाओं को न समझाने वाले

थियेटर जगत् के लोगों ने सीमित दृष्टि से आँका और पूर्वाग्रह बना लिए। इसीलिए प्रसाद के नाटकों में वे दोष गिनाए गए जो असल में उनकी अपनी नासमझी की उपज हैं। सच तो यह है कि हिन्दी के किसी निर्देशक के पास इतनी व्यावसायिक समझ और अनुभव नहीं है कि वह प्रसाद के नाटकों को उठा सके। वैसे हिन्दी में थियेटर ही कितना होता है जिसे कोई नाम दिया जा सके। इसलिए प्रसाद के लिए उपयुक्त वक्त आयेगा।"

जब हम प्रसाद की रंगदृष्टि को देखते हैं तो पाते हैं कि प्रसाद की दृष्टि में रंगमंच के लिए नाटक नहीं, अपितु नाटक के लिए रंगमंच उपयुक्त होना चाहिए।

प्रसाद हिंदी नाटकों के लिए संस्कृत, पारसी और पाश्चात्य रंगमंच से भिन्न एक ऐसे रंगमंच का विकास चाहते थे, जो संस्कृत, पारसी और पाश्चात्य रंगमंच के कुछ तत्वों को ग्रहण कर बना हो, जिसके रंग–निर्देशक और अभिनेता सुशिक्षित तथा सूत्रधार मर्मज्ञ हों।

इन बातों की पुष्टि उनके निम्नलिखित कथन से होती है :–

"रंगमंच के सम्बन्ध में यह भारी भ्रम है कि नाटक रंगमंच के लिए लिखे जाएं। प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक के लिए रंगमंच हो, जो व्यावहारिक है। हां, रंगमंच पर सुशिक्षित और कुशल अभिनेता तथा मर्मज्ञ सूत्रधार के सहयोग की आवश्यकता है।"

उनकी मान्यतानुसार "नाटकों को सुविधा जुटाना रंगमंच का काम है, क्योंकि रसानुभूति के अनन्त प्रकार नियमबद्ध उपायों से प्रदर्शित नहीं किए जा सकते और रंगमंच ने सुविधानुसार नाटकों के अनुकूल समय–समय पर अपना स्वरूप–परिवर्तन किया है।"

प्रसाद ने न तो पारसी रंगमंच के नाटककारों की तरह जनता की ओछी रुचि का अनुसरण किया हैं और न ही पारसी रंगमंच के ओछेपन का। उन्होंने पारसी रंगमंच को फूहड़ और बाजारू कहकर अस्वीकार कर दिया था। पारसी रंगमन्च का तात्पर्य उस व्यावसायिक रंगमन्च से है, जिसके द्वारा कोलकत्ता, मुम्बई, अहमदाबाद, दिल्ली, कानपुर आदि नगरों में गांवों, कस्बों से काम करने के उद्देश्य से आए हुए मजदूर, मिस्त्री और बाबू लोगों का मनोरंजन करने और उन्हें उपदेश देने हेतु घूम–घूम कर नाटकों की प्रस्तुतियाँ की जाती थीं।

इस रंगमंच में मालिक और प्रस्तुतीकरण के बीच की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी नाटककार था। इसमें उसकी हैसियत महत्वपूर्ण थी, किंतु उसकी स्थिति कंपनी के मालिक के नीचे थी। मालिक की दृष्टि मूलतः व्यापार की थी। इसलिए स्वभावतः पारसी रंगमंच के लिए नाटक लिखने वाले नाटककार को स्वतंत्र रचनाकार के रूप में नाटक लिखने के बजाय मालिक की इच्छा और उद्देश्य के अनुसार, बल्कि यहां तक कि उसके दिए–बताए हुए विषय के आधार पर नाटक लिखना पड़ता था।

इस रंगमंच की कई कंपनियाँ थीं। प्रत्येक कंपनी का अपना एक अलग नाटककार और अपने अलग अभिनेता होते थे। नाटककार को अभिनेताओं की भूमिका को भी ध्यान में रखकर नाटक लिखना पड़ता था। उसको चित्ताकर्षक दृश्य और खेल के लिए कुछ नई सृष्टि करना होता था। साथ ही उसे निर्देशन, गायन, नर्तन और संयोजन का भी काम करना होता था।

जब तक दृश्य के अंत में 'वंसमोर' की पुकार दर्शकों से नहीं हो जाती थी तब तक उसका नाटक श्रेष्ठ नहीं माना जाता था।

पारसी रंगमंच के नाटकों में दृश्यों की बहुलता, गीतों की भरमार, गीतात्मक संवाद, नृत्य योजना आदि

का नियोजन दर्शकों के अनुरूप होता था।

इस रंगमंच में निम्नलिखित प्रकार के अभिनय शामिल थे :–

"गुस्सा प्रकट करने के लिए पैर पटक कर बोलना, युद्ध या प्रति हिंसा प्रकट करने के लिए म्यान से तलवार निकाल लेना, इश्क–मुहब्बत का इज़हार करने के लिए घुटने टेक कलेजे पर हाथ रख आंख मुंदकर इश्क का संवाद या शायरी करना, करुण अभिनय के लिए रो–रोकर संवाद बोलना, गश खा–खाकर गिरना, बाल नोचना, चिल्लाना और छाती पीटना आदि।"

प्रसाद पारसी रंगमंच के उपर्युक्त अभिनयों को फूहड़ मानते थे। उन्होंने पारसी रंगमंच की ओर संकेत करते हुए लिखा हैं कि "मैंने उन कम्पनियों के लिए नाटक नहीं लिखे हैं, जो चार–छः चलते अभिनेताओं को एकत्र कर पैसा जुटाकर, चार पर्दे मंगनी माँग लेती हैं और दुअन्नी–अठन्नी के टिकट पर इक्केवाले, खोंचेवाले और दुकानदारों को बटोर के जगह–जगह प्रहसन करती फिरती हैं।"

उपर्युक्त सन्दर्भों में प्रसाद ने व्यावसायिकता और साहित्यिकता का भेद भर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया हैं। रंगमंच के व्यावसायीकरण की प्रवृत्ति से उनका प्रबल विरोध था। अपने नाटकों के लिए सुरुचि–सम्पन्न दर्शकों की आवश्यकता वे अनुभव कर रहे थे और सुरुचि–सम्पन्न समर्पित रंगकर्मी की माँग भी सम्भवतः उनके ज़हन में थी। इसीलिए रंगमंच के लिए नाटक नहीं, नाटकों के लिए रंगमंच विकसित करने की ज़रूरत पर जोर दे रहे थे।

वे लिखते हैं कि "हिन्दी में कुछ आलोचक, जिनका पारसी स्टेज से पिंड नहीं छूटा है, सोचते हैं स्टेज में यथार्थवाद। अभी वे इतने भी सहनशील नहीं कि फूहड़ परिहास के बदले– जिससे वह दर्शकों को उलझा लेता है, तीन–चार मिनट के लिए काला पर्दा खींचकर दृश्यांतर बना लेने के अवसर रंगमंच को दें। हिन्दी का कोई अपना रंगमंच नहीं है। जब उसके पनपने का अवसर था, तभी सस्ती भावुकता लेकर वर्तमान सिनेमा में बोलने वाले चित्रपटों का अभ्युदय हो गया, और फलतः अभिनयों का रंगमंच नहीं–सा हो गया है। साहित्यिक सुरुचि पर सिनेमा ने ऐसा धावा बोल दिया है कि कुरुचि को नेतृत्व करने का संपूर्ण अवसर मिल गया है। उन पर भी पारसी स्टेज की गहरी छाप है। रंगमंच की तो अकाल मृत्यु हिन्दी में दिखाई पड़ रही है। कुछ मंडलियाँ कभी–कभी साल में एकाध बार वार्षिकोत्सव मनाने के अवसर पर कोई अभिनय कर लेती हैं। पुकार होती है आलोचकों की, हिन्दी में नाटकों के अभाव की। रंग–मंच नहीं है, ऐसा समझने का कोई साहस नहीं करता, क्योंकि दोष–दर्शन सहज है। उसके लिए वैसा प्रयत्न करना कठिन है, जैसा 'कीन' ने किया था।"

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रसाद के नाटक शुद्ध साहित्यिक नाटक हैं और वे रंगमंचीय प्रस्तुति के योग्य हैं, परंतु कुछ आलोचक उनके नाटकों में भाषा की जटीलता, गीतों, पात्रों और दृश्यों की अधिकता तथा संवादों में काव्यात्मकता होने के कारण उनके नाटकों को रंगमंचीय प्रस्तुति के अयोग्य ठहराते हैं। पर इन वजहों से उनके नाटकों को रंगमंचीय प्रस्तुति के अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि रंग–निर्देशक किसी भी नाटक की प्रस्तुति हेतु उसमें संशोधन करने के लिए स्वतंत्र रहता है और यथासम्भव वह ऐसा करता भी है। वह नाटक की प्रस्तुति को बेहतर और सफल बनाने के लिए उसमें से कुछ चीजों को हटाता है तथा कुछ नई चीजें जोड़ता भी है। अतः प्रसाद के नाटकों में से सामान्य पात्रों, कम महत्त्व वाले गीतों की संख्या कम की जा सकती है और गौण दृश्यों को हटाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त भाषा में से तत्सम शब्दों की जगह

हिंदी भाषा के समानार्थक शब्दों को रखा जा सकता है। इस प्रकार उनके नाटकों की प्रस्तुति को सरल बनाया जा सकता है और रंगकर्मियों, दर्शकों एवं स्रोताओं के लिए अधिक बोधगम्य भी बनाया जा सकता है। अगर कुशल रंग–निर्देशक और विकसित रंगमन्च हों तो उनके नाटकों में बिना किसी काट–छाँट के उन्हें सम्पूर्ण रूप में भी सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया जा सकता है। उनके नाटकों की सफल प्रस्तुति के कई उदाहरण भी मिलते हैं। जैसे :– राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में रामगोपाल बजाज के नेतृत्व में 7 नवम्बर 1977 को और 'भारत भवन' में बाबा कारंत के नेतृत्व में मई 1984 में स्कंदगुप्त की प्रस्तुतियाँ की गई। इसके अतिरिक्त दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने फाइन आर्टस थियेटर दिल्ली में एफ.सी. माथुर के निर्देशन में सफलतापूर्वक ध्रूवस्वामिनी को प्रस्तुत किया।

1975 में उज्जैन में विक्रम विश्वविद्यालय ने इसे रामगोपाल बजाज के निर्देशन में प्रस्तुत किया।

अप्रैल 1981 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के दूसरे वर्ष के छात्रों ने इसे आमन्त्रित दर्शकों के सामने देवेन्द्र राज अंकुर के निर्देशन में प्रस्तुत किया। प्रसाद के नाटकों की ये समस्त प्रस्तुतियाँ उनके नाटकों के सांस्कृतिक बोध को ध्यान में रखते हुए की गई थीं।

संदर्भ–ग्रंथ सूची :–

1. डॉ. माधुरी सुबोध, प्रसाद का रंगक्षितिज, गौरव प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2003, दिल्ली–110095.
2. नन्ददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2013, पहली मंजिल, दरबारी विल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद।
3. डॉ. गोविन्द चातक, प्रसाद के नाटक : स्वरूप और संरचना, तक्षशीला प्रकाशन, संस्करण 2013, दरियागंज, नई दिल्ली–110002.
4. डॉ. रमेश गौतम, प्रसाद के नाटक : देश और काल की बहुआयामिता, ईशा ज्ञानदीप, प्रथम संस्करण 2001, रोहिणी, दिल्ली–110085.
5. रामधारी सिंह दिनकर, पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण, लोकभारती प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2009, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–1.
6. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, प्रसाद के नाटकों में इतिहास, धर्म, संस्कृति और कला, राधा प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1997, दरियागंज, नई दिल्ली–110002.
7. बच्चन सिंह, हिन्दी नाटक, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण 1989, जी–17, जगतपुरी, दिल्ली–110051.
8. नेमिचन्द्र जैन (संपादक), आधुनिक हिंदी नाटक और रंगमंच, मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, प्रथम संस्करण 1978, दिल्ली–110032.
9. डॉ. सीताराम झा, नाटक और रंगमंच, प्रकाशक बिहार–राष्ट्रभाषा–परिषद्, प्रथम संस्करण 1982, सैदपुर, पटना–800004.

ईमेल : chunnukumar101@gmail.com, मोबाइल नंबर– 8373959316.

वर्तमान पता– कमरा–संख्या 22, जुबली हाल (छात्रावास), दिल्ली विश्वविद्यालय, उत्तरी दिल्ली–110007.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 52-54

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतेन्दु युगीन काव्य में राष्ट्रीयता

राजकुमार सिंगौर

सहायक प्राध्यापक, शासकीय महाविद्यालय, अंजनिया, जिला मण्डला (म.प्र.)

भारतेन्दु युग जिसे आधुनिकता का प्रवेश द्वार कहा जाता है, वह वास्तव में राष्ट्रीय चेतना का भी प्रवेश द्वार है। और इसी द्वार के माध्यम से जितनी भी आधुनिक प्रवृत्तियां भारत में प्रवेश की हैं उन सब में प्रमुख प्रवृत्ति राष्ट्रीय चेतना ही रही। यही वह युग था जिसमें व्यक्ति विशेष को केन्द्र न मानकर समस्त देशवासियों में नवजागरण उत्पन्न करने की चेष्टा के साथ–साथ आंचलिकता से ऊपर उठकर समस्त राष्ट्र की महिमा का गुणगान किया गया है। इस संबंध में डॉ. विजयपाल सिंह के विचारों को प्रस्तुत किया जा सकता है–'' प्राचीन काल से ही हिन्दी के कवियों ने देश के ऐतिहासिक महापुरूषों की राष्ट्रभक्ति से सबंद्ध प्रबंध और मुक्तक दोनों रूपों में काव्य की रचना की थी। किन्तु प्राचीन काव्य नायक विशेष के गौरवपूर्ण कृतित्व की प्रशस्ति तक ही सीमित रहा। पूरे देश को अखण्ड और एक मानकर काव्य रचना नहीं हुई भारतेन्दु युग में आंचलिकता से ऊपर उठकर पूरे राष्ट्र की महिमा का गुणगान हुआ। व्यक्ति विशेष को केन्द्र न मानकर समग्र देशवासियों में नवजागरण उत्पन्न करने की चेष्टा की गई''।[1]

भारतेन्दु जी जिन्होंने स्वंय राष्ट्रीयता से युक्त रचनाएँ किया करते थे साथ ही वे अपने युग के जितने भी साहित्यकार थे उन्हें भी राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त रचनाओं का सृजन करने हेतु प्रेरित किया करते थे, और यही कारण है कि इस युग के लगभग सभी कवियों की कविताएं देशभक्ति की प्रेरणा से युक्त है। उदाहरणस्वरूप डॉ. नगेन्द्र जी के विचारों को यहॉ प्रस्तुत किया जा सकता है।

''देश के उत्कर्ष–अपकर्ष के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों पर प्रकाश डालकर इस युग के कवियों ने जन–मानस में राष्ट्रीय भावना के बीज–वपन का महत्वपूर्ण कार्य किया। देशभक्ति की जो भावना बाद में मैथिलीशरण गुप्त–कृत 'भारत–भारती' में लक्षित हुई, उसकी प्रेरणा–भूमि भारतेन्दु–प्रेमधन, प्रतापनारायण मिश्र, राधा कृष्ण दास आदि की कविताएँ ही है। भारतेन्दु की 'विजयिनी विजय वैजयन्ती, प्रेमधन की 'आनन्द अरूणोदय', प्रतापनारायण मिश्र की 'महापर्व', और 'नया संवत तथा राधाकृष्णदास की 'भारत बारहमासा', और 'विनय' शीर्षक कविताएं देशभक्ति की प्रेरणा से युक्त है''।[2]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने जन–जन तक अपना संदेश पहुंचाने के लिए लोकगीत की शैली पर सामाजिक कविताओं की रचना पर विशेष बल दिया एवं समाज में व्यापत अनेक समस्याओं को अपने काव्य का आधार बनाकर लोगों को जागृत करने एवं उनमें राष्ट्रीय भावनाओं को उभारने का प्रयास किया है– डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में ''भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने जनता को उद्‌बोधन प्रदान करने के उद्‌देश्य से 'जातीय संगीत' अर्थात लोकगीत की

शैली पर सामाजिक कविताओं की रचना पर बल दिया। मातृभूमि–प्रेम, स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार, गोरक्षा, बाल विवाह–निषेध, शिक्षा–प्रसार का महत्व, मद्य–निषेध, भ्रूण हत्या की निन्दा आदि विषयों को कविगण अधिकाधिक अपनाने लगे थे। राष्ट्रीय भावना का उदय भी इस काल की अन्नय विषेषता है''।[3]

भारतेन्दु जी देश की सभ्यता, संस्कृति और उसकी अखण्डता की रक्षा के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहे। देश को पराधीनता की बेड़ियों में देखकर उनका मन दुःखी हो उठता था, वे चाहते थे कि भारत और भारत देश के वासी अपने अधिकारों को जाने अपनी क्षमताओं को पहचाने। भारत दुर्दशा नाटक उनके इसी छटपटाहट का ही परिणाम है, भारत जो एक समय में समस्त विश्व का गुरू रहा है, किन्तु परतन्त्रता के कारण वह कितना पिछड़ा हुआ दिखाई दे रहा है। यह स्थिति भारतेन्दु जी से देखी नही जाती और वे कह उठते है कि–

''सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो
सबसे पहिले, जेहि सम्य विधाता कीनो
सबके पहिले रूप रंग रस भीनो
सबके पहिले विद्यालय जिन गहि लीनो
अब सबके पीछे सोई परत लखाई
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई''।[4]

भारतेन्दु ही नहीं बल्कि इस युग के जितने भी कवि हुए हैं उन सभी में भी यह भाव प्रमुख रूप से देखने को मिल जाता है। और इसका मुख्य कारण है तत्कालीन परिस्थितियां और कहा भी जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है, समाज में जो कुछ भी घटित होता है वह सब हमें साहित्य के माध्यम से प्राप्त हो जाता है। यही कारण है कि भारतेन्दु मण्डल के समस्त साहित्यकार भी इस भावना से अछूते नही रहे है। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' के संबंध में कहे गए डॉ. नगेन्द्र के विचारों को यहां प्रस्तुत किया जा सकता है– ''उनका मुख्य क्षेत्र जातीयता, समाज–दशा और देश–प्रेम की अभिव्यक्ति है। यद्यपि उन्होंने राजभक्ति सम्बन्धी कविताओं की भी रचना की है, तथापि राष्ट्रीय भावना की नयी लहर से उनका अविच्छिन्न सम्बन्ध था। देश की दुरवस्था के कारणों और देशोन्नति के उपायों का जितना वर्णन उन्होनें किया है, उतना भारतेन्दु की कविताओं में भी नहीं मिलता''।[5]

राष्ट्रीयता के भावों से युक्त रचनाएं यद्यिपि भारतेन्दु युग के पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं में भी विशेष रूप से देखने को मिलता है। किन्तु जो भाव हमें भारतेन्दु युगीन रचनाओं में देखने को मिलता है वह और कहीं नहीं जहां पराधीन भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए उसके उज्जवल भविष्य के लिये प्रेरक कविताएं लिखी गई है, इस संबंध में डॉ. विजय पाल सिंह के विचारों को प्रस्तुत किया जा सकता है– ''वैसे राष्ट्रीयता का स्तर पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं में भी दिखाई पड़ने लगा था। किन्तु यहां आकर यह स्तर अधिक प्रखर हो गया। कवियों ने भारत के प्राचीन गौरव का स्मरण करते हुए तत्कालीन पराधीनता पर आंसू बहाते हुए उज्जवल भविष्य के लिये प्रेरक कविताएं लिखी। यही नहीं राष्ट्र के उत्थान में बाधक तत्वों के उन्मूलन पर भी जोर दिया''।[6]

भारतेन्दु युगीन समाज को जागृत करने के लिये लोक संगीत एवं लोक धुनों को आधार बनाकर राजनीतिक, सामाजिक चेतना जगाने का कार्य किया गया। इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण यहां देखा जा सकता है–

''चूरन साहेब लोगजो खाता। सारा हिन्द हजम कर जाता।
चूरन हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना तिकस लगाते।
चूरन अमले सब जो खावैं। दूनी रिश्वत तुरत पचावै।
चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते।
चूरन पुलिस वाले खाते। सब कानून हजम कर जाते''।[7]

भारतेन्दु युगीन राष्ट्रीय चिन्तनधारा का अध्ययन करने पर हम पाते है कि इस युग की राष्ट्रीय चिन्तन धारा दो पक्षों में विभाजित है। डॉ. नगेन्द्र के विचारों को यहाँ देखा जा सकता है– ''वास्तव में भारतेन्दु युग की राष्ट्रीय चिन्तनधारा के दो पक्ष है– देश प्रेम और राजभक्ति/प्रथम पक्ष के अन्तर्गत उन्होंने 'हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान' का गुणगान किया तो दूसरे पक्ष में जजिया–जैसा कर न लगाने वाले अंग्रेजो के शासन–काल में प्रजा–मात्र की सुख–समृद्धि की मुक्त कष्ठ से प्रशंसा की। इन सुविधाओं से लाभ उठाने के लिए उन्होंने जनता के रूढ़िगत प्रभावों से मुक्त होने का आग्रह किया और शासन के प्रति सहयोगी रूख अपनाने की प्रेरणा दी। इस वर्ग की राजभक्ति परक कविताओं में भारतेन्दु की 'भारत भिक्षा', 'विजय वल्लरी' और 'रिपनाष्टक', प्रेमधन की 'हार्दिक हर्षादर्श' और 'स्वागत', तथा राधाकृष्ण दास की 'मेक्डानल्ड–पुष्पांजलि', 'जुबिली और 'विजययिनी विलाप' उल्लेखनीय है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युग के लगभग समस्त साहित्कार किसी न किसी पत्र का प्रकाशन भी किया करते थे। और इन पत्रों के माध्यम से वे राष्ट्रीय चेतना से युक्त काव्य की रचना का प्रचार–प्रसार किया करते थे। यही वह प्रारम्भिक समय था जहां राष्ट्रीय चेतना का बीजारोपड़ हुआ और उसका विशाल वृक्ष हमें द्विवेदी युग में देखने को मिलता है। भारतेन्दु युग के समस्त साहित्यकारों ने देश की यर्थात स्थिति का चित्रांकन कर राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में अपनी अहम भूमिका अदा की।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास– डॉ. विजयपाल सिंह, जय भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 55
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र प्रकाशक, मयूर पेपर बॉक्स, पृष्ठ 450
3. वही पृष्ठ संख्या –449
4. भारतेन्दुकृत –'भारत दुर्दशा' नाटक।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र प्रकाशक, मयूर पेपर बॉक्स, पृष्ठ 463
6. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. विजय पाल सिंह, जय भारती प्रकाशन, पृष्ठ सं. 64
7. अंधेर नगरी – भारतेन्दु हरिशचंद्र।
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र प्रकाशक, मयूर पेपर बॉक्स, पृष्ठ 451

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 55-63

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

A STUDY OF ENDANGERED INDIGENOUS 'HO' TONGUE IN THE CONTEXT OF LINGUISTIC HUMAN RIGHTS IN INDIA

Anil Kumar Tiriya

Assistant Professor, PG Department of English, Berhampur University, Ganjam,Odisha

Abstract :-

The paper attempts to explore and identify the indigenous living tongue 'Ho' as one the most significant languages of tribes inIndia. It studies the root causes of its endangerment status and endeavours to trace out the ways and means for its revitalization, documentation and preservation. 'Ho' is classified and acknowledged as a branch of Munda language in the Austroasiatic language family.It is ethnically and linguistically close to 'Mundari' language. It is spoken by marginal ethnical linguistic community mostly in Jharkhand, Odisha, Bihar, Chhattisgarh, West Bengal, Assam, Bangladesh and Nepal. There are 14, 21, 418 native speakers who constitute 0.12 % of the total population of India (Census 2011). 'Ho' is lingua franca in Kolhan. It is written in Devanagri, Roman and Oriya scripts, but native speakers prefer Warang Citi script which was developed by LakoBodra. It is a means of communication and a symbol of identity, dignity, culture, prosperity of Ho people. But It is endangered in multilingual and multi-ethnic surroundings and pluralism in the age of globalization. UNESCO has kept it in the list of endangered languages which is quite alarming. The Quasi Research method - Qualitative and Quantitative one - has been applied in the present study. The empirical study with deductive approach based on the grounded theory has been conducted. A few people have shifted to next generation through the assimilation of other language and culture.

There is a language loss which separates people from the richness of their cultural heritage and leads to fragmentations and loss of a community. Language endangerment means a language which is on the verge of extinct with no speaker claiming it to be the mother tongue. The world has concerns for the endangered indigenous languages. It is our duty to promote, document, revitalize and preserve the minor endangered languages before they extinct.

The paper makes its utmost efforts to make adequate measures to revitalize the indigenous marginal language 'Ho' for its healthy survival in the world.

Keywords :- Indigenous, Endangered, Revitalization, Austroasiatic, Warang Citi.

Introduction :-

'Ho'is a an important indigenous language which is classified and identified as a branch of Munda language of Austroasiatic language family. 'Ho' and 'Mundari' are sister languages as they are ethnically and linguistically close to each other. It is spoken by Ho tribal community mostly in Jharkhand, Odisha, Bihar, Chhatisgarh, West Bengal and Assam. It is written in Devanagari, Roman, Oriya and Bengali scripts, but the native speakers prefer Warang Citi script which was invented and developed by OttGuroKolLakoBodra.There are 1,421,418 native speakers in India as per 2011 census. The largest concentration of Ho speakers is in West Singhbhum, East Singhbhum and Seraikella- Kharsawan districts of Jharkhand, where 'Ho' is in fact the lingua franca and is spoken by a large number of other non - Hos who are living among them. The major languages of 8th schedule - Hindi, English, Oriya, Bengali and Santhali are spoken here in a large scale. They influence the indigenous language of marginal linguistic community in that locality.

'Ho' is a significant tribal language which is a means of communication and a symbol of identity, dignity, culture, education and solidarity in Kolhan.It has unique language features which contribute a lot in linguistics studies. It is an intrinsic part of culture. It is associated with the ethos and pathos of a speech community that identifies one ethnic community from other. Members of a speech community are bonded emotionally through their mother tongue as it entails the identifying features of an ethnic community. So, when a mother tongue dies or is not used in various domains, the identifying traits of the concerned community not only vanishes, but also leaves bruises on the social, psychological and cultural disruption of the community in question. Professor Sinha says -

"Language loss or language death separates people from the richness of their cultural heritage and prevents them from living their full cultural identity and life energy. It weakens cultural traditions and leads to fragmentations and loss of a community. The dominant culture is subsequently deprived of cultural diversity that contributes to political and economical creativity" (Sinha 353).

Most of the indigenous mother tongues are on the verge of extinction due to the dominance of state / national / international languages which has more buying power. They are endangered in multilingual and multi-ethnic surroundings and pluralism in the age of globalization.

UNESCO has announced the list of endangered languages within its different parameters. The indigenous 'Ho' language too is kept in the list of endangered languages.

Language loss and language endangerment are the major issues that concern linguists and language planners all over the world. Many important measures are being taken for the revitalization of marginal languages . The platforms are being prepared for the promotion of marginal linguistic communities and their languages, for their better ethnic knowledge, their growth, popularity and healthy survival.

Language endangerment is a matter of degree, at one end there are languages with international status with great prestige and at the other end there are languages which on the verge of extinct with no speaker claiming it to be the mother tongue. It is a must to study the vulnerability of the marginal language to judge its endangered status so that necessary steps can be taken for the preservation of that language before its extinction. The objective of the present study is to make adequate attempts for the revitalization, promotion, preservation and documentation of the marginal languages. The paper aims at measuring the endangerment status of 'Ho' language and It discusses the ways and means of its revitalization in the international sphere.

Review of Literature :-

The review of literature helps the researcher to understand the background and the base of future research. A number of books, articles and journals of various author and critics have been reviewed with analysed specific aspects of endangered 'Ho' language.

John Deeney's book Ho Grammar and Vocabulary, published fromXavier Ho Publication in 1975 studies the grammatical and lexical aspects of 'Ho' language. It strengthens the foundation of 'Ho' language; But fails to study its cultural aspects.

Dhanur Singh Purty's book Ho Dishum Ho Honko available in seven Volumes published from Xavier Ho Publication in 1982 narrates the culture, traditions and practices of 'Ho' people. It is a milestone of the cultural study of a language; but it does not speak anything about the language.

Dr. Smita Sinha's research paper titled "Language endangerment status of Kuvi" published in the Research Journal of Berhampur University, ISSN 2250-1681, Volume II in 2015 gives us the deeper understanding of endangerment status 'Ho' language. It expresses the concerns for its revitalisation.

Dr. Aditya Prasad Sinha's book Hobhashaaur Sahitya ka Itihas published from Kishore Vidya Niketan in 2006 gives the detailed study of 'Ho' language and culture. It is very

relevant for the present research.

Research Methodology :-

The research methodology applied in this present research is quasi method - qualitative and quantitative one. The empirical study based on the grounded theory was conducted. It is primarily accomplished on observation and discussion with the participants. The research design is explorative in nature based on one shot case. EDID scale is used to measure the vitality status. The scoring was done on the basis of answers made to the specific questions through discussions with the participants. Ethical practices are followed while conducting research with human values. Fifteen participants were drawn from the three age groups consisting five each through snowball method. Group I - Age 10 - 16, Group II - Age 25 - 40 and Group III - Age 55 - 60. All the participants were monolingual till they were around 5 or 6 years of age. Subsequently, most of them became bilingual or multilingual. All of them were from the comparable socio-economic status. A few participants were hesitant and ashamed of speaking 'Ho' language which indicates that they have shifted to next generation through the assimilation of other language and culture. The books, journals, newspapers, magazines and various reports related to the topic have been used as sources of information. The paper follows the style proposed by the MLA Handbook 8th edition.

Demogaphy -

The Ho people are an Austroasiatic speaking ethnic group in India. They are mostly concentrated in the state of Jharkhand where they constitute around 10.7 % of the total Scheduled Tribe population as of 2011. With the population of approximately 7,00,000 in the state in 2001, the Ho were the fourth most numerous scheduled tribe in Jharkhand after Santhals, Kurukhs, Mundas. The total population of Ho is 10,33,095 in the state as per census 2011.

Ho people also inhabit adjacent areas in the neighbouring states of Odisha, West Bengal, Bihar and remote state Assam. They also live in Bangladesh and Nepal.

The literacy rate of Ho population is low. It was around 44.7% for all and 33.1% for women, which was much lower than the Jharkhand's average of 66..4% for all and 55.4% for women (census 2011). The education is imparted to them in Hindi and English medium from Primary to Post Graduation level. Now the Government has designed the text books for primary level education in Ho language to reduce high rate of dropout and to increase the literacy rate. A large number of people are undergoing Ho language and Warang Chiti script training in various Ho language training centres.

Hos are living in Bilingual / Multilingual surroundings and pluralism in the age of globalization. Major languages of 8th schedule of Indian Constitution which have more buying power are pushing the indigenous language to the margin. 'Ho' is endangered and on the verge of extinct (UNESCO). The linguists have deep concern for its documentation and revitalization for its healthy survival.

Phonology - 'Ho' has good phonetic and phonology systems.

Vowels- There are five vowels in Ho : a, e, i, o, a, u. Each of these vowels can be :

a) Long or short

	Short			**Long**	
a	seta	dog	a	ba	flower
	hapanum	girl		atagom	a leaving plank
	had	to cut		had	pungent / bitter
	agu	to bring		agu	to lower
e	med	eye	e	med	iron
	ape	you		ape	three
i	mandi	rice	i	pi	a field
	kandi	blunt		handi	to collaspe
o	gom	wheat	o	gom	to accompany
	jom	to eat		jo	fruit
u	jur	to crowd	u	jur	smooth
	tupu	to dip		tupu	the sting of bee

b) Checked (glottalized) or unchecked - (:) - a:, e:, i:, o:, u:

a:	seta: , da: ,na:	morning, water, now
e:	le: , pe: ,	tongue, strenght
i:	ti: , ji:l,	to take by hand, to slip
o:	mo:, to:r, bo:	smoke, a big lizard, head
u:	su:	insert the hand into

c) Nasal or nasalized - (-) - an

a	are, dae, ar (long), ha (long)	-	embankment, victim, yoke, hoof
e	dewa,e (long), chel (long), he:(long)	-	a diviner, lac,wave, a swallow bird
i	si:(long), iyal, ji (long)	-	a foul smell, feature, to scent(smell)
o	dosi (long), ho, ho:so	-	thirty, stop, goose
u	su, dul (long)	-	to hiss, to weaver

Consonants - There are 22 consonants in Ho language -

Bilabial	Dental	Cerebral	Palatal	Velar	Glottal
Stops	Voiceless	p	t	(th)	tchk
Voiced	b	d (dh)	d	j	g
Fricatives (Voiceless)		s	h		
Nasal (voiced)	m	n	n(ran)n`	(nch)	n (ng)
Lateral		l			
Glides, retroflex		r	r (adrh)	y	w

Grammatical Sketch -

'Ho' language is refined and rich in grammar. It has unique features which can be the inspiration for other languages inthe linguistic studies.

Noun -

There are five nouns in Ho language.

Common noun - ho, era, buru, kula, kupul- man, woman, forest, lion, guest.

Proper noun - singi, dongol, singhbonga - sun, chaibasa market, God of Hos

Material noun - da:, sunum, med, baba - water, oil, iron, paddy

Abstract noun - bugin, edkan, renge:, rasa - good, bad, hunger, happiness

Collective noun - palton, juriko, maiteko - military, friends, ladies

Pronoun, person and number -

There are personal pronouns of the 1st, 2nd and 3rd persons each in the singular, dual and plural numbers. It gives nine forms; however, the dual and plural of the first person have separate forms used when the person being addressed is included and when he is excluded. Therefore, there are eleven pronouns.

Person	**Singular**	**Dual**	**Plural**
1st	an (I)	alan (we both) incl.	abu (we) incl.
		alin (we both) excl.	ale (we) excl.
2nd	am (you)	aben (you both)	ape (you all)
3rd	ae: (he/she)	akin (two of them)	ako (they all)

There are three numbers - singular, dual and plural. We find separate forms in the 1st person dual and plural when the person spoken to is included ('We, including you'), and when he is excluded ('We, excluding you'). There is no corresponding form for "It" in Ho; we use 'neya' for this and 'ena' for that. There is a distinction between animate and inanimate beings. When an animate being is grammatical object indicating this by a marker infixed in the verb.

Adj	Animate pronouns	Inanimate pronouns
ne (this)	sg. ni (this)	sg. neya (this)
dl. nikin(they both)	dl. neyakin (these two)	pl. neko (these all)
pl. eyako (these all)	chikan (What)	sg. chikani: (what)
sg. chikan: (what)	dl. chikankin (what are they)	dl. chikana: kin (what are they)
pl. Chikanko (what are they all)		pl. Chikan:ko (what are they all)

Verbs with Tense, Aspects and Mood -

Tense is a form of a verb which indicates that something happens in the past, present or future. Aspects are those markers affixed to the root in order to indicate some aspects of an action. There are five aspect markers in Ho - -aka, - ke, -ta, -le, -a. A Grammatical Mood which is known as a mode, refers to the quality or form of a verb in a sentence. In other words, Mood denotes the tone of a verb in a sentence which expresses the intention of a speaker or a writer. There are two Mood markers in Ho language - a and ka. Various verbs of 'Ho' language with their Aspects, Tenses, Moods and Tones can be studied in the following sentences -

Simple Present	-	an padaotanan	-	I read.
Past tense	-	an kitabnpadokendan	-	I read.
Future tense	-	an padon	-	I shall read.
Present continuous	-	an na:ninuntanan	-	I am playing.
Past continuous	-	an inun tantaikenan	-	I was played
Future continuous	-	an inun tan gen taine	-	I will be paying.
Present perfect	-	ae: olchabakedae:	-	He has written
Past perfect	-	ae: olchaba tad taikenae	-	He had written.
Future perfect	-	ae; olchabakagetaine	-	He shall has written.

Present perferct continuous - akomandikojom tan gekotaine - hey have been eating.

Past perfect continuous - akomandikojomchaba tad gekotaine.

They had been eating food.

Future perfect continuous - akomandikojomchabatangekotaine.

They will have been eating food.

Question words -

There are a few interrogative words in Ho which are very important and which can add new knowledge in linguistics studies.

okoe - who okoni :- which one okona - which thing okon - which china :- what chilka - how chimta - when chikan re : - why okonta:, okonre - where chimn - how much chuila - when okonete - from where

Negation -

ka - no

aloma :- don't kage - no, not

ka:e - not alom - do not kan - not

bangai : not present bankoa - not there

ka : - does not

bano : not present kam - do not kape - do not

Culture -

People of Ho ethnic marginal community have rich traditional culture. They convey and transmit their customs, practices and beliefs from one generation to other by oral traditionsthrough stories, songs and dances.

The Hos do not consider themselves belonging to any major religious groups. They profess their indigenous religion "Sarna" and believe in Gods, Goddesses and spirits.Singhbonga is Hos' greatest God who has created the world and mankind. They follow their rituals and practices very strictly. Dead ancestor are worshiped at home during festivals. They believe in man's shadow which never dies and returns to its house where it is joined by other 'house deads' who dwell with the family. The village rituals are performed by the priest called ' Deuri'. Deonwa is the spirit doctor who propitiates malevolent spirits and deities in the village.

The Ho people's life revolves around the festivals. They sing, dance and have feasts during ceremonies. They love to have rice, meat, rice bear, vegitables and many other forest products as their favourite dish. Rice bear is sacred life-water which is prepared at every house and consumed by Hos by great honour.

Generally, the marriages take place during the festivals in Ho community. The bride groom has to pay the bride price in marriage. Many rituals are performed in Ho marriage ceremony. The bride's likes and dislikes are given due importance in marriage. A wife's status is high and her behaviour is compared as real companion and partner of her husband. There is liberal remarriage system in Ho community. A girl can freely marries after the death of her husband.

Conclusion :-

'Ho' is one of the most important indigenous languages of the world. It belongs to

Austroasiatic language family. The Ho speakers are spread in Jharkhand, Odisha, West Bengal, Bihar and Assam. The native place of Ho speakers is West Singhbhum, Jharkhand. 'Ho' is a refined rich language which has its own Warang Citi script. It has a good phonological system. The grammatical structure of 'Ho' is of a very high standard. It has a large vocabulary which enriches other languages of the world.

There is a high level of oral literature in 'Ho' language. It portrays Hos' rich culture and traditions. The life, lore and identities of 'Ho' people are realised through the songs, music and tales in 'Ho' language. But unfortunately, 'Ho' language is struggling for its identity and existence in bilingual and multilingual surroundings and pluralism in the age of globalization. The minor indigenous 'Ho' language is declared endangered which is on the verge of extinct. There is a need for documentation and revitalization of 'Ho' language for its identity and existence in the language world. The Government, NGOs and people are trying to make it a living tongue by the collective efforts. The Govt. has made it compulsory to impart education primary schools in 'Ho' language. There are running many 'Ho' language training institutes in Jharkhand and in neighbouring states. 'Ho' language and literature is taught not only in High schools, but also in the colleges and universities in Jharkhand state. Many films and albums are being produced in 'Ho' language. People have become conscious of their language and culture and are making their utmost efforts to keep it in 8th schedule of Indian Constitution.

The paper is a limited study of the endangered 'Ho' language which is struggling for its identity and existence. It endeavours to show the concerns for its documentation and revitalization. The present paper makes way for further research in the vitality of the language.

Works Cited : -

1. Burrows, Lionel., Ho Grammar - with Vocabulary, Catholic Orphan Press, Calcutta, 2015.
2. Deeney, John. Ho Grammar and Vocabulary, Xavier Ho Publications, Lupungutu,1975.
3. ___. Introduction to the Ho Language : Learn Ho quickly and well, Xavier Ho Publication, Lupungutu, 1991.
4. ___. The Spirit World of the HoTribals, Xavier Publications, Ranchi, 2008.
5. ___. Ho- English Dictionary, Xavier Ho Publications, Lupungutu, 1978.
6. Lewis, M.P. and Simons, G.F., Assessing Endangerment : Expanding Fishman's GIDS, Revue Romaine de Linguistique, 2010, pp. 103-120.
7. Purty, Dhanursingh, Ho Dishum Ho Honko, Xavier Ho Publications, 1982.
8. Sinha, Aditya Prasad. HoBhashaaurSahityakaItihas, Kishore Vidya Niketan, Varanasi, 2006.
9. Sinha, Smita. "Endangered Tribal Languages of Koraput - Need for Revitalization", in Mohanty, G et al (eds). Cultural Heritage of Orissa, Koraput, 2007.

Mob. No. - 9937396869, E-mail id - anilkumartiriya@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 64-73

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में दलित चेतना

डॉ. सुशील कुमार 'लोहट'
प्राध्यापक इतिहास, हरियाणा विद्यालय शिक्षा विभाग, कुरुक्षेत्र।

निःस्संदेह दलित साहित्य आज बुलंदियों को छू रहा है। अनेक दलित कवियों, कहानीकारों ने अपनी लेखन के माध्यम से उत्कृष्ट रचनाओं का सृजन करके दलित साहित्य के विकास में अपना योगदान दिया है। आज दलित साहित्य कहानी, कविता और आत्मकथा जैसी साहित्यिक विधाओं में जोश और उत्साह के साथ सृजित किया जा रहा है। वास्तव में अगर देखा जाए तो दलित साहित्य की कविताओं, कहानियों और आत्मकथाओं में दलित उत्पीड़न, सामाजिक भेदभाव, शोषण, अन्याय और असमानता का चित्रण दलित साहित्यकारों ने किया है। वास्तव में कविता अपने भावों और विचारों को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। दलित कवियों नेअपने जीवन काल में भोगी गई जाति आधारित पीड़ाओं, वेदनाओं, अन्याय एवं शोषण का अपनी कविताओं में चित्रण किया है। समाज में दलितों को जिस असमानता और अन्याय का सामना पीढ़ी दर पीढ़ी करना पड़ रहा है, उसी असमानता पर आधारित समाज के खिलाफ दलित कविताओं में विरोध का स्वर मुखरित हुआ है। आजादी के इतने सालों के बाद भी जातीय व्यवस्था सांप की तरह फन उठाए खड़ी है। आजादी के बाद दलितों को आरक्षण आदि सुविधाएं दी गई थी, ताकि दलित समाज की मुख्य धारा में शामिल होकर आदर्श जीवन जी सकेंगे। लेकिन ये तमाम प्रयास जातिवाद,भेदभाव और दलितों के खिलाफ स्वर्णों की संकीर्ण मानसिकता को बदलने में कामयाब नहीं हो पाए हैं। आज भी दलित उत्पीड़न, अत्याचार के मामले हर रोज सामने आ रहे हैं। गांवों और शहरों में दलितों का एक बड़ा तबका आज भी आर्थिक तंगहाली, सामाजिक भेदभाव, अपमान और यातना भरा जीवन जीने को मजबूर हैं। दलित कवियों ने इसी प्रकार की पीड़ाओं, अन्याय,शोषण,भेदभाव और असमानता पर आधारित जातीय व्यवस्था के विरोध में कलम उठाकर अपनी कविताओं का सृजन किया है और दलित पीड़ा और वेदना का अपनी कविताओं में चित्रण किया है।

दलित चिंतक और साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि आज किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं, आज भी हिन्दी दलित साहित्यकारों में उनका नाम प्रमुखता के साथ लिया जाता है। अगर दलित साहित्य लेखन में कविताओं की बात की जाए तो ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा सृजित कविताओं के बिना बात अधूरी रह जाएगी। उन्होंने अपनी कविताओं में दलितों, दबे कुचलों के प्रति समाज में व्याप्त घृणा और अनेक पहलुओं को गंभीरतापूर्वक अपनी कविताओं में उजागर किया है। उन्होने स्वयं दलित उत्पीड़न, शोषण, पीड़ा और अन्याय को झेला है। उनकी रचनाओं में उनके द्वारा अनुभव की गई पीड़ा,दुख और अन्याय की झलक साफ देखी जा सकती है। उनकी कविताओं में दलित चेतना का स्वर मुखरित हुआ है। इस प्रकार से ओमप्रकाश वाल्मीकि दलितों के

यथार्थ जीवन का चित्रण करने वाले एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। इनकी कविताएं दलित चेतना से परिपूर्ण हैं, जो दलितों को एक आदर्श और सम्मानजनक जीवन जीने का संदेश देती है और उनको प्रेरित भी करती हैं। कवि और दलित चिंतक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने काव्य संग्रह 'सदियों का संताप', 'बस!बहुत हो चुका', 'शब्द झूठ नहीं बोलते' एवं 'अब और नहीं' में जातिवाद, दलितों के प्रति समाज में व्याप्त घृणा, शोषण आदि का मार्मिक चित्रण किया है। उनकी कविताएं दलित चेतना और सामाजिक समानता से सरोकार रखती हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने स्वयं जातीय दंश, अन्याय और शोषण का अनुभव किया है। उनकी कविताएं दलितों और दबे कुचलों की दयनीय स्थिति को बयां करती हैं। आज भी इतनी मेहनत और परिश्रम के बावजूद उनको अपने अधिकारों और अस्मिता के लिए संघर्ष करना पड़ता है। उनका कुछ भी अपना नहीं हैं सभी संसाधनों पर स्वर्णों का कब्जा है। वे बेबस और लाचार हैं। उनके संवैधानिक और मौलिक अधिकार जातिवादी स्वर्णों और सामंती उच्च वर्ग के सामने बौने प्रतीत होते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी सुप्रसिद्ध कविता 'ठाकुर का कुआं' में कहते हैं –

चूल्हा मिट्टी का
मिट्टी तलाब की
तलाब ठाकुर का।
भूख रोटी की
रोटी बाजरे की
बाजरा खेत ठाकुर का।
बैल ठाकुर का
हल ठाकुर का
हल की मूठ पर हथेली अपनी।
फसल ठाकुर की।
कुंआ ठाकुर का
पानी ठाकुर का
खेत– खलिहान ठाकुर के
गाली– मुहल्ले ठाकुर के।
फिर अपना क्या?
गाँव?
शहर?
देश?[1]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में दलित चेतना का स्वर दिखाई देता है। उनकी कविताओं में दलित अपने अंधकारमय जीवन दुःखों के लिए सभी प्रकार के मिथकों को नकारता है। उसने अपने ऊपर किए जा रहे अत्याचारों और शोषण का दुःखद अनुभव किया है। कविताओं के नायक सदियों से अन्याय और अपमान को सहते आ रहे हैं, वे इससे छुटकारा चाहते है। उनका संयम जवाब दे चुका है और वे क्रांति कर असमानता पर

आधारित व्यवस्था को उखाड़ फेंकना चाहते हैं–

सदियों से पीड़ित,
दलित
मेरा हृदय बन गया है –
ज्वालामुखी
फट पड़ने को लालायित
भीतर ही भीतर
मुझे हिला रहा है।[2]

कवि की कविताओं में दलित नायक सामाजिक भेदभाव, अन्याय, सामंतवाद, ब्राह्मणवाद और शोषण के विरुद्ध दलित चेतना से लैस है। सदियों की पीड़ाएं उसके अंदर हिलोरें मार रही हैं। असमानता पर आधारित व्यवस्था के विरुद्ध वह आक्रोशित हैं। उसको सदियों से दबाया गया है, उसका शोषण किया गया है और उसे उसके मौलिक अधिकारों से वंचित रखकर गुलामी का जीवन जीने को बाध्य किया गया है। वह वर्तमान व्यवस्था को सिरे से नकारता है। कवि अपनी कविता 'युग चेतना' में कहते हैं–

मैंने दुःख झेले
सहे कष्ट पीढ़ी– दर –पीढ़ी इतने
फिर भी देख नहीं पाये तुम
मेरे उत्पीड़न को
इसीलिये युग समूचा
लगता है पाखंडी मुझको।[3]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की जाति व्यवस्था को एक मजबूत व्यवस्था के रूप में देखते हैं। जाति के कारण ही समाज में भेदभाव व्याप्त है। जाति भारतीय समाज का अकाट्य सच है जिसको झुठलाया नहीं जा सकता। कवि ने अपनी कविता में एक जगह लिखा है–

'जाति' आदिम सभ्यता का
नुकीला औजार है
जो सड़क चलते आदमी को
कर देता है छलनी
एक तुम हो
जो चिपके हो जाति से।[4]

अपनी एक अन्य कविता में वाल्मीकि लिखते हैं कि जाति समाज की कटु सच्चाई हैं। आप कुछ भी बन जाएं, कितनी भी उन्नति कर ले, जाति आपका पीछा नहीं छोड़ती। इनकी कविताओं में दलित चेतना से लैस नायकों में जातिवाद के प्रति आक्रोश है–

स्वीकार्य नहीं मुझे
जाना,

मृत्यु के बाद स्वर्ग में।
वहां भी तुम
पहचानोगे मुझे
मेरी जाति से ही![5]

कवि की कविताओं के नायकों में गज़ब की चेतना दिखाई देती है। वे पाखंडवाद, अंधविश्वास पर चोट करते हैं, पुराने मिथकों को नकारते हैं। क्योंकि इन पाखंडों को मानने से उनकी दयनीय हालत बदलने वाली नहीं हैं। वास्तव मैं कवि का मकसद ये है कि इन मिथकों को मानने से दलित वर्ग का कोई भला होने वाला नहीं है। उनकी स्थिति ज्यों कि त्यों बनी हुई है –

इसलिए तय कर लिया मैंने
नहीं नहाउंगा ऐसी किसी गंगा में
जहां पंडे की गिद्ध–नजरें गड़ी हों
अस्थियों के बीच रखें सिक्कों
और दक्षिणा के रूपयों पर
विसर्जन से पहले ही
झपट्टा मारने की बाज की तरह![6]

कवि अपनी एक अन्य कविता में दर्शाते हैं –

मेरी आंखों में बसी दहशत
घृणा में बदल रही है
उन धर्म ग्रंथों के विरुद्ध
जो रास्ते में खड़े हैं
कंटीले झाड़–झंखाड़ की तरह
अवरोधक बधकर।[7]

वाल्मीकि जी की कविताओं में सदियों से दलित वर्ग के पर होते आ रहे अन्याय, शोषण और अत्याचार का चित्रण हुआ है। इन्होंने शंबूक और एकलव्य के साथ हुए अन्याय का उदाहरण देकर बताया है कि ये अन्याय एक दिन ज्वालामुखी बनकर फूटेगा, जो सदियों से चली आ रही असमानता की चट्टानों को ध्वस्त कर देगा। आज हर जगह राम और द्रोणाचार्य खड़े हैं जो दलितों की बलि लेने को तैयार बैठे हैं। कवि ने अपनी कविता 'शंबूक का कटा सिर' में अपनी पंक्तियों में लिखा है :–

यहां गली–गली में
राम है
शंबूक है
द्रोण है
फिर भी सब ख़ामोश हैं
कहीं कुछ है

जो बंद कमरों से उठते क्रंदन को
बाहर नहीं आने देता
कर देता है रक्त से सनी उंगलियों को महिमा मंडित!
शंबूक, तुम्हारा रक्त जमीन के अंदर
समा गया है जो किसी भी दिन
फूटकर बाहर आयेगा
ज्वालामुखी बनकर![8]

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की कविताओं में दलित चेतना के साथ दलित–मजदूर एकता का स्वर प्रस्फुटित होता है। वे जातिवाद, सामंतवाद, और पूंजीवाद के खिलाफ एक हो गए हैं :–

''वे खड़े हो गए हैं
रास्ता रोककर
चीख रहे हैं
ऊंची आवाज़ में
उनके खिलाफ
जो खेतों की मिट्टी की खुशबू से सने हाथों से खोल रहे हैं दरवाजा
जिसे घेरकर खड़े हैं वे
जिनके सफेद कोट पर खून के धब्बे
कैमरों की तेज रोशनी में भी साफ
दिखाई दे रहे हैं
भीतर मरीजों की कराहटें
घुट कर रह गई हैं
दरवाजे के बाहर
सड़क पर उठते शोर में
उच्चता और योग्यता की तमाम परतें
उघड़ने लगी हैं।[9]

ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा सृजित कविताओं में दलित उत्पीड़न, अत्याचारों का चित्रण भी हुआ है। दलितों की बस्तियों को आग लगाकर जलाना स्वर्णों के लिए बांएं हाथ का खेल है। जिसकी कहीं भी सुनवाई नहीं होती है। लेकिन एक दिन व्यवस्था जरुर बदलेगी। इन अत्याचारों का सारा हिसाब मांगा जाएगा–

बस्तियां जला कर
राख कर देने में
महारत हासिल है
गोहाना, मिर्चपुर, झज्जर
और खैरलांजी

रच देना
बांए हाथ का खेल है
जिसकी कहीं सुनवाई तक नहीं होती
फिर भी,
मुझे यकीन है
एक दिन मांगा जाएगा
हिसाब
संसद से
मानवाधिकार आयोग से
न्यायपालिका से।[10]

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता की वर्ण व्यवस्था पूरी तरह से असमानता पर आधारित है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी कविताओं में वर्ण व्यवस्था पर चोट करते हैं। वे पूछते हैं कि केवल ब्राह्मण ही ब्रह्म का अंश क्यों है? कवि ने मनुवादी व्यवस्था को नकार दिया है–

चूहड़े या डोम की आत्मा
ब्रह्म का अंश क्यों नहीं
है
मैं नहीं जानता
शायद आप जानते हों![11]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताएं दलित चेतना को उद्घाटित करती हैं। कवि को अपने पुरखों से प्रेरणा मिली है। वह उनकी मेहनत और भोलेपन को जानता है। वे मेहनती लोग थे उनमें किसी प्रकार की कोई चालाकी या छल नहीं था। कवि अपनी कविता मेरे पुरखे में कहते हैं –

वे नहीं जानते थे
कवायद करना
लूटना–
निर्बल और असहाय को!
नहीं जानते थे
हत्या करना
वीरता की पहचान है
लूट– खसोट अपराध नहीं
संस्कृति है!
कितने मासूम थे वे
मेरे पुरखे
जो इंसान थे

लेकिन अछूत थे![12]

कवि दलितों को कमजोर नहीं मानते। वे अब इस असमानता, भेदभाव और शोषण पर आधारित व्यवस्था के खिलाफ एकजुट होकर क्रांति करेंगे। सदियों से चली आ रही इस दमनकारी स्वर्णों की नीतियों को चुनौती देंगे –

उनकी अंतः चेतना में
सुलग रहा है
आग का बवंडर
जो किसी भी दिन
जाग सकता है
अपनी हजारों साल पुरानी
चुप्पी तोड़ कर![13]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में दलित चेतना का स्वर है। कवि की कविताओं पर अम्बेडकरवाद का प्रभाव है। वह अम्बेडकरवाद से प्रेरित होकर जातिवाद, भेदभाव और शोषण का विरोध करते दिखाई देते हैं –

अम्बेडकर की आदमकद मूर्ति के पास
बैठा मोची चीखता है ऊंची आवाज़ में
'किस हरामजादे की देन है यह जाति।'[14]

शिक्षा के बिना दलित चेतना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। बाबा साहब अम्बेडकर ने भी शिक्षित होने का नारा दिया था। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी कविता 'वे भयभीत हैं' में दर्शाते हैं कि दलित का शिक्षित होना स्वर्णों को नागवार लगता है। वे दलितों, अछूतों को अशिक्षित बनाकर उन्हें गुलामी के दलदल में धकेलना चाहते हैं। दलित वर्ग का शिक्षित होना स्वर्णों के लिए खतरे की घंटी है–

वे भयभीत हैं
इतने
कि देखते ही कोई किताब
मेरे हाथों में
हो जाते हैं चौकन्ने
बजने लगता है खतरे का सायरन
उनके मस्तिष्क और सीने में
करने लगते हैं एलान
गोलबंद होने का।[15]

गांव हो या शहर दलितों, अछूतों और दबे कुचलों की रोजी रोटी मेहनत से कमाए पैसों से ही चलती है। स्वर्णों जैसी सुख–सुविधाएं उनके पास नहीं हैं। लेकिन उनके सारे काम दलितों के द्वारा किए जाते हैं। लेकिन स्वर्ण उनको इतना मेहनती होने के बावजूद सम्मान नहीं देते। उनको घृणा की दृष्टि से देखते हैं। कवि

ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं –

लोहा, लंगड़,
गारा –सीमेंट
ईंट–पत्थर सभी पर है
स्पर्श हमारा
लगे हैं जो घरों में आपके
फिर भी बना दिया आपने
हमें अछूत और अन्तयज
भंगी–डोम–चमार
मांग–पासी और महार।[16]

वाल्मीकि ने अपनी कविताओं के माध्यम से संदेश दिया है कि, स्वर्णों की ये नफरत, घृणा एक दिन विध्वंस बनकर उनके द्वारा निर्मित असमानता और अन्याय की दीवार को ध्वस्त कर देगी। दलितों में चेतना आ चुकी है, जिससे अब तुम्हारा बच पाना मुश्किल है। सदियों से जिन्हें दबाया गया उनमें अब क्रांति और आंदोलन का बीज प्रस्फुटित हो चुका है–

तुमने बना लिया
जिस नफ़रत को अपना कवच
विध्वंस बनकर खड़ी होगी रूबरू एक दिन।[17]

ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी कविता 'तब तुम क्या करोगे?' में दर्शाते हैं कि, तथाकथित उच्च वर्ग ने तुम्हारे इतिहास एवं संस्कृति को नष्ट कर दिया है, तुम्हारे सारे संसाधन छीन लिए गए हैं। तुमको अपने ही देश में नकार दिया है तुम्हारे सारे अधिकार छीन लिए गए हैं। अब तुम क्या करोगे? कवि अपनी रचना में दलितों को उनकी गुलामी का अहसास करा कर उनको क्रांति और आंदोलन करने के लिए प्रेरित करते हुए दिखाई देता है–

यदि तुम्हें,
अपने ही देश में नकार दिया जाये
मानकर बंधुआ
छीन लिए जायें अधिकार सभी
जला दी जाए समूची सभ्यता तुम्हारी
नोच –नोच कर
फेंक दिए जायें
गौरवमय इतिहास के पृष्ठ तुम्हारे
तब तुम क्या करोगे?[18]

जातिवाद के खिलाफ ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की कविताओं आक्रोश व्यक्त है। इस देश में सारी सामजिक असमानता जातिवाद के कारण ही है। जन्म के साथ ही जाति चिपक जाती है और मृत्यु तक पीछा नहीं छोड़ती। मरे हुए व्यक्ति को भी जाति के नाम लेकर ही लोग याद करते रहते है। वाल्मिकी जी अपनी कविता

'वह दिन कब आयेगा' में आश्चर्यचकित होकर रेखांकित करते हैं कि, प्रजनन क्रिया एक समान होने के बावजूद हम अछूत कैसे? आखिर वह दिन कब आएगा? जब इन जातिगत नामों को बामन, भंगी और चमार नहीं जानेंगे। सब एक समान होंगे, कवि ने रेखांकित करते हैं–

मेरी मां ने जने सब अछूत ही अछूत
तुम्हारी मां ने जने सब सामने ही बामन।
कितने ताज्जुब की बात है
जबकि प्रजनन क्रिया एक जैसी है।
वह दिन कब आएगा
जब बामनी नहीं जनेगी बामन
चमारी नहीं जनेगी चमार
भंगिन भी नहीं जनेगी भंगी।[19]

कवि रेखांकित करते हैं कि, सदियों से दलित, दबे कुचले और अछूत वर्ण व्यवस्था पर आधारित अपमान को सहते आ रहे हैं। लेकिन ये कब तक चलेगा? अब तय करना होगा अपनी दिशा को अपने लक्ष्य को पाने के लिए। अब और अपमान अन्याय नहीं सहा जाएगा। व्यवस्था परिवर्तन होकर रहेगा, ऐसा कवि संदेश देते है। सदियों की पीड़ा, वेदना और हताशा को अब अलविदा कहकर अन्याय के खिलाफ एकजुट होकर लड़ने का समय आ गया है। तुमको अपना आत्ममंथन करना होगा की तुम कहाँ खड़े हो–

छद्मवेशी शब्दों का प्रलाप जारी है
सुन चुके अर्थहीन तर्क भी
बहुत दिन जी चुके हताशा और नैराश्य के बीच
कलाबाजियों और चतुराई भरे शब्दों का
खेल हो चुका
अब और नहीं
तय करना होगा
कहाँ खड़े हो तुम
साए या धूप में![20]

इस प्रकार से ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा सृजित कविताओं में दलित चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। इनकी कविताओं में दलित पीड़ा, वेदना, वर्ण व्यवस्था का विरोध, जातिभेद–विरोध, साम्प्रदायिकता के विरोध की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। कवि ने स्वयं जाति आधारित अपमान, अन्याय और शोषण को झेला है और अनुभव किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा सृजित कविता संग्रह 'सदियों का संताप', 'बस! बहुत हो चुका', 'शब्द झूठ नहीं बोलते', और 'बस अब और नहीं' में अपनी कलम के माध्यम से दलित चेतना की यथार्थ अभिव्यक्ति की है। अपनी कविताओं में कवि ने सदियों से दलित वर्ग के ऊपर किए जा रहे अत्याचार, अन्याय, शोषण, भेदभाव को अपनी कविताओं के माध्यम से रेखांकित किया है।

वाल्मीकि जी ने दलित वर्ग पर होने वाले अन्याय, शोषण का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होने इस अन्नाय

ओर उत्पीड़न की अनेक घटनाओं को अपनी कविताओं में स्पष्ट रूप से उकेरा है। दलितों को किस प्रकार से वर्णवादी व्यवस्था में अपमान और अपनी अस्मिता को दांव पर लगाकर जीना पड़ता है। कवि ने गांवों के नरकीय जीवन और सामंतवादी व्यवस्था के अनेक ऐसे पहलुओं को उगाड़ा है जो सीधे तौर पर दलितों की दयनीय स्थिति के लिए जिम्मेवार हैं। कवि की कविताओं पर आंबेडकरवाद का प्रभाव है, जो दलितों, अछूतों और दबे कुचले वर्ग के लोगों को वर्णवादी, मनुवादी व्यवस्था के खिलाफ खड़े होकर लड़ने के लिए प्रेरित करती हुई दिखाई देती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी अपनी कविताओं के माध्यम से दलित वर्ग को समानता और सामाजिक सम्मान दिलाना चाहते हैं। वे एक समतामूलक समाज की स्थापना चाहते हैं। वे दलित वर्ग में फैली अशिक्षा, अंधविश्वास, और दूसरी समाजिक बुराइयों की समाप्ति चाहते हैं। कवि समाज से अन्याय, शोषण, भेदभाव और जातिवाद की को समूल नष्ट करके दलित वर्ग के आदर्श जीवन और सामाजिक समाज की अपेक्षा करता है।

संदर्भ :–

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2008, पृष्ठ 13
2. वही, पृष्ठ 17
3. वही, पृष्ठ 24
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि, अब और नही, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2022, पृष्ठ 20
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस! बहुत हो चुका, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1997, पृष्ठ 79
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि, अब और नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2022, पृष्ठ 12
7. वही, पृष्ठ 28
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2008, पृष्ठ 26–27
9. ओमप्रकाश वाल्मीकि, शब्द झूठ नहीं बोलते, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 20–21
10. वही, पृष्ठ 30–31
11. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस! बहुत हो चुका, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1997, पृष्ठ 13
12. वही, पृष्ठ 100
13. ओमप्रकाश वाल्मीकि, शब्द झूठ नहीं बोलते, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली 2012, पृष्ठ 31
14. ओमप्रकाश वाल्मीकि, अब और नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2022, पृष्ठ 14
15. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस! बहुत हो चुका, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2017, पृष्ठ 48
16. ओमप्रकाश वाल्मीकि, अब और नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2022, पृष्ठ 92–93
17. वही, पृष्ठ 90
18. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2008, पृष्ठ 50
19. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस! बहुत हो चुका, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1997, पृष्ठ 103
20. ओमप्रकाश वाल्मीकि, अब और नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2022, पृष्ठ 105

मोबाइल –9813156148

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 74-88

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन आदिवासी कथा–साहित्य में आदिवासी जीवन दृष्टि

डॉ. संजय कुमार

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर।

सन् 1950 के बाद हिन्दी साहित्य के लेखन में विविध विमर्शों का आगमन हुआ जिसमें समाज के उन पक्षों पर बात की गई जो समाज और साहित्य से नदारत थे या फिर उन पर कम बाते की गईं अथवा कम लेखन कार्य के साथ कम शोध कार्य हुए यह समय जन जागरण का समय था। एक तरफ हिन्दी साहित्य में नई काव्य धारा की सरिता बह रही थी। जिसके केन्द्र में आमजन मानस की समस्याएं नीहित थी और दूसरी ओर वहीं पर कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से विस्थापन जल, जंगल और ज़मीन के संघर्ष को उकेरा जा रहा था। दलित, स्त्री और आदिवासी के मुद्दों ने हिन्दी कथा साहित्य के लेखन की दृष्टि ही बदल दी। धीरे–धीरे लेखक एवं लेखिकाओं ने इनकी पीड़ाओं को अभिव्यक्त करना शुरू किया और इनकी संवेदनाओं को कलमबद्ध करके आम जनमानस के बीच पहुचाया।

समकालीन विमर्श के अन्तर्गत आदिवासी समाज की समस्याओं तथा उनकी संस्कृति, परम्परा जीवन दृष्टि, दर्शन दृष्टि एवं आचार–विचार को कथाओं में आदिवासी एवं गैर आदिवासी लेखकों ने कथाओं में पिरोया और उनकी मूल्यवती मूल्यपरक प्रश्नों को चित्रित करते हुए उसे एक नया आयाम दिया। वर्षों से जंगलों में रहते हुए आ रहे आदिवासी समाज के प्रति किया गया लेखन सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना की नई पृष्ठ भूमि तैयार करता है। आदिवासी जीवन मूल्य श्रेष्ठता के नकार का जीवन मूल्य है, सरलता उसकी पूँजी है, सहजपन उसकी आत्मा है, भोलापन उसका चरित्र है। प्रकृति से वह ऊर्जा ग्रहण करता है। वह सम्पूर्णता मनुष्य है, मै थोड़ा झूठ लेकर कहूँ तो वह प्रथमः मनुष्य है और अन्ततः मनुष्य ही है आवरण रहित, निःकलुष।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रवीन्द्र नाथ ठाकुर के बहाने इस देश को महा मानव समुद्र कहा है। यक्ष, नाग, असुर, दैत्य, दानव, गन्धर्व, किन्नर आकर समय–समय पर इसके जीवन कोश में श्रीवृद्धि करते रहे, विकसित होती हुई संस्कृति ज्ञान–विज्ञान के सहारे परिधि से बाहर आ गई किन्तु जो छूट गये परिधि के भीतर रह गये जीवन को यक्ष प्रश्न के रूप में संभाले समय के पहिया को रोककर प्रकृति के निरवता से सनध्य होकर घने जंगलों के वासी हो गये आज विकसित समाज ही उसे आदिवासी कहता है।

ऋतस्य यथः प्रेतस्य (ऋग्वेद) के सहयात्री या कि साक्षी मानकर जीवन–यापन करने वाले महावीर स्वामी का परिग्रह, भगवान बुद्ध के सम्पत्ति विहीन भिक्षु और कबीर की माया महाठगनी जैसे सत्य वाक्य आदिवासी मनुष्यों के जीवन बोध का दर्शन है। भ्रर्तहरि साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात पुच्छ विषाण हीनः का दर्शन भी इन पर सटीक बैठता है, जो स्वायत्तता, समानता, सामूहिकता, सहजीवता, सहधर्मिता और दर्शन शास्त्र के

मूल्य मीमांषा इत्यादि भाव चेतस्य जीवन मूल्य इनका दर्शन है।

वर्तमान समय में आज जिस मानव समुदाय को हम आदिवासी नाम से जानते हैं, उनके जीवन में एक तरह का जीवन जीने का तरीका है जो अन्य से भिन्न है। उनकी एक अलग संस्कृति है, एक अलग संस्कार है, एक अलग अनुशासन है। यदि मानव सभ्यता में सामूहिक जीवन बचा है या देखने को मिलता है तो आदिवासी समाज में ही है। आधुनिक सुविधाएं सुखी जीवन जीने का भ्रम तो करा सकती हैं, परन्तु आनन्द तनिक भी नहीं है। आदिवासी जीवन की प्रकृत है सरल जीवन, सहज जीवन और एक स्वाभाविक अनुशासन है जो उनके जीवन के मूल्य हैं। आदिवासी जीवन प्रकृति से जुड़ा हैं, यही इनकी पहचान है। उनके सभी कार्य इन्हीं जंगलों पर निर्भर है। उनके जीवन में नदी हैं, पहाड़ हैं, गुफाएं हैं और सुकून देता शान्त मनोहर जंगल हैं। उनका दर्शन या जीवन दर्शन इन्हीं वनस्पतियों में है। कहा जा सकता है कि उनका दर्शन प्रकृति के साथ रहना या प्रकृति के साथ जीवन जीना ही दर्शन है। यहाँ यह बात अधिक महत्वपूर्ण है कि सच्चा और प्रकृति प्रेमी होना। ईश्वर पर निर्भर सत्य के मार्ग पर चलना। प्राकृतिक गुणों को जीवन में स्वीकार करना। प्राकृतिक सत्य को जीवन में उतारना। आदिवासी जीवन प्रकृति, जीवन व परमात्मा जैसी संकल्पनाओं की समझ सहज स्वभाव के कारण हजारों सालों से रखता आया है। प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से दार्शनिक ज्ञान की इस धारणा को लगभग–लगभग सभी आदिवासी समुदायों के जीवन में देखा जा सकता है।

जीवन दृष्टि एवं जीवन दर्शन :-

समकालीन विमर्श के दौर में विमर्शवादी लेखन दृष्टि के सन्दर्भ में लेखकों के समक्ष यह प्रश्न उठा की समाज में संवैधानिक अधिकारों से सबसे ज्यादा वंचित कौन है और कौन सा ऐसा समुदाय है जिसके जीवन दर्शन एवं जीवन दृष्टि से समाज वंचित है। लेखकों के अन्दर चेतना जागी और उन्होंने एक ऐसे समाज पर कथा लेखन करने का बीड़ा उठाया जो वास्तव में सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं संवैधानिक दृष्टि से वंचित था। जिसे हम आदिवासी समाज के नाम से जानते हैं। महाश्वेता देवी, रांगेय राघव, देवेन्द्र सत्यार्थी, राजेन्द्र अवस्थी, कृष्ण चन्द्र शर्मा, नागार्जुन, मेहरु निशा परवेज, शानी, रोज केरकेट्टा, महादेव टोप्पो, रामदयाल मुंडा, संजीव, रणेन्द्र आदि कई ऐसे लेखकों ने आदिवासी समाज के प्रति चिंतन मनन शुरू किया और अपनी कथाओं में उनकी जीवन दृष्टि तथा उनके जीवन दर्शन को समाहित किया और उसके महत्व को समाज के समक्ष वर्णित किया। आदिवासी समाज शुरू से ही प्रकृति पूजक, प्रकृति चिंतक एवं प्रकृति प्रहरी रहा है। उनके जीवन दृष्टि के अन्तर्गत जंगल, पहाड़, नदी, झरने, पक्षियों का कोलाहल, पेड़–पौधों के प्रति आत्मीयता का अर्न्तर भाव बसा है। आदिवासी समाज की जीवन दृष्टि में समन्वय, एकता, अखण्डता, भाईचारा की भावना का समावेश मिलता है। वह जीवन जीने की कला को बखूबी जानता है। प्रकृति में रचे बसे आदिवासी समाज के लोग मौसम का ज्ञान, चिकित्सा ज्ञान, फलों का ज्ञान तथा ऐसे कई अनेक विज्ञानों से वह परिचित हैं जो व्यक्ति के जीवन दृष्टि की दशा को नई दिशा में बदल सकते हैं। उनके जीवन में राग–विराग, हर्ष, उल्लास, लोकरंग आदि का चित्रण प्रमुख रूप से दिखाई पड़ता है। उनके यहाँ पर्व–त्योहार को सहयुक्त रूप में मनाने की प्रथा है, उनके यहाँ बड़ों की आज्ञा सरदार मुखिया या फिर परिवार के बड़े सदस्य का सम्मान बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता है। मातृ एवं पितृ सत्तात्मक परिवारों की व्यवस्था उनके यहाँ पाई जाती है। परन्तु मातृ सत्ता को उनके यहाँ अधिक महत्व दिया जाता है। विवाह प्रथा, दाह संस्कार प्रथा, पर्व उत्सव, न्योता देने की

प्रथा बहुत ही सुव्यवस्थित ढंग से होती है। टोटम, गोत्र प्रथा में प्रकृति के अभिन्न अंगों के आधार पर वंशावली का संबंध स्थापित करना सिर्फ आदिवासी समाज में ही मिलता है। आदिवासी समाज की जीवन दृष्टि उच्चकोटि के साथ सर्वे भवन्ति सुखिना सूक्ति को चरितार्थ करती है। आदिवासी समाज समूह में जीता आया है। यह आदिवासी जीवन का नैसर्गिक स्वभाव है। इनके जीवन में मनुष्य का उतना ही अर्थ है जितना प्रकृति का। आदिम समुदाय अपने व्यवहार में, जीवन शैली में, प्रकृति पर ही निर्भर है वह कहता भी है ''हम जंगल के बिना जिएंगे कैसे? हमारी झोपड़ी, खटिया बनाने की लकड़ी और रस्सी जंगल से आती है।[1]'' आदिम जनजीवन की सभी जरूरत की वस्तुएं उसके पास स्थित वनस्पतियों में ही आसानी से उपलब्ध है, चाहे उनके आवास बनाने की वस्तु हो या फिर रहने खाने के संसाधन, सभी जंगलों से प्राप्त हो जाते हैं। आदिवासी समाज अपनी पहचान जंगल, पहाड़ों, नदियों को मानता है वह कहता है इनके बिना हमारा अस्तित्व ही नहीं है। जबकि मुख्य धारा का मानव समाज इतना लोभी है कि वह इन प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करता जा रहा है, लेकिन आदिवासी समुदाय यह जानता है कि इन प्राकृतिक संसाधनों पेड़–पौधों, नदियों, झरनों के बिना मानव जीवन की कल्पना तक नहीं की जा सकती है। जंगलों मे बसता आया जीवन बड़े ही उदास मन से कहता है कि ''क्या यह सच नहीं कि हमारी इमेज़ेज में पेड़ थे, नदियाँ थीं, पहाड़ थे, चीते थे।''[2] आदिवासी समाज के जीवन में इन प्राकृतिक चीजों का कितना महत्व है, प्रकृति में मिलने वाले सभी जीव जन्तुओं का महत्व है। थोड़ा सोचकर देखिए कि आप किसी जंगल में हैं जहाँ आप एकदम एकान्त है। जहाँ पर अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ एवं छोटे–छोटे पौधे उगे हैं, फूल खिले हैं, नदियाँ, झरने, झील, सरोवर का मनोहारी दृश्य है, सुबह हो या शाम, भोर हो या साँझ जंगल के जीव जन्तुओं की आवाज़ें पक्षियों का कलरव सुनाई दे, जिसमें कोयल की मधुर आवाज़ और मंद–मंद गति से सुखद हवा चल रही हो पूरा वातावरण प्रदूषण रहित हो आकाश निर्मल एवं पानी की तरह स्वच्छ हो तो भला इस वातावरण में किसका चित्त शांति की अनुभूति नहीं करेगा। इस साफ वातारण के सान्निध्य में आदिवासी समाज रहता आया है असल में जीवन का सार, जीवन का तार, इन्हीं नदियों, झरनों, पहाड़ों की हरियाली में मौजूद है। हमारे आदि त्रषि मुनि भी इन्हीं जंगलों में रहते आये हैं उनका भी हमेशा से यही मानना रहा है कि पेड़ पौधों के सान्निध्य में ही मानव जीवन का सम्पूर्ण विकास होना संभव है। गुरूकुल नामक संस्था जो हमारे ज्ञान और जीवन की शिक्षा का एक केन्द्र था। वह जंगलों में ही रह कर प्राप्त की जाती रही है। हमारे महापुरूषों ने कहा भी है कि प्रकृति के ओर लौटो।

आदिवासी समाज का जीवन सहज, सरल एवं निःस्वार्थ भावों से भरा है, यद्यपि मानव अपने समाज में ही सब कुछ सीखता है वहीं से उसके संस्कार पलते हैं उनमें सहयोग की भावना, सामूहिकता, एकता, सहकर्मी की भावना देखने को मिलती है। आदिवासी समुदाय के बच्चे हो या महिलाएं सभी स्वछन्द रूप से रहते हैं उनके घर में कभी ताला नहीं लगता है, उनके समाज में सहभाव की भावना का एक चित्रण करते हुए आदिवासी लेखिका जोराम यालाम अपने उपन्यास 'जंगली फूल' में लिखती हैं :

''प्रकृति कभी खाली नहीं होती है, किसी को भी खाली पेट आसानी से मरने नहीं देती है। रास्ते में आने वाले गाँव के किसी भी घर में वे घुस जाते हैं और रातभर की पनाह पा लेते। पेड़ों के ऊपर, कभी उनके नीचे, खुले आसमान के तले रात–भर आग जलाकर बैठे रहते। कभी किसी गुफा के अन्दर सो जाते।''[3] आदिवासी समाज में किसी को किसी भी प्रकार का भय नहीं होता है क्योंकि समूह उसके साथ है। गैर आदिवासी समाज

में व्यक्ति अपने घर में अकेले डरता हैं। यह व्यक्तिवादी समाज है, पूँजीवादी समाज है। आदिवासी जीवन दर्शन में सामूहिकता है जो उसे भय मुक्त समाज प्रदान करता है अपनेपन का एहसास दिलाता है। सुरक्षा संरक्षा प्रदान करता है। आदिवासी समाज का जीवन सहज, सरल एवं निःस्वार्थ भावों से भरा है, यद्यपि मानव अपने समाज से ही सब कुछ सीखता है वहीं से उसके संस्कार पलते हैं उनमें सहयोग की भावना, सामूहिकता, एकता, सहकर्मी की भावना देखने को मिलती है। आदिवासियों के लिए यह संसार बहुत ही सुन्दर है, अप्रतिम है, सब कुछ खूबसूरत है। प्रकृति के प्रति इनका आत्मीय भाव है। इनके मनों के भीतर। मनुष्य से भिन्न अर्थात जंगल के प्राणियों के प्रति इनके मन में सहअस्तित्व की भावना है। ''साल के पत्ते में हम और हमारे डियंग देसाउलि डियंग पीते है, खाना खाते हैं, इस साल के जंगल पर हमें बड़ा नाज़ है हम 'हो' आदिवासियों के शौर्य का प्रतीक है साल। जड़ से लेकर फूल तक का एक एक हिस्सा उपयोगी है, हजार साल खड़ा, हजार साल पड़ा और हजार साल सड़ा हम आदिवासियों ने हजारों वर्षों तक जाँचने परखने के बाद ही तो इसे देवता का दर्जा दिया है। अत्यन्त श्रद्धा, भक्ति से पूजा करते हैं इसकी रक्षा के लिए जान तक दे सकते हैं।''[4] आदिवासी समाज में सब बराबर होते हैं उनके यहाँ न्याय न्याय होता है, ''न्याय वह है जिसमें किसी की हार न हो। कोई तब ही अपने को जीतता हुआ मानते हैं जब उससे कोई हारा न हो। किसी को हराकर यदि वह जीता हो तो वह सही मायने में जीत नहीं है।''[5] यहाँ श्रेष्ठता को नकारा गया है। उनके समाज में सभी एक समान हैं किसी के जीतने से सबकी जीत और किसी के हारने से पूरे समाज की हार है। यह भाव दर्शाता है कि आदिवासी जीवन मूल्य अपने में कितना सहभाव को समेटे हुए है। उनके सामाजिक कार्य सभी एक समूह में रहकर किये जाते हैं फैसले सभी समूह में लिए जाते हैं जो सामूहिकता में जीने का बड़ा साफ उदाहरण है। सांसारिक जीवन में हस्ना खेलना आबाद रहना, जीवन को सुखमय बनाना एक नैसर्गिक है।

आदिवासी समाज का जीवन दर्शन निश्छल है उनके मन में भोलापन है, वह मानता है कि इस संसार को बरुबोंगा ने ही बनाया है ''सुना है यह सारे पहाड़ पगडंडी हमारे बुरुबोंगा के ही अधीनस्थ हैं। वही इस अरण्य प्रदेश का शासक है बाध, भालू, साँप, छछूँदर, पशु–पक्षी सबके सब उसकी प्रजा हैं।''[6] इनके ईश्वर किसी दूसरे लोक के वासी नहीं हैं इनके अपने पुरखे हैं जो इनके साथ रहे हैं, उन्हें ही अपना ईश्वर मानते हैं। इनके देवता इनके आस–पास ही निवास करते हैं। आदिवासी समुदाय में मन्दिर, मस्जिद, चर्च आदि जैसे धर्म प्रतीक कुछ नहीं होता है। प्रकृति ही उनका धर्म है। आदिवासी जीवन एवं दर्शन में मनुष्य के साथ–साथ ईश्वर पदत्त सभी मानवेतर प्राणी को आदिवासी समाज अपने अस्तित्व की पहचान और प्राणी से संबंध जोड़ता है जिसे वह अपने अस्तित्व से अधिक महत्व देता है और संभाल कर रखता है, रखना चाहता है। ''हम आदिवासी आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक रूप से अपनी धरती माता से जुड़े हुए हैं, अतः हम रिन्यूएबल ऊर्जा के श्रोतों, जो आदिवासियों की जमी़न तथा धरती के इको सिस्टम को बनाए रखे, न कि उसे बर्बाद कर दे, का समर्थन करते हैं।''[7] आदिवासी जीवन मे उसके पास मिलने वाली वनस्पतियों से ही उसके संस्कार उसके जीवन का प्यार मिलता है। वह धरती को हरा–भरा बना रहे इसके लिए वह प्रयास करता रहता है वह उसका उतना ही उपभोग करता है जितना उसे आवश्यकता होती है, विकसित मानव की तरह नहीं कि अपने लिए तो करे और आने वाली पीढ़ी के लिए भी प्रकृति का दोहन कर के रख ले उसके भविष्य के लिए। आदिवासी मनुष्य गाय का दुध कभी नहीं पीता है वह कहता है कि उस पर उसके बछड़े का हक है, परन्तु मुख्य–धारा का मनुष्य सुई लगा–लगा कर दूध

निकालता है और बेचता है यदि उसका बछड़ा मर जाये तो उसकी खाल को पुतला बना कर गाय के सम्मुख कर उससे दूध निकलता है।

आदिवासी जीवन प्रकृति से जुड़ा होने के कारण उसके हर हल चल को आसानी से जान लेता है। आदिवासी समाज प्राकृतिक संकेतों व घटनाओं को पहले से अनुभाव कर लेते हैं यह अपने धरती माता के जुड़ाव के कारण ही होता है। आदिवासी पशु–पक्षियों की आवाजों व ध्वनि से समझते हैं सन् 2004 की सुनामी की जिक्र करते हुए आदिवासी कथाकार हरि राम मीणा ने आदिवासी की प्राकृतिक अवस्था की जानकारी का एक सच्ची घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है ''जारवा समुदाय का एक आदिवासी युवक पोर्ट ब्लेयर अस्पताल में इलाज करवाने आया था। वह पहली मंज़िल के वार्ड में भर्ती था। उसका अटेंडेंट साथी किसी काम से नीचे गया। उसे कुछ आभास हुआ। उसने तारकोल की पक्की सड़क के किनारे लेटकर कच्ची जमीन से अपना कान सटाया। वह तुरंत खड़ा हुआ। अपने साथी के पास गया। उसके कान में कुछ कहा। दोनों वहाँ से भागे। सीधे जंगल में गए जहाँ उनके समूह के लोग पहले से ही ऊँची पहाड़ियों पर चढ़ गये थे। इस घटना के ठीक चौबीस घंटे बाद सुनामी का कहर टूट पड़ा।''[8] अब कहने की आवश्यकता नहीं है, कि जीवन दर्शन और जीविका का कितना अर्न्तसंबन्ध है और आदिवासी जीवन श्रम पर निर्भर रहा है। श्रमशील जीवन ही आदिवासी जीवन का दूसरा पक्ष है। वे चाहे खेत में काम कर रहे हों या जंगल में अथवा पहाड़ में पर उनके जीवन में श्रम ही प्रधान रहा है। परिश्रम का सौन्दर्य उनके जीवन का आधार है वे अपना अपने बच्चों का भरण–पोषण करता आया है। ऊँचे–ऊँचे पहाड़ों और घने जंगलों एवं नदी घाटियों से ही उनका सदैव श्रम का संबंध रहा है। उन्हें बहुत ही कठोर श्रम करना पड़ता है। यदि परिश्रम के समय किसी भी प्रकार का दःख आता है या सुख आता है तो वह आपस में व्यक्त करते रहते हैं और साथ–साथ ही उसका सामना भी करते हैं। एक आदिवासी महिला अपने पति से कहती है कि ''यह बात सही है कि बुनाई के काम में मेहनत बहुत है, कमर दुखने लग जाती है और आँखें भारी हो जाती हैं। परन्तु इसमें न पहाड़ी पर चढ़ना होता है और न ही घर से बाहर जाना पड़ता है।''[9] आदिवासी जीवन अपने काम के प्रति कितना लगनशील है वह जानता है कि इसमें ज्यादा काम करना पड़ता है परन्तु जान का जोखिम कम है। वह भी सम्मान चाहता है, साफ रहना चाहता है अपने बच्चे को आगे बढाने के लिए लालायित है।

आदिवासी साहित्य मौखिक रूप में ज्यादा हुआ है। लिखित रूप में अभी आना बाकी है। आदिवासी साहित्य लोक साहित्य है क्योंकि उनका साहित्य लोक जीवन में ही बसता है। आज आदिवासी साहित्य में जीवन दर्शन लोक भाषाओं में लिखे जा रहें हैं। आदिम समाज में जीवन, जीवन दर्शन और आजीविका ये तीनों शब्द आपस में घुले मिले हैं कि इन्हें अलग करके समझने की आवश्यकता है। आदिवासी समाज का ताना बाना ऐसा निर्मित होता है कि उनकी एक प्रकार की जीवन शैली है जिसमें सभी लोग स्वतंत्र हैं लेकिन उस व्यवस्था से बाहर नहीं जिसमें पूरे समुदाय को रहना है। व्यवस्था समान रूप से सभी पर लागू होती है उनकी सामाजिक निर्मित ऐसी होती है कि कोई भी महिला हो पुरूष हो बच्चा हो किसी भी समय रात हो, दोपहर हो, वह अपने निवास स्थान में सुरक्षित है क्योंकि वह समुदाय में है और समुदाय उसके साथ है। यह अब विचार करने की बात है कि इसमें दार्शनिकता कहाँ है। सूक्ष्मता से देखेंगे तो पता चलेगा कि सामाजिक व्यवस्था में कोई भी व्यक्ति हो उसका जीवन समुदाय के लिए होता है और समुदाय का जीवन उसके लिए होता है। उसे बचाने और उसे

स्वतंत्रता प्रदान करने की जो संकल्पना है वही तो दर्शन है कि 'जियो और जीने दो' यही आदिम समुदाय का दर्शन भी है। कथाकार रणेन्द्र के उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में दर्शन का संदर्भ देखने को मिलता है कि ''लालचन भाई की गोमकाइन, हमारी भौजी, रुमझुम की आयो और ऐसी असुर आदिवासी जब पसीन में ऊब–डूब करती भी हँसती–खिलखिलातीं तो साथ में सरना माई और धरती माई भी हँसने लगती।[10] आदिवासी समाज के कार्य सामूहिक और बिना किसी योजना के किये जाते हैं अर्थात सब कुछ नैर्सगिक होता है। बनावटीपन तनिक भी नहीं होता है। उनके जीवन में काम की महत्ता के साथ उनका भगवान भी उनके साथ काम करने आ जाया करता है, खेतों में एक साथ काम करने, खलिहानों में, नदी से पानी लाने जाने में जब सभी स्त्रियाँ एक साथ जाती हैं गीत गाते हुए तो ऐसा लगता है नदी गा रही है जंगल शान्त होकर उनकी मधुर गीतों का आनन्द ले रहा है। आदिवासी जीवन में सब कुछ सुन्दर है सब सुन्दरता की प्रतिमूर्ति है। उनके यहाँ समाजिकता की ऐसी व्यवस्था है कि महिलाएं अकेले जंगल जा रही है जबकि मुख्य धारा में कहीं देखने को मिल जाये कि महिला रात को खेत गयी है। वह दिन में अकेले अपने घर में सुरक्षित नहीं है। लेकिन आदिवासी जीवन में मनुष्य जीवन ही नहीं वे अपने पशुओं का भी वह पूरा ख्याल रखते हैं।

उनके जीवन में काम का सौन्दर्य का एक उदाहरण रणेन्द्र के उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' से रखता हूँ कि ''दीवारें काली मिट्टी से जतन से लीपी जातीं। कमरों के फ़र्श को भी काली मिट्टी डालकर चिकने पत्थर से इतना रगड़ा जाता कि वह चिकने–चुपड़े सीमेंट के फ़र्श का भ्रम देता। दीवारों पर काली मिट्टी के लेप सूखने के बाद उन पर सफेद मिट्टी का लेप चढाया जाता। फिर पूरी हथेलियों की छाप झलक मारती। यह अद्भुत हथेलियों की छापवाले चित्र न केवल दर–ओ–दीवार पर, बल्कि खेतों, खलिहानों, जंगलों–बगानों, खानों, नदी–नालों, चुआँ, पझरा, सोतों, झरनों में हर कहीं दिखाई देते।''[11] कथाकार तेजिंदर ने भी अपने उपन्यास 'काला पादरी' में ऐसे हीएक आदिवासी घर की सौन्दर्यता का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ''झोंपड़े के बाहर की दीवारों को स्लेटी रंग की मिट्टी से लीपा गया था। यह लीपना कोई साधारण लीवना नहीं था। बेहद आकर्षक था। अर्धचंद्राकार आकृतियों के छोटे–छोटे समूह थे जो पूरे झोंपड़े पर फैले थे। यों लगता था कि जैसे हम आसमान के करीब हों।''[12] उनके घर प्राकृतिक चीजों से बनाया गया है यही आदिवासियत है यही आदिवासी दर्शन की मूल भावना भी है कि यह संसार बना रहे। यह आदिवासी समाज की जीवन की सुन्दरता है यही मानव के और प्रकृति के बीच एक प्रकार का तादात्म स्थापित करता है। उनके यहाँ खुश रहने के लिए कोई कारण नहीं ढूढा जाता है बल्कि सब अपने आप हो जाता है। कितना सरल जीवन है कहीं भी रंच मात्र भी कपट नहीं है प्यार की निर्मल गंगा बहा करती है उनके यहाँ। आदिवासी समाज के बीच में अक्सर यह देखने मिल जाता है कि जब उनके घर कोई व्यक्ति या मेहमान आते हैं तो उसके पैर थाली में रखकर धोये जाते हैं, यह आदर सत्कार की भावना आदिम समुदाय में बहुत ही प्राचीन है इसका वर्णन आदि पौराणिक ग्रन्थों में भी देखने को मिलता है। पर यहाँ पैर धोने का कार्य घर के मुखिया के द्वारा किया जाता है यदि वह नहीं है तो घर का जो बड़ा सदस्य होगा वह यह कार्य करेगा। यह प्रेम भाव को दर्शाता है पैर धोना की आप अपने अतिथि का कितना आदर सत्कार पूरे मनोयोग से करते हैं। यह भाव और सौन्दर्य आदिवासी समाज का एवं उनके दर्शन का एक प्रतीक है।

इस प्रकरण को कथाकार तेजिंदर ने अपने उपन्यास 'काला पादरी' में लिखते हैं जब खाका अपने मित्र

को अपने घर ले जातें है तो खाका की बहन उनके मित्र का पैर पीतल के थाल पर रख कर धोती है तो उस दृश्य को चित्रित करते हैं ''पीतल के साफ सुथरे थाल में मेरे दोनों पैर थे और मैं कहां था, मुझे पता नहीं। युवती के हाथों का स्पर्श जो कि मेरे अपने पैरों पर था, मेरे मन मस्तिष्क में धंस गसा था, बावजूद इसके मैं अपने आपको बहुत हल्का महसूस कर रहा था। मुझे लगा कि वह स्पर्श एक बच्चे का है या माँ का। स्पर्श की पवित्रता के बारे में मैंने बहुत कुछ सुन रखा था। किताबों में पढ़ रखा था। दादी की कहानियों में स्पर्श के जादू के कई तिलिस्मी किस्सों के बारे में सुना था। पर इस 'छुअन' को जीवन में पहली बार महसूस कर रहा था।''[13] यही भाव आदिवासी समाज और उनके जीवन को मुख्य–धारा के समाज से बहुत ही उत्कृष्ट बनाती है। बाहरी दुनिया में दिखापन है क्योंकि लेखक उसी भाव को व्यक्त करते हुए आगे लिखेते हैं कि ''दुनिया के ढेर सारे ताज़गी लाने वाले साबुन के विज्ञापन झूठे थे। सफेद झूठ, काले झूठ, रंगीन झूठ।''[14] आदिवासी समाज का जीवन सिर्फ जीने खाने के लिए नहीं है वह अपने पास रहने वाले हर चीज को सँवार कर रखना चाहता है उसे बचाना चाहता है कि मनुष्यता बनी रहे यही आदिवासी जीवन सिखलाता है। 'छैला सन्दु' नामक उपन्यास में आदिवासी कथाकार मंगल सिंह मुड़ा ने लिखा है जब एक गैर आदिवासी लड़की महल से निकल कर जंगल को आ जाती है तो वह आदिवासी जीवन को अपने शब्दों में व्यक्त करती हुई कहती है कि ''तुम आदिवासियों को अक्ल आयेगी कब? हम तुम्हें नाहक ही जंगली कहा करते हैं। असल में जीवन की ताजगी तो इन्हीं वन घाठियों की हरियाली में मौजूद है। किसी हवेली या महल के कैद खाने में नहीं।''[15] आदिवासी समाज में किसी भी प्रकार की खुशी हो, पर्व हो, त्योहार हो उस बड़े ही हर्षोउल्लास के साथ मनाते हैं और समूह में सामान्य दिनों में भी मनोरंजन की दृष्टि से उत्सव मनाते रहते हैं, छोटे–छोटे कामों को भी वे बड़ी उत्सुकता से किया करते हैं किसी भी प्रकार का कार्य पूरा हो जाने पर उसका परिश्रमिक आपस में बांट लेते हैं इसका एक अच्छा उदाहरण देखने को तब मिलता है जब शिकार में एक बच्चा भी भाग लेता है तो उसका भी हिस्सा लगता है जितना किसी वयस्क व्यक्ति का। ऐसा इसलिए किया करते हैं कि कल जब यह बच्चा बड़ा हो जायेगा तो इस परम्परा का निर्वहन करेगा अब इसमें उनकी दार्शनिकता यह है कि जीवन का मूल्य बड़ा हो या छोटा जीवन उसका भी है शिकार खेलते समय किसी भी प्रकार की घटना हो सकती है इसलिए जीवन सामान्य होता है उसके जीवन और समय का हक उसे मिलना चाहिए यही आदिवासी दर्शन की सौर्वभौमिकता है कि जीवन सबका अनमोल है। ऐसी सुव्यवस्था किसी भी और समाज में देखने को नहीं मिल सकती है।

आदिवासी समाज और उनका जीवन अन्य शेष समाज से भिन्न है। वैसे ही आदिवासी दर्शन भी अन्य दर्शन से एकदम अलग है। हमको आदिवासी दर्शन को समझना है। आदिवासी दर्शन का मूल्यांकन करना है तो हम आप ने जो दर्शन विकसित किये हैं उससे अलग होकर आदिवासी दर्शन को समझना होगा जो आदिवासी समाज से बात–चीत के माध्यम से संवाद स्थापित करना होगा। खास तौर से जब उनके कथाओं की बात कर रहें हैं तो हमें उन प्रतिमानों से हटकर हमें आदिम समाज और आदिवासी दर्शन पर बात करनी पड़ेगी। आदिवासी हिन्दी कथा साहित्य में आदिवासी कथाकारों ने अपनी कथाओं में जो आदिम जीवन को अभिव्यक्त किया है। या उनकी संस्कृति, जीवन मूल्य, या उनका व्यवहार, प्रकृति और सभी जीवों के साथ उनकी जो आत्मीयता अभिव्यक्त हुई है उसका उल्लेख करते हुए आदिवासी महिला कथाकार महुआ माजी ने अपन उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में जो स्वयं प्रज्ञा नामक पात्र हैं के माध्यम से कहती हैं कि ''कुछ युवतियां नदी में पांव

डूबाकर बैठे–बैठे आपस में बतिया रहीं थीं खिलखिला रहीं थीं फिर सब अचानक मिलकर हल्के–हल्के झूमते हुए कोई गीत गुनगुनाने लगी। गीत गाती युवतियों के करीब आकर कुछ यवकों ने आहिस्ता–आहिस्ता अपने–अपने गले में लटकता ढोल मांदर बजाना आरम्भ कर दिया था। और घुटनों तक पानी में डूबी युवतियों की छाया ने आरंभ कर दिया था थिरकना नदी में पड़ रही उन युवतियों की छाया भी थरथराने लगी थी। जल्द ही पानी से बाहर निकलकर नृत्य में मशगूल हो उठी थीं। वे ढोल मांदर की ताल से ताल मिलाकर समूह की सभी युवतियों के पांव एक साथ उपर उठते हुए आगे बढ़ रहे थे और पीछे जा रहे थे।''[16] यही आदिवासीपन है, जीवन एक संगीत की तरह है जिसमें सभी सितार के तारों की तरह बधें हैं उनका यह रसमय जीवन कितना कुछ समकालीन समाज को देता है। यही जीवन के प्रति आदिवासी समाज का दृष्टिकोण है। एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक बात यह है कि आदिवासियों द्वारा रचे जा रहे साहित्य में कोलाहल तनिक भी नहीं है। जंगल में यह जो गीत गया जा रहा है उसे रचने वाले खुश नहीं हैं वे तैयारी कर रहे हैं लड़ने की तब भी जंगल शान्त है। यह आवश्यक रूप से है कि गैरआदिवासी एवं आदिवासी दोनों के साहित्य सृजन में असमानता है एक सुन्दर की संकल्पना करता है और दूसरा मंगल की। पर हम सब मिलकर उस सुन्दर को पाने की कोशिश करें जिसमें हर चीज सुन्दर है। प्रकृति की एक–एक वस्तु सौन्दर्य से पूर्ण है जिसे प्रकृति ने बनाया है, उसे ही सुन्दर बनाने की कोशिश में आदिवासी जीवन लगा हुआ है। आदिवासी कथाकार महुआ माजी अपने उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में प्रकृति की सुन्दरता को बचाने के लिए 'साल' के वृक्ष की खूबी बताती हुई लिखती हैं कि ''इस साल के जंगल पर हमें बड़ा नाज़ है। हम 'हो' आदिवासियों के भौर्य का प्रतीक है साल! जड़ से लेकर फूल तक–साल का एक एक हिस्सा उपयोगी है। दीर्घजीवी भी होते हैं ये। साल के बारे में बचपन से सुनते आए हैं हम–'हजार साल खड़ा, हजार साल पड़ा और हजार साल सड़ा'। हमारे लिए इससे ज्यादा उपयोगी और कोई पेड़ नहीं। हम आदिवासियों ने हजारों वर्षों तक जाँचने परखने के बाद ही तो इसे देवता का दर्जा दिया है।''[17] इनके जीवन दर्शन में पेड़, नदी, पहाड़, जंगल और जंगलों में पाये जाने वाले वनस्पितियाँ हैं। समस्त वनस्पतियों को बचाने का वह काम करते हैं। ये जंगल, ये पेड़ उनके देवता हैं आदिम समाज के दर्शन में प्रकृति ही सब कुछ है। तभी तो झारखण्डी वीर बुधु भगत ने कहा था ''सखुआ के पेड़ों में नये फूल आ गये हैं, आओं अपने लहू से इन फूलों की आजादी की रक्षा करें।''[18] सखुआ का पेड़ साहित्य में आता है। परन्तु पलाश, गूलर, महुआ और आँवला आदिवासी समाज के जीवन का प्रतीक है। स्वाभिमान है, सम्मान है, जीविका के साधन हैं। आदिवासी जीवन की दृश्टि की तुलना गूलर के फूल से की जा सकती है जिस प्रकार गूलर के फूल दिखते नहीं हैं उसी प्रकार से आदिवासियों के जीवन दृष्टि को खृली आँखों से देख पाना असंभव लगता है।

महुआ आदिवासियों के खून में जिस प्रकार से घुला हुआ है। महुआ उनके जीविका का साधन है सुन्दरता और सम्मान का प्रतीक रहा है, उसे गैरआदिवासी साहित्य अभी नहीं समझ पाया है। वह केवल सखुआ, पलाश के इर्द–गिर्द ही लेखन कर रहा है। जबकि आदिवासी साहित्य एवं आदिवासी जीवन में महुआ है। आदिमजन का जो जीवन दर्शन है उसे जिये बिना लिखा नहीं जा सकता है। गैरआदिवासी लेखक एवं कथाकार गोर्वधन यादव ने अपनी कहानी 'महुआ के वृक्ष' में एक पात्र के माध्यम से आदिवासी जीवन दर्शन को अभिव्यक्त करते हुए लिखतें हैं कि ''गाँव के बाहर, लाला दीनदयाल की दारू की भट्ठी थी। शाम होते ही वहाँ अच्छी–खासी चहल–पहल हो उठती थी। गाँव के सारे दरुवे इकठ्ठे होने लगते। रूपलाल भी दारू–भठ्ठी के पास, अपनी

टिनमिनी जलाये आलू बोंडे, भजिया–समोसा, तेज मिर्च वाला चिऊड़ा सजाने लगता। लोग दारू खरीद लाते फिर अपने–अपने झुंड बनाकर बैठ जाते और दारू गटकने लगते। दारू के हलक के नीचे उतरते ही कच्चा चिठ्ठा खुलने लग जाता। कभी–कभी किसी छिनाल की बात, तो कभी झगड़ा–फसाद की बात हवा में तैरने लगती। सभी बातों में मगन रहते।''[19] आदिवासी एवं गैर आदिवासी लेखन में साफ–साफ फर्क देखा जा सकता है, आदिवासी जीवन गैर आदिवासी साहित्यकार के लिए केवल नशा करने वाला ही है, महुआ उनके जीवन में केवल नशा ही देता है। विकसित समाज में या मुख्य धारा के समाज में पीपल के वृक्ष को पूजा जाता है जबकि आदिवासी समाज भी उस वृक्ष को अपने जीवन में संजोये हुए है, आदिवासी कथाकार मंगल सिंह मुंडा ने अपने उपन्यास 'छैला सन्दु' की स्त्री पात्र मादे जब चुड़ता से कहती है कि ''ये चुड़ता, केवल पानी पीकर पेट न भरना। आज तेरे लिये घरवाले बजरे की रोटी तथा पीपल की फुनगी की चटनी भेजी है। ले खा ले जब पानी पीना।''[20] कहने का अर्थ यह है कि जंगल में पाये जाने वाले हर वृक्ष का उनके जीवन में महत्व है। जंगल में रहते हैं। निवास करते हैं पर उनके जीवन में बर्बरता का कोई स्थान नहीं है। नहक ही हम उन्हें असभ्य जंगली कहते हैं। आदिवासी जीवन में कितना अपनापन है कितनी नैर्सगिकता है कुछ भी बनावटी नहीं है सब कुछ निश्छल भाव से है, उनके जीवन में हर एक वृक्ष का अपना स्थान है।

इसलिए आदिवासी रचनाकारों की रचनाओं में आप देख पायेगें कि उनके पात्र में किसी भी तरह की चालाकियाँ नहीं हैं। इतने वर्शों से छले जाने के बाद भी उनके साहित्य रचना संसार में छल–कपट नहीं मिलेगा। आदिवासी कहानियों एवं उपन्यासों में जो जीवन दर्शन है वह रचाव और बचाव का दर्शन है और जो गैर आदिवासी साहित्य है उसमें स्वार्थ एवं एकात्मवादी दर्शन ही प्रमुख है जैसे–प्रेमचन्द जो हिन्दी कथा साहित्य के सम्राट कहे जाते हैं उनकी कहानी 'मंत्र' और 'मुक्ति' दोनों ही स्वार्थ और सामाजिक और आर्थिक दृष्टियों से ही मनुष्यता को खत्म करती है। हम कह सकते हैं कि जो गैर आदिवासी साहित्य का दर्शन है व तोड़–फोड़ देने एवं नष्ट कर देने का दर्शन है। एक वैमनष्य का भाव पूरे गैर आदिवासी लेखन में पाते हैं, परन्तु आदिवासी दर्शन में रचाव, सहभाव, बचाव का दर्शन है। विध्वंश का दर्शन नहीं। आदिवासी दर्शन सृजन का भाव रखता है। वह स्वयं बना रहना चाहता है और बनाये रखना चाहता है पूरी दुनिया को। आदिवासी उपन्यास 'भूलनकांदा' में मनुष्य जीवन को कैसे बचाया जाये यह भावना मुखरित होकर आयी है कि मानव जीवन को कैसे बचाया जाये वह भी एक ऐसा आदमी जिसका कोई नहीं है उसे पूरा समुदाय लग जाता है कि उसका जीवन बचाया जाये जो होना है वह हो गया परन्तु जो है उसे कैसे बचाया जाये। ''एक सियान ने धीरे से कहा कि जाने वाला तो चला गया, पर अब जो इस दुनिया में है उनका हंतिजाम क्या है यह देखना है, गलती तो हुई है, भले ही जानबूझ कर नहीं की है भकला ने। उसकी सज़ा और जिम्मेदारी जो समाज तय कर दे वह भकला पूरी करे, पर वह जेल गया तो उसके दो छोटे–छोटे बच्चे हैं उनका क्या होगा।''[21]

इस कथा में आदिवासी जीवन दर्शन को देखा जा सकता है कथाकार संजीव बख्शी ने जो अभिव्यक्ति की है उससे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य को कैसे बचाया जाये और साथ ही सामाजिकता भी न टूटे। आदिवासी समाज में किसी भी प्रकार की खुशी छोटी या बड़ी हो पर्व उत्सव या त्योहार हो उसे बड़े हर्शोउल्लास के साथ समूह में मनाते हैं। सामान्य दिनों में भी मनोरंजन की दृष्टि से होता रहता है। छोटे–छोटे कामों को भी व बड़ी उत्सुकता के साथ किया करते हैं किसी भी प्रकार का कार्य पूरा हो जाने पर उसका परिश्रमिक आपस में मिलकर

बराबर बाँट लेते हैं। इसका एक सच्चा उदाहरण देखने को मिलता है जब शिकार करने समूह में जाते हैं तो यदि एक बच्चा भी शिकार पर जाता है तो उसका भी भाग लगता है जितना वयस्क का। ऐसा इसलिए किया करते हैं कि कल जब यह बच्चा बड़ा हो जायेगा तो इस परम्परा का निर्वहन करेगा अब इसमें इनकी दार्शनिकता यह है कि जीवन का मूल्य व्यक्ति और समूह को बचाना है। आदिवासी जीवन दर्शन में श्रेष्ठता नहीं है बल्कि श्रेष्ठता का जीवन मूल्य है। इस श्रेष्ठता के जीवन मूल्य में समानता, सामूहिकता, सहअस्तित्व का भाव है। इनका जीवन प्रकृति के नजदीक होने के कारण ही सहअस्तित्व के भावों को समेटे हुए है। पूरी दुनिया की भौतिकतावादी व्यवस्था ने अतिशय लाभ के लिए पूरे मानव को खतरे में डाल दिया है। ऐसे में हमें एक ऐसे जीवन दर्शन की आवश्यकता है जिसमें जीवन मूल्य एवं संस्कृति ही सर्वोच्च हो, सरलता, सहजीविता, आदिवासियों का जीवन मूल्य है। झूठ, लोभ, प्रपंच का तनिक भी इनके जीवन में स्थान नहीं है। स्वाभिमान, इमानदारी, निष्कपट का भाव इनमें कूट–कूट कर भरा हुआ है। आदिवासी समाज की जीवन सरलता को अभिव्यक्त करते हुए अपने उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में आदिवासी लेखिका महुआ माजी जो आदित्यश्री नामक पात्र है के माध्यम से कहती हैं कि ''देखा, कितना सहज, सरल और स्वच्छंद जीवन है इनका। तूम जैसे अत्याधुनिक लोग डिस्को या पब में जाकर नाचते हो और ये प्रकृति की गोद में। एक तरफ कृत्रिमता है दूसरी तरफ सहजता। लेकिन तुम डिस्को, क्लब या पब में नाचने वाले पता नहीं अपने आप को ज्यादा संस्कारी और ज्यादा भाग्यशाली मानते हो।''[22] आदिवासी समाज के जीवन दर्शन का आधार प्रकृति है। क्योंकि प्रकृति ही मानव जीवन का आधार है। यह सम्पूर्ण पृथ्वी प्रकृति का सुन्दर उदाहरण है। जिसकी सुन्दरता को बचाने के लिए आदिवासी समाज हर यथा संभव प्रयास करता है। आदिवासी समाज का जीवन दर्शन साथ–साथ चलने एक दूसरे की मद्द करने में दिखाई देता है, संयुक्त परिवार में रहकर जीवन को जीना और अपने वैवाहिक जीवन को सुखी बनाना जीवनभर प्रकृति के लिए समर्पित रहना इनके जीवन दर्शन का परिचायक है। यह जंगल को अपने पूर्वज मानते हैं पेड़ पौधों को अपने पुत्र के समान समझते हैं। पशु–पक्षियों में भाई–बन्धु की भावना का दर्शन करते हैं। इस तरह की जीवन दृष्टि सिर्फ आदिवासी समाज में ही मिलती है। आदिवासी समाज के दर्शन की जो अवधारणा है चाहे प्रत्येक व्यक्ति के सम्मान की रक्षा करना व्यक्ति के विकास में सहायता करना और जितना व्यक्ति के विकास में उचित हो ऐसे मार्ग को बनाना, प्रकृति का उतना ही दोहन करना जितना की व्यक्ति के लिए आवश्यक है। आदिवासी का जीवन दर्शन सुख दुःख में समान भाव से रहते हुए अपने कार्यो को पूर्ण करना है।

जीवन संस्कार–आदिम सहकार की आशक्ति आदिवासी समाज के जीवन संस्कार में रीति–रिवाजों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है उनके यहाँ तंत्र–मंत्र आदि में विश्वास किया जाता है। इसके साथ–साथ कलात्मक अभिव्यक्ति मिथक आदि की संस्कृति का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इनके संस्कार का एक सन्दर्भ 'काला पादरी' उपन्यास में तेजिन्दर लिखते हैं कि ''फसल कटने के बाद एक निश्चित दिन के वर्ष के सभी मृतकों के अवशेष पात्र पेड़ पर से उतारे जाते हैं। फिर उन्हें सजाया जाता है और एक समारोह में गाते बजाते हुए उन्हें कुन्डी तक जे जाया जाता है। कुंडी यानी कि उरांव कुलों या पुश्तों के स्मरण पत्थर।''[23] उराँव आदिवासी समाज में इस विधि विधान की कोई भी सीमा नहीं है जिस उराँव की मृत्यु असमय हो जाती है उसके लिए यह विधि नहीं किया जाता है। जैसे मृत्यु का कारण कोई दुर्घटना या हत्या हो। उनके यहाँ बहुपत्नी एवं बहुपत्तिव के संस्कार पाये जाते हैं इसके साथ–साथ कई वैवाहिक संस्कारों का विधान है। वह अपनी मूल संस्कृति से आज भी जुड़े

हुए हैं। उनके यहाँ एकता की भावना बहुत ही प्रबल रूप में दिखाई देती है।

कथाकार रणेन्द्र ने ग्लोबल गाँव के देवता में एकता को लेकर लिखते हैं कि ''अम्बाटोली की बैठक में सारे पाट के हर गाँव के बड़े–बुर्जुग, बैगा– पाहना, पूजार–महतो सब जुटे। पुरानी माँगों के साथ–साथ एक नया नारा जुड़ा 'जान देंगे– ज़मीन नहीं देंगे।''[24] जब आदिवासियों की ज़मीनें कम्पनियों द्वारा अधिग्रहण किया जा रहा था तो उसके विरोध में पूरे असुर समुदाय एकत्रित हो गये थे। पुलिस की गाड़ी जब उनके गाँव में आती तो गाँव के आदिवासी समुदाय के व्यक्ति उनका विरोध करने के लिए एकजूट होकर विरोध करते इसके संबंध में रणेन्द्र ने आगे भी लिखा है कि ''जैसे ही रात–बिरात कोई पुलिस की गाड़ी आती, रुककर वे चेक नाका खोलने लगते। सामने घर में नगाड़ा बजने लगता और दस मिनट में गाँव के सभी मर्द–औरत इकट्ठे हो जाते। जीप सामने यहाँ से वहाँ तक चुपचाप बैठ जाते। कोई–कोई हवलदार–दरोगा माँ–बहन की गाली–वाली देकर या बेतों से खोंच–खाँचकर उत्तेजित करने की कोशिश करता, किन्तु चुप और शान्त भीड़ के प्रतिरोध से लाचार होकर पुलिस को लौटना पड़ता।''[25] जिस प्रकार से आदिवासी समाज की एकता का चित्र रणेन्द्र ने लिखा है कुछ वैसे ही, आदिवासी समाज में एकता की भावना को अभिव्यक्ति करते हुए अपने उपन्यास 'भूलनकांदा' में कथाकार संजीव बख्शी लिखते हैं कि ''मड़ई में जाना हो तो पूरो गाँव एक साथ जाता है, जैसे किसी समारोह में जा रहे हैं। बारात में जाता है तो पूरा गाँव, यहाँ तक कि हफते के बाज़ार भी जाते हैं तब भी, क्योंकि जाते हैं एक साथ। अब भी पूरा गाँव एक साथ जा रहा है। वैसे ही दिख रहे थे सारे लोग।''[26] यह दृश्य तब है जब भकला से मिलने पूरे गाँव के लोग जाते हैं और अदालत से छुड़ा लाने के लिए कितना भोलापन और कितना अपनापन है। इस समाज में एक व्यक्ति को बचाने के लिए पूरा समाज तैयार हो गया है। यह दर्शन है आदिवासी समाज की सामूहिकता एवं जीवन को बचाने के लिए अपना समाज विखण्डित न होने पाये ऐसी एकता अखडता आदिवासी समाज दर्शन की खूबसूरती है।

संयुक्त परिवार को एक साथ व्यवस्थित ढंग से चलाना आदिम सहकार की भावना को प्रबल बनाता है। उनके जीवन संस्कार में दिखाई देता है आदिवासी लेखिका महुआ माजी अपने उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में आदिवासी समाज की सामूहिकता परिवार का चित्रण करती हुई लिखती हैं कि ''माघ के महीने में घर नए अनाज से भरा होता तो खाने–पीने की या खेत खलिहान में हाड़तोड़ मेहनत करने की भी कोई खास चिंता नहीं होती थी उन्हें। बस, रात–दिन मस्ती ही मस्ती करते रहते थे सब के सब। सिर्फ अखड़ा ही नहीं, गाँव का हर आंगन नृत्य संगीत से गूंजता रहता महीने भर। आसपास के गाँव में भी पर्व की धूम रहती। इस हफ्ते इस गाँव के लोग अपने यहाँ पर्व मनाते तो उस हफ्ते उस गाँव के लोग घूम–घूमकर मेहमान नवाजी चलती रहती आपस में। शादीशुदा बहनों के प्यार दुलार का भी यही समय होता। शायद ही कोई ऐसी बहन होती जिसको मागेः पोरोब में अपने मायके से न्यातौ नहीं मिला होता और वह सपरिवार नवान्न तथा नृत्य संगीत का आनंद उठाने मायके नहीं जाती। बहनों के बहाने अन्य रिश्तेदार भी त्यौहार का पूरा आनंद उठाते।''[27] आदिवासी अपने जीवन के हर एक क्षण में अपने भगवान की उपस्थिति को महसूस करता है। जब किसी आदिवासी महिला को बच्चा होने वाला हो अर्थात् गर्भवती हो तो महिला के मायके से उसके पिता या परिवार के किसी एक सदस्य को बुला लिया जाता है। ताकि जच्चा और बच्चा दोनों की देखभाल सही तरीके से हो सके और दोनों सही सलामत रहें। लगभग हर एक आदिवासी समुदाय के परिवार में एक नये सदस्य के अवतरण पर किसी न किसी

पशु–पक्षी की बलि दी जाती है। यही बलि बच्चे की सलामती और बुरी नजारों से उनके भगवान उसकी रक्षा करें जिससे वह दीर्घ आयु हो। बच्चे के जन्म लेने के आठवें दिन बाद विधिवत नामकरण किया जाता है। उनका जीवन समूह में है, खुसियाँ ढ़ँढने कहीं जाना नहीं पड़ता है परिवार के साथ ही रिश्ते नातेदार भी सम्मिलित हो जाते हैं यही आदिम सहकार जीवन की भावना आदिवासी जीवन को बचाये है जिस कारण ही उनके समाज का अनूठापन है। दुःख होता है, जब आज भी मुख्य धारा का लोग एकेडमिक संसार और बौद्धिक बहसों में कहते है कि आदिवासी संग्रह करता हैं प्रकृति का दोहन करता है। बहुत ही सहज से यह निर्णय कर देते है। सौ वर्ष बीत गये आप इसी धारणा पर लटके हुए हैं कि वे खाद्य एवं वनस्परियों को संग्रह करने वाला समाज है। आदिवासी जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा है प्रकृति, जिसे वह अपने साथ जीवित रखे हुए है। आदिवासियों ने खेती करने योग्य भूमि की व्यवस्था की। उन्होंने जीवन यापन के लिए सभी आवश्यक चीजों की व्यवस्था की एवं एक समृद्ध समाज का निर्माण किया।

एक प्रसंग आदिवासी जीवन और उसका प्रकृति का ज्ञान पर आदिवासी लेखिका महुआ माजी लिखती हैं, ''अपने उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में कि ''जंगल के उस पेड़ से हम ऐसा तेल बना सकते हैं जिससे बिना दर्द के, बिना खून गिराए लोगों के कीड़े लगे हुए सड़े गले दांतों को आसानी से हम निकाल सकेंगे।''[28] आदिम जन अपने इन्हीं प्राकृतिक विशेषताओं के कारण ही समाज के मुख्य धारा से कटा हुआ है। वह मानता है कि प्रकृति के बिना मानव जीवन की संकल्पना ही नहीं की जा सकती हैं। सहजीविता ही उनकी जीवन पद्धति है। उनके यहाँ प्रकृति बोध के साथ–साथ जीवन बोध दर्शन उनके जीवन संस्कार में दिखाई देता है। 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, उपन्यास मे जब जाम्बीरा जंगल में जड़ी बूटी वाले पेड़ की तलाश में जंगल में घूम रहा होता है तो उसका पैर पत्थर से टकरा कर टूट जाता है तो अपने उपन्यास में आदिवासी जीवन बोध को दर्शाते हुए महुआ माजी लिखती हैं कि ''साथ आए लोगों की मद्द से कुबिराज (वैद्य) उसे अपने झोपड़ी में ले गया। हड्डी जोड़ने में माहिर था वह। यात्रा आरम्भ करने से पहले ही टूटे पाँव की हड्डी को उसके सही स्थान पर बैठाकर चीरे हुए बांस के टुकड़ों से सहारा देकर अच्छी तरह से बांध दिया था। झोपड़ी में पहुंचते ही उपचार शुरू हो गया। चटपटिया घास और पलाश की छाल का रस निकालकर जल्दी–जल्दी लेप बनाया और टूटी हड्डी को जोड़ने के लिए पैर पर लगाकर बांध दिया हड्डी के ऊपर के जख्मी मांस को जोड़ने के लिए तोगोज का उपयोग किया गया था।''[29] आदिवासी समाज के धर्म दर्शन में प्रकृति ही सब कुछ है। प्रकृति की गोद में ही इनकी धार्मिकता और चिकित्सा व आध्यात्मिकता बसी हुई है। आदिवासियों ने चाहे जितने अलग–अलग अपने ईश्वर का नामकरण किया हों परन्तु सभी आदिवासी समुदाय का विश्वास यही है कि प्रकृति ही सर्वोपरि है। ये भले ही सखुआ, साल आदि के पेड़ के नीचे पूजा करते हैं परन्तु यह अर्थ नहीं है कि ये पेड़ की पूजा अर्चना करते हैं ये मानते हैं कि सिंबोंगा पेड़ों पर निवास करता है। आदिम जन अन्य जीवों की उपासना नहीं करते लेकिन उनके प्रति श्रद्धा जरूर रखते हैं। घोटुल, पत्थलगढ़ी, सरहुल जैसे संस्कार उनके जीवन के आधार को और उनके आदिम सहकार को बहुत ही सूक्ष्म रूप से चित्रित करती है।

आदिवासी जीवन उत्सव के विविध आयाम आदिवसी समाज में जीवन उत्सव के विविध घटकों को देखा जा सकता है। जिसमें उनके जीवन दर्शन का बोध स्पश्ट रूप से परिलक्षित होता है। वह जीवन को आनन्द से जीते हैं और प्रकृति के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। वह प्रत्येक रंगोत्सव, त्योहार को जीवन का उत्सव मानते

हैं। खेत, विवाह, मरण आदि को वह एक उत्सव के समान मनाते हैं। जिसमें लोक एकत्रित होकर के प्रभु का आभार व्यक्त करते हैं नृत्य करते हुए लोक में डूबकर अपने जीवन को आनन्दमय बनाते हैं उनके यहाँ प्रकृति पूजा, पेड़ों की पूजा, धरती पूजा, कृशि पूजा, जानवरों की पूजा, ग्राम देवता पूजा, गृह पूजा आदि विविध उत्सव होते हैं, जो उनके जीवन के विविध अवयवों को प्रदर्शित करते हैं।

आदिवासी बाल जीवन का प्रदर्शित करते हुए रोज केरकेट्टा अपनी कहानी 'फिक्सड डिपोजिट' में लिखतीं हैं, ''चोगोटोली के पास मालामाड़ा नदी में घुटने भर पानी में। बच्चों की गरमी छुट्टी हो गई थी। इसलिए नदी में जगह–जगह नदी के पानी को बाँधकर बच्चे छोटी मछलियाँ पकड़ रहे थे। चोगोटोली, मैनाबेड़ा, सिकरियाटांड़, नदी टोली लगभग सारे गाँव के बच्चे मछली कम पकड़ रहे थे, अठखेलियाँ ज्यादा कर रहे थे''30 आदिवासी जीवन इन्हीं नदी, पहाड़ों पर निर्भर है। इन्हीं की गोद में खेलते खाते बड़े होते हैं। उनके जीवन में पूरा समूह एक साथ रहता है। देखिये पूरे गाँव के बच्चे एक साथ तालाब में मछलियाँ पकड़ रहें हैं यह उनकी सामूहिकता को प्रदर्शित करता जो उन्हें बचपन से विरासत में मिलता है। यही आदिवासी दर्शन की एक मुख्य विशेषता है कि सभी कार्य वह समूह में ही करते हैं। आदिवासी कथाकार महुआ माजी ने अपने उपन्यास 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' में जो प्रज्ञा नामक पात्र है वह स्वयं महुआ माजी ही हैं और आदिवासी उत्सव को चित्रित करती हुई कहती हैं कि ''सड़क किनारे एक चट्टान से होते हुए एक पहाड़ी नदी बह रही थी। नदी के पास ही एक छोटा सा मंदिर था। रंग बिरंगे कपड़ों में ढेर सारे औरत मर्द बच्चे नजर बा रहे थे मंदिर के इर्द–गिर्द। मंदिर की तरफ से किसी वाद्य की आवाज आ रही थी–डुडुम्–डुडुम्–डुडुम् ताड़, डुडुम्–डुडुम्–डुडुम् ताड़ जैसी, फिर अपने साथ के एक व्यक्ति से मैंने पूछा, यह कैसी आवाज है? उन्होंने कहा, 'नगाड़े की आवाज लगती है। पास ही कहीं कोई मेला वेला होगा। वहीं नाच रहे होंगे स्थानीय आदिवासी।''[31] आदिवासी जीवन में कितना कुछ नैसर्गिक है एक नगाड़े की आवाज और पूरा का पूरा आदिवासी समाज एकत्रित हो जाता है चाहे त्योहार हो या किसी का विरोध करना है बस नगाड़े बजते ही एक जुट हो जाते हैं। इनके जीवन में जो कुछ है जितना है उसी में ये मस्त रहते हैं। इनके मस्तमौला पन को व्याख्यायित करते हुए लेखिका महुआ माजी ने उपन्यास 'मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ' में लिखती हैं कि ''यहाँ के ज्यादातर लोग मस्तमौला प्रकृति के होते हैं। अपनी मर्जी के मालिक। स्वभाव से किसी की गुलामी पसंद नहीं करते। किसी दबाव, किसी बंधन में काम नहीं कर सकते। बहुत ज्यादा की चाहत भी नहीं है इनके मन में। जब मन हुआ काम गये, नहीं हुआ नहीं गये, चिंतारहित उन्मुक्त जीवन जीना पसंद है इनको। अत्यंत सीमित संसाधनों से ही सुखमय जीवन जीने की कला जानते हैं ये। इनके सुख की अवधारणा बिल्कुल अलग है। हम सबसे अलग''[32] यह साधारण सी बात हम सबको समझनी पड़ेगी। आदिवासी और गैरआदिवासी समाज दोनों का भगवान एक ही है। यदि गैर आदिवासी यह मानता है कि वह अपनी मर्जी के अनुसार आदिवासियों के ज़मीन का मालिक बन सकता हैं और इस पृथ्वी के भगवान बन सकते हैं तो यह उनकी भूल है। इस प्रकृति का कोई मालिक नहीं बन सकता। यह प्रकृति ही सभी मानव जातियों का नियंता हैं। आदिवासी दर्शन को अभिव्यक्त करते हुए आदिवासी लेखिका महुआ माजी ने अपने उपन्यास 'मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ' में लिखती हैं ''यदि हम अपनी धरती, मानव सभ्यता, संस्कृति की रक्षा करना चाहते हैं तो हमें ऊर्जा की खपत कम करनी ही होगी। अपनी आवश्यकताओं को सीमित करना ही होगा। स्वामी विवेकानन्द से किसी ने पूछा था–जहर क्या है? तो उन्होंने कहा–जीवन में जो कुछ भी जरूरत से ज्यादा है,

जहर है।''[33]

निष्कर्ष :-

उपर्युक्त विवरणों एवं साक्ष्यों के अनुशीलन के पश्चात निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि आदिवासी कथा–साहित्य में आदिवासी जीवन दृष्टि खान–पान, रहन–सहन, संस्कृति, सांस्कृतिक जनजीवन, वैवाहिक परम्परा, व्रत, त्योहार और उनके उनके जीवन जीने की कला को बहुत ही सूक्ष्मदृष्टि से कथाकारों ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में उसे चित्रित किया है। इतना ही नहीं बल्कि उनके जीवन में पहाड़, जंगल, जल, ज़मीन, पेड़–पौधे, फल–फूल आदि का कितना महत्व है और उनके पहाड़ और जंगल को कथाकारों ने अपनी कथाओं में वर्णित किया है। आदिवासी तथा गैरआदिवासी कथाकारों की कथाओं में आदिवासी जीवन दृष्टि की भिन्नता देखी जा सकती है क्योंकि जो आदिवासी कथाकार हैं वह अपना भोगा हुआ यथार्थ लिखता है और जो गैरआदिवासी कथाकार है वह परानुभूति के आधार पर आदिवासी समाज का वर्णन अपनी कथाओं में करता है इसके बावजूद हम यह कह सकते हैं कि आदिवासी तथा गैर–आदिवासी ने अपनी कथाओं में आदिवासी के जीवन दृष्टि को बहुत ही सुक्ष्म एवं सुव्यवस्थित ढंग से उकेरा है। आदिवासी समाज का जीवन सामूहिकता और नैसर्गिकता पर खड़ा है, वह मानवता को बचाना चाहता है। उनके जीवन में जो कुछ भी है, उसे वह प्रकृति को वैसे ही वापस करना चाहता है।

संदर्भ :-

1. माजी, महुआ, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, संस्करण 2012, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ0 113
2. तेजिन्दर, काला पादरी, प्रथम संस्करण 2016, साहित्य भंडार इलाहाबाद, पृ0 57
3. यालाम, जोराम, जंगली फूल, पृ0 34
4. माजी, महुआ, मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ, पृ0 113–316
5. बख्शी, संजीव, भूलनकांदा, अंतिका प्रकाशन गाजियाबाद उ0प्र0, पहला सजिल्द संस्करण 2012, पृ0 21
6. सिंह, मंगल मुड़ा, छैला सन्दु, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2004, पृ0 244
7. माजी, महुआ, मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ, संस्करण फरवरी 2012, राजकमल प्रा0लि0 नई दिल्ली, पृष्ठ 344
8. मीणा, हरिराम, आदिवासी दर्शन और समाज, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, प्रथम संस्करण 2020, पृ 30
9. मीणा, केदार प्रसाद, आदिवासी कथा जगत (कहानी संग्रह), अनुज्ञा बुक्स, शाहदरा दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018, पृ0 83
10. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, पृष्ठ 22
11. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, पृ. 23
12. तेजिंदर, काला पादरी, साहित्य भण्डार 50, शाहचंद, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2016, पृ0 49
13. वही, पृ0 51
14. वही, पृ0 51
15. सिंह, मंगल मुड़ा, छैला सन्दु, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2004, पृ0 44
16. माजी, महुआ, मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ, संस्करण फरवरी 2012, राजकमल प्रा0लि0 नई दिल्ली, पृ0 278
17. माजी, महुआ, मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ, संस्करण फरवरी 2012, राजकमल प्रा0लि0 नई दिल्ली, पृ0 316

18. माजी, महुआ, मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ, संस्करण फरवरी 2012, राजकमल प्रा0लि0 नई दिल्ली, पृ0 316
19. मीणा, केदार प्रसाद, आदिवासी कथा जगत (कहानी संग्रह), अनुज्ञा बुक्स, शाहदरा दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018, पृ0 217
20. सिंह, मंगल मुड़ा, छैला सन्दु, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2004, पृ0 44
21. तेजिंदर, काला पादरी, साहित्य भण्डार 50, शाहचंद, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2016, पृ0 89
22. माजी, महुआ, मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ, संस्करण फरवरी 2012, राजकमल प्रा0लि0 नई दिल्ली, पृ0 279
23. तेजिंदर, काला पादरी, साहित्य भण्डार 50, शाहचंद, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2016, पृ0 89
24. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली, पृ0 80
25. वही, पृ0 81।
26. बख्शी, संजीव, भूलनकांदा, अंतिका प्रकाशन गाजियाबाद उ0प्र0, पहला सजिल्द संस्करण 2012, पृ0 64
27. माजी, महुआ, मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ, संस्करण फरवरी 2012, राजकमल प्रा0लि0 नई दिल्ली, पृ0 93
28. वही, पृ0 70
29. वही, पृ0 72
30. टेटे, वंदना, लोकप्रिय आदिवासी कहानियाँ (कहानी संग्रह), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृ0 77
31. माजी, महुआ, मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ, संस्करण फरवरी 2012, राजकमल प्रा0लि0 नई दिल्ली, पृ0 276
32. वही, पृ0 292
33. वही, पृ0 346

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 89-92

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संस्कृति के उद्‌भव और विकास

Sabana Rahman

Assistant Professor (Santali), Mahatma Gandhi College (Purulia) West Bengal

संस्कृति के उद्‌भव और विकास के सन्दर्भ में श्यामचरण दूबे में अपनी पुस्तक ''मानव और संस्कृति'' में मानव और पर्यावरण पर अन्तर सम्बन्ध विशेष रूप में प्रकाश डाला है।

श्यामचरण दुबे के अनुसार – ''मानव के जीवन और संस्कृति के प्रायः प्रत्येक पक्ष में प्रकृति और पर्यावरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। मानव और प्रकृति के पारस्परिक सम्बन्धों के जो मानव वैज्ञानिक तथा समाज वैज्ञानिक अध्ययन हुए हैं। उनसे यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो चुका है, कि समान प्राकृतिक परिस्थितियों और वातावरण मे रहने वाले मानव समुदायों में भी अनेक मूलभूत संस्कृति भिन्नताएँ हैं। भौगोलिक और प्राकृतिक परिस्थितियों का प्रभाव मनुष्य के सांस्कृतिक जीवन पर भी पड़ता है।

डॉ० दिनेश्वर प्रसाद द्वारा उनकी पुस्तक ''लोक साहित्य और संस्कृति'' में संस्कृति के उद्‌भव, विकास एवं विस्तार पर विस्तार से चर्चा की गई है, डॉ० प्रसाद के अनुसार ''मनुष्य संस्कृति, निर्माता प्राणी है।''

क्योंकि संस्कृति उसकी अपनी निजी उपलब्धि है और जिसमें किसी दूसरे जीव जाति की साझीदारी नहीं है। जैवी अनुवांशिकता के आधार पर संस्कृति की व्याख्या नहीं की जा सकती।'' क्योंकि यह आनुवंशिकता न होकर अर्जित है।'

क्रोबर के अनुसार – ''अनुवंशिकता चीटी के लिए पीढ़ी दर पीढ़ी वह सब सुरक्षित रखती है, जो कि उसे प्राप्त है। लेकिन अनुवंशिकता सभ्यता के एक कण, एक विशिष्ट मानव प्राणी, को भी कायम नहीं रखती और न रख सकती है, क्योंकि यह कायम नहीं रख सकती है।

टी०एस० इलियट के अनुसार – शिष्ट, व्यवहार, ज्ञानार्जन, कलाओं का सेवन आदि के अतिरिक्त किसी जाति अथवा राष्ट्र की ये समस्त क्रियाएँ, वे कार्य जो उसे विशिष्ट बनाते हैं, उसकी संस्कृति के अंग है।

कार्लमार्क्स और उनके अनुयायी संस्कृति को वर्ग मानते हैं, और कुछ अंश तक संस्कृति को प्रगति से सम्बन्ध करते हैं।

मैलिनीस्वकी के अनुसार – ''संस्कृति प्राप्त आवश्यकताओं की एक व्यवस्था तथा उद्देश्यमूलक क्रियाओं की एक संगठित व्यवस्था है।

टायलर का मत है – कि ''यह वह जटिल इकाई है, जिसके अन्तर्गत ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, विधि, रीति रिवाज, और अन्य क्षमताएँ और अभ्यास सम्मिलित है जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में अर्जित करता है।

मैलिनोवस्की के अनुसार – ''संस्कृति के अनुसार वंशगत, शिल्प तथ्यों, वस्तुओं, तकनिकी प्रक्रियाओं, धारणाओं, अभ्यासों तथा मूल्यों का समावेश हो जाता है। (इन्साइक्लोपीडीय ऑफ सोशल साइन्सेज 1931)

संस्कृति मनुष्य की वह रचना है, जिसमें मानव की सृजनात्मक शक्ति और योग्यता का चरम निहित है। संस्कृति में मनुष्य समाज के इतिहास को विकास कड़ियों के सुत्र दर्ज है। संस्कृति जीवन और उनकी क्रिया प्रतिक्रियाओं का संचय है। संस्कृति में मनुष्य की बाह्य और आन्तरिक सामग्रियों की उपयोगिता की संकल्पनाएँ समाहित है। संस्कृति में मनुष्य की नियन्ता और उपभोग्या भी है।

संस्कृति वह जीवनशैली है। जिसे मनुष्य पूर्वजों से ग्रहण करता आया है। संस्कृति मनुष्य को जीवन जीने को एक उच्च भावभूमि प्रदान करती है। प्रत्येक जनगण की संस्कृति अलग अलग होने के कारण मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति का अलग अलग ढंग, प्राकृतिक पर्यावरण और सामाजिक मान्यताओं के विकसित ढांचे पर निर्भर होना है।

संस्कृति का स्वरूप :-

डॉ० दिनेश्वर प्रसाद के अनुसार संस्कृति का स्वरूप के बारे में परिभाषित हैं कि ''मनुष्य संस्कृति निर्माता प्राणी है। यह परिभाषा उसके सम्बन्ध में प्रचलित कई परिभाषाओं में अधिक संगत है। क्योंकि संस्कृति उसकी निजी उपलब्धि है, एक वैसा विशेषता जिसमें किसी दूसरी जीवनजाति की साझेदारी नहीं है। इसका कारण यह है कि संस्कृति की व्याख्या न तो केवल जैविकता के आधार पर की जा सकती है और न केवल सामाजिकता के आधार पर।

हॉवल के अनुसार – संस्कृति एक मानवीय घटना है समस्त प्राणियों में ही एक ऐसा प्राणी है जो संस्कति का निर्माण करने और उसे बनाये रखने की क्षमता रखता है।

यस्टाफ ब्लेम (1802–67) द्वारा पहली बार प्रयुक्त संस्कृति शब्द के अभिप्राय को गठित कर आज के सामाजिक विज्ञापनों को एक नयी संकल्पना दी है, अपनी पुस्तकों में कहीं ''संस्कृति'' कहीं सभ्यता और कहीं संस्कृति या सभ्यता जैसे प्रयोग करता है। किन्तु आगे चल कर मानवविज्ञान, दर्शनशास्त्र आदि में इनके पार्थकय की संस्कृति पर बल दिया जाने लगता है। सामान्य व्यवहार में और कभी–कभी उच्चतर ज्ञान के क्षेत्र में लेखकों द्वारा अपनाये गये दृष्टिकोण के कारण, इनका एक–दूसरे के पर्यायवाची के रूप में प्रयोग बना हुआ है।

संस्कृति सामाजिक मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकता है। इसी साधन के द्वारा वह परिवेश के साथ अपना समायोजन करता है। उसके द्वारा अपनी संस्कृति को अर्जित करने की आजीवन चलती रहती है। लेकिन जीवन के आरम्भ से ही अपने को 'संस्कृति विशेष' में पाने के कारण वह शायद ही इसे अपने ऊपर आरोपित अनुभव करता है। संस्कृति विभिन्न पक्षों यथा–धर्म, भाषा, संगीत, अर्थव्यवस्था परिवार, आदिम विभाजित रहती है। लेकिन ये सभी परस्पर संबंध और सकेन्द्रित होते हैं।

अशोक सिंह के अनुसार –जहाँ तक, इस क्षेत्र की प्रमुख जनजाति संताल आदिवासी समाज एवं उसकी संस्कृति का है, तो सामान्य तौर पर हम यह जानते हैं कि किसी भी जाति के लोगों के रहने जो एक प्रकार का तरीका होता है, वही उसकी अपनी संस्कृति होती है।

संस्कृति का समाज से अभिन्न सम्बन्ध है। संस्कृति के बिना न तो समाज सम्भव है और न समाज के बिना संस्कृति हो सकता है।

समाज जिस प्रकार मनुष्य जगत को एकमात्र संगठन है, संस्कृति भी उसी प्रकार मनुष्य के विशेष उपज है। संस्कृति का निर्माण समाज में होता है। इसी प्रकार संस्कृति द्वारा समाज का निर्माण होता है।

जनजातीय संस्कृति का स्वरूप :-

जनजातीय संस्कृति के बारे में डॉ० आदित्य प्रसाद सिन्हा ने अपनी पुस्तक ''झारखण्ड की जनजातीय लोक संस्कृति एवं पर्व त्योहार एवं देवी–देवता'' पुस्तक में लिखते हैं कि – जनजाति संस्कृति में – 1. पुरातनता 2. आध्यात्मिकता 3. दार्शनिक तत्व 4. देव परायनता 5. एकीकरण 6. सर्वे सुखिनः सन्तु का सिद्धान्त है।

डॉ० नर्मदेश्वर प्रसाद ने अपनी पुस्तक ''भारतीय समाज में जनजातियों'' में यह विचार व्यक्त किया है कि ''प्रत्येक संस्कृति की परम्परा होती है।''

यही कारण है कि आज भी संस्कृतियों के मूल रूपों का पता लगाया जा सकता है।

कुछ लोगों ने जनजातियों की अन्य नागरिक समूहों से उनकी निकटता या दूरी की उनकी संस्कृति के निम्न या उच्च होने का मुख्य कारण बताया है। सांस्कृतिक आधार पर उन्होंने जनजातियों का निम्न प्रकार वर्गीकरण किया है –

1. शुद्ध आदिम जनजातियाँ
2. ऐसी आदिम जनजातियाँ जिनकी संस्कृति पर बाहरी प्रभाव पढ़ चुका है।
3. ऐसी आदिम जनजातियाँ जो पूर्ण रूप से दूसरी जातियों से मिल चुकी है।

झारखण्डी संस्कृति पर डॉ० रामदयाल मुण्डा का भी यह मानना है कि 'झारखण्डी संस्कृति की पहचान का आधार यहाँ की आदिवासी संस्कृति की विरासत है। हम यह मानकर चलता है कि यहाँ का गौर आदिवासी भी उसके आदिवासीपन के कारण ही झारखण्डी है।

साहित्यकार विद्याभूषण के अनुसार : ''इस प्रकार समग्र झारखण्डी संस्कृति के बारे में यह धारणा बनती है कि वह प्रथमतः जनजातीय प्रभुत्व की संस्कृति है। जिसे सदानी जातियों ने भी प्रभावित–पुष्ट किया है। समान भौतिक परिवेश ऐतिहासिक विरासत और सदियों की सहयात्रा से जो सामाजिक संस्कृति विकसित हुई है, वह झारखण्ड की भौगोलिक सीमाओं के बाहर की मैदानी संस्कृति से अलग है।

मानव संस्कृति का उद्‌भव और विकास :-

प्रो० गया पाण्डेय अपनी पुस्तक ''जैविक सांस्कृतिक उद्‌विकास' में लिखे हैं – ''मानव अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ तथा उद्‌विकसित प्राणी इसलिए भी है क्योंकि वह संस्कृति का निर्माता है।

भारत के पास संस्कृति पायी जाती है, जब कि अन्य प्राणी पशुओं के पास संस्कृति नहीं पायी जाती है। इस प्रकार मानव की विशेषता में हम पाते हैं कि वह एक जैविक प्राणी के साथ–साथ सांस्कृतिक प्राणी भी है। अतः मानव उद्‌विकास के साथ जैविक तथा सांस्कृतिक उद्‌विकास से जुड़ा हुआ है।

मानव के जैविक प्राणी है, साथ ही साथ वह एक सांस्कृतिक प्राणी भी है। अतः मानव की जैविक उद्‌विकास एवं सांस्कृकि उद्‌विकास भी घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। मानव को सांस्कृतिक प्राणी बनाने के लिए मानव का जैविक उद्‌विकास उत्तरदायी रहा है। जैविक रूप से मनुष्य के शरीर में कुछ ऐसे परिवर्त्तन हुए हैं जिनके कारण मानव संस्कृति का निर्माता बन सका है।

डॉ० धर्मवीर महाजन और डॉ० कमलेश महाजन ने अपनी पुस्तक ''जनजातीय शास्त्र में डी०एम०

मजुमदार द्वारा प्रस्तुत जनजातियों में प्रमुख सांस्कृतिक विविधता को दर्शाया है। जो झारखण्ड की जनजातियों के लिए भी प्रासंगिक है। श्री मजुमदार से सांस्कृतिक विविधता के निम्नांकित बिन्दुओं को जनजातीय सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है :

1. **जनसंख्या में विविधता :–**
   (1) अधिसंख्यक (2) अल्पसंख्यक
2. **संगठन की विविधता :–**
   (1) जटिल सांगठनिक व्यवस्था, आदिम युग
   (2) आधुनिक सांगठनिक
3. **पारिवारिक विविधता :–**
   (1) पितृसत्तात्मक (2) मातृसत्तात्मक
4. **धार्मिक विविधता :–**
   (1) मूर्ति पूजक (2) प्रकृति पूजक

मनुष्य की सामाजिक पृष्ठभूमि उसके व्यक्तित्व का निर्माण करती है। इसी कारण विभिन्न प्रकार की संस्कृति तथा सामाजिक पृष्ठभूमि में व्यक्तित्व के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। व्यक्तित्व से तात्पर्य मनुष्य की उस विशेषता से है जिसके आधार पर उसे अन्य लोगों से पृथक किया जा सकता है। शारीरिक भिन्नता के साथ–साथ प्रत्येक मनुष्य के व्यवहार, बुद्धि और विचार की भिन्नता होती है। इन सभी भिन्नताओं का मूल कारण मनुष्य का वह समाज है जिनमें वह जीवन व्यतीत करता है।

डॉ० बी० वीरोत्तम ने अपनी पुस्तक ''झारखण्ड इतिहास एवं संस्कृति'' में झारखण्ड की जनजातीय संस्कृति को विशेष रूप से प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार ''भारतीय राष्ट्रीयता की आत्मा जिन, विभिन्न सामाजिक तत्वों के अतिरिक्त झारखण्ड में एक विशिष्ट तत्व है– ''जनजातीय''।

निष्कर्ष :–

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि झारखण्ड की संस्कृति में आस्ट्रिक, द्रविड़ एवं आर्य संस्कृतियों का मिश्रण संभावित है। जनजातीय संस्कृति में विविधता के जिन कारणों, तत्व का वर्णन प्रस्तुत किया गया है, झारखण्ड की जनजातीय संस्कृति के सन्दर्भ में पूर्ण रूप से प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. कुमार प्रवीण संताल संस्कृति : समाज और विरासत।
2. डॉ० गिरिधारी राम गौंझू झारखण्ड में मातृभाषा की भूमिका।
3. डॉ० सुरेश गौतम भारतीय लोक साहित्य कोश।
4. डॉ० सियाराम तिवारी भारतीय साहित्य की पहचान।
5. शेखर बालेन्दु तिवारी झारखण्ड का भाषा–परिवार।
6. मान्दि, बैद्यनाथ संताली लोक संस्कृति।

Address :
Sabana Rahman, c/o Ram Hembram,
Prem bazar hijli co-operative society,
Near old pump house, Pin-721306
M.No- 9749451921
jyotsnatudu127@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 93-96

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नागपुरी भाषा : उद्भव विकास तथा क्षेत्र

सौरभ आनंद बर्मन

वरिष्ठ शोधार्थी, नागपुरी भाषा विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची।

बहुभाषी राज्य झारखंड की नागपुरी एक प्रमुख नागपुरी आर्य भाषा परिवार की भाषा है। यह झारखंड की प्रायः सभी समुदायों की संपर्क भाषा के रूप में जानी जाती है। नागवंशी शासन काल में नागपुरी ' राजभाषा' के रूप में प्रयोग की जाती रही। नागपुरी को अन्य नाम सदानी सादरी गवरी नागपुरिया गवली के नाम से भी जाना जाता है।

उदभव –

नागपुरी भाषा के उदभव को लेकर अनेक विद्वानों ने भिन्न–भिन्न मत प्रकट किए हैं। सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'लिंग्विरिटिक सर्वे आफ इंडिया' में कहां है "भोजपुरी के एक महत्वपूर्ण बोली छोटा नागपुर की नागपुरिया है"। (1) सन 1970 ईस्वी में नागपुरी भाषा के प्रथम शोधकर्ता श्री श्रवण कुमार गोस्वामी ने अपने शोध ग्रंथ में नागपुरी भाषा का परिचय कराते हुए नागपुरी को मागधी अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास बताया है। पीटर शांति नवरंगी ने नागपुरी भाषा के उद्भव पर अपना विचार देते हुए कहा "सदानी (नागपुरी) बोली छोटा नागपुर के जंगलों और पहाड़ों के बीच खोई हुई किसी आर्य जाति द्वारा बोले जाने वाली प्राकृत बोली का अपभ्रंश रूप है"।(2) डॉ• बीपी केसरी ने नागपुरी भाषा के उद्गम पर विचार रखते हुए बताया कि "छोटा नागपुर में आर्य एवं अर्ध आर्यों के बीच मागधी प्राकृत का कोई विशिष्ट रूप अवश्य से प्रचलित रहा होगा और उसी से मूल नागपुरी भाषा विकसित हुई होगी"।(3)

उपयुक्त सभी मतों के अनुसार नागपुरी भाषा के उदभव के तीन वर्ग बनते हैं।

1 मागधी अपभ्रंश से
2 प्राकृत बोली के अपभ्रंश से
3 मागधी प्राकृत से

विकास –

जिस प्रकार काल क्रम से मानव सभ्यता में विकास होता है ठीक उसी के समानांतर भाषा का भी विकास होता है। भाषा के विकास को हम क्रमिक रूप से पांच सोपानो से जान सकते हैं।

1 संक्रमण बिन्दु –: भाषा के प्रथम चरण भाषा का संक्रमण काल होता है। नागपुरी भाषा पांचवीं–छठी शताब्दी के आसपास क्षेत्रीय अपभ्रंश से संक्रांत हुई तथा आगे चलकर स्वतंत्र रूप से विकसित हुई।

2 लोक भाषा का रूप –: भाषा अपभ्रंश से संक्रांत होकर द्वितीय चरण लोकमानस के उपयोग में आ जाती है "भाषा विज्ञान के सामान्य गणित चाहिए अनुमान लगाया जा सकता है की नवी–दसवीं सदी के लगभग नागपुरी भाषा का बोलचाल वाला रूप मिलने लगा होगा"(4)।

3 शिष्ट काव्य –: नागपुरी भाषा के विकास का तृतीय सोपान का कल 15वीं–16वीं शादी को माना जा सकता है। इसका प्रमाण सन 1401 ईस्वी में हापमुनि में विष्णु मूर्ति तथा सन 1473 ईस्वी में कोरम्बे में वासुदेव राय की मूर्ति की स्थापना तथा चौतन्य महाप्रभु के वैष्णव काल है। यह ज्ञात कराता है कि यह क्षेत्र भक्ति आंदोलन से प्रभावित हो चुका था अतः उसे समय शिष्ट काव्य की रचना की गई होगी। इस काल मे रघुनाथ नृपति मुख्य कवि के रूप में पाए गए।

4 गद्य साहित्य –: विकास के तीन चरणों को पार करते हुए चतुर्थ गद्य साहित्य में नागपुरी भाषा का प्रवेश होता है। नागपुरी भाषा नागवंशी शासनकाल में राजभाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी। "सन 1763 ई• (संवत 1850) के ताम्रपत्र में नागवंशी शासन के लिखित नागपुरी गद्य का उदाहरण प्राप्त होता है"(5)। कालांतर में ईसाई मिशनरियों ने बाइबल का अनुवाद नागपुरी भाषा में किया। इन सब के पश्चात धीरे–धीरे इसका प्रयोग क्षेत्र व्यापक होता गया उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, लेख, आलोचना, जीवनी, रेखाचित्र, इत्यादि नागपुरी गद्य में लिखे गए।

5 व्यापक रूप से लोकोपयोग –: भाषा के विकास का अंतिम चरण उसका व्यापक रूप से लोक क्षेत्र में प्रयोग होना है। यह नागपुरी भाषा के लिए वर्तमान में कहना उचित नहीं होगा यद्यपि नागपुरी भाषा अपने विकास के अंतिम चरण को स्पर्श कर चुकी है लेकिन अभी संपूर्ण विकास के लिए प्रयासरत है।

लिपि –

भाषा के विकास में अगला महत्वपूर्ण भूमिका लिपि का होता है। भाषा को लिपिबद्ध करना ही भाषा के विकास का रूप प्रदान करता है। नागपुरी भाषा का स्वयं अपना कोई लिपि नहीं है वर्तमान में देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। परंतु प्रावीन काल में देवनागरी के स्थान से पूर्व नागपुरी भाषा को कैथी, बांग्ला, रोमन लिपि में भी अंकित किया गया है।

कैथी लिपि –: नागपुरी भाषा को शुरुआत में लिपिबद्ध करने का कार्य कैथी लिपि द्वारा किया जाता था। प्राचीन काल में मुद्रण की अधिक संसाधन नहीं होते थे या होने पर भी वह काफी समकालीन रूप से काफी महंगे होते थे।अतः छोटा नागपुर के आदिवासी तथा गैर आदिवासियों के बीच नागपुरी भाषा के लिए कैथी लिपि का प्रयोग होता था। मुद्रण की असुविधा से ही प्राचीन लोग कैथी लिपि में लिखा करते थे। "सन 1908 ई से सन 1912 ई के बीच कोलकाता के बाइबल सोसायटी ने बाइबिल के सुसमाचारों के जो पांच नागपुरी अनुवाद प्रकाशित किए थे वह सभी कैथी लिपि में ही मुद्रित हैं"(6)।

बांग्ला लिपि –: नागपुरी भाषा को लिखने या लिपिबद्ध करने के लिए बंगाल के सिमावर्ती झेत्रो के लोग बांग्ला लिपि का भी प्रयोग करते थे। किंतु यह काफी कम है। अतः हम यह कह सकते है की कुछेक लोगो ने नागपुरी भाषा के लिए बांग्ला लिपि का प्रयोग करते थे।

रोमन लिपि –: नागपुरी भाषा को लिपि बद्ध करने के लिए रोमन लिपि का भी प्रयोग किया जाता था छोटा नागपुर के क्षेत्र में कैथोलिक मिशनरियों ने अपने धर्म प्रचार प्रसार के लिए नागपुरी भाषा को रोमन लिपि में लिखा। रेवरेण्ड बुकाऊट, रेवरेण्ड जे• जोंस, रेवरेण्ड प्लोर, रेवरेण्ड ए • बून आदि की लिखित रचनाएं रोमन लिपि में ही उपलब्ध है इन सभी ने बाइबल कभी नागपुरी अनुवाद रोमन लिपि में कराया।

देवनागरी लिपि –: नागपुरी भाषा के सर्वाधिक उपयोग वाली लिपि देवनागरी लिपि है। वर्तमान काल मे देवनागरी नागपुरी भाषा के लिए एकमात्र लिपि है। "विद्वानों की यह राय है कि भारत में जितने भी बोलियां बोली जाती है यदि उनकी अपनी कोई विशेष लिपि नहीं है तो वह देवनागरी लिपि को अपना लगी वस्तुतः या एक वैज्ञानिक तथा व्यवहारिक परामर्श भी देती है"(7)। कैथी लिपि का प्रयोग पूर्व काल में होता था, बांग्ला लिपि का प्रयोग बहुत कम ना के बराबर हुआ तथा रोमन लिपि नागपुरी भाषा के लिए असमर्थ जान पड़ता है। अतः इन सब के पश्चात देवनागरी लिपि ही नागपुरी भाषा की प्रमुख लिपि मानी जाती है

नामकरण –

प्रत्येक भाषा तथा उसके नाम का भी इतिहास रहता है। नागपुरी भाषा की नागपुरी शब्द तथा उसके इतिहास के बारे में विद्वानों के विभिन्न विचार हैं। नागपुरी भाषा के कई नाम प्रचलित रहे हैं।––

1 सादरी /सदरी –: सादरी जाति सूचक शब्द है तथा यह सदान जाति से संबंध रखती है। सादरी शब्द सदानी का ही एक विकृत रूप माना जा सकता है। सदरी सदरी मात्र उच्चारण भेद के कारण दो नाम है अपितु अर्थ एक ही है।

2 सदानी –: नागपुरी भाषा क्षेत्र में आदिवासी तथा गैर आदिवासी दोनों समुदाय वास करते हैं। गैरआदिवासी को आदिवासी लोग सदान से संबोधित करते हैं तथा उनके बोले जाने वाली भाषा को सदानी बोला करते। पीटर शांति नवरंगी ने अपनी पुस्तक में सदानी तथा सदान शब्द को निषाद और निषादि शब्दों से विकृत माना है जो 'षाद' शब्द कालांतर में सद के रूप में परिवर्तित हो गया।

3 गंवारी –: गंवारी शब्द से प्रतीत है की गंवारी शब्द गांव से संबंधित है अतः नागपुरी भाषा को गांव के लोगों द्वारा बोले जाने वाले भाषा भी कहते है। डॉक्टर बीपी केसरी के अनुसार ''नागपुरी बोली को यह नाम उन लोगो ने दिया होगा जो बाद में यहां के संपर्क में आए होंगे और अपने को अधिक सभ्य मानते होंगे''(8) तथा हीनता बोधक शब्द का प्रयोग करते थे। वर्तमान में यह शब्द का प्रचलन मिट गया है।

4 नागपुरी / नागपुरिया –: नागपुरी भाषा का सर्वाधिक प्रचलित नाग नागपुरी / नगपुरिया है। नागवंशी शासनकाल में राजभाषा होने तथा नागवंशी राजाओं का संरक्षण प्राप्त होने के फलस्वरूप इस नागपुरी नाम से प्रसिद्ध ही प्राप्त हुई। इस नाम को स्थानीय लोगों के साथ–साथ विद्वानों ने भी स्वीकृति दी। रेवरेण्ड व्हिटली ने द्वितीय संस्करण में अपने व्याकरण का नाग 'नोट्स ऑन दी नागपुरिया हिंदी' लिखा है।

5 दिक्कू काजी –: पूर्व काल में अनार्य मुंडा लोगों द्वारा आर्यों की भाषा तथा गैर आदिवासी भाषा अर्थात नागपुरी को दिक्कू काजी के नाम से पुकारने लगे। दिक्कू का अर्थ मुख्ता बाहर से आए लोगों से होता है तथा काजी का अर्थ भाषा से। वर्तमान में नागपुरी के लिए इस नाम का प्रयोग नहीं होता है।

क्षेत्र –

नागपुरी भाषा के क्षेत्र एक सीमित क्षेत्र नहीं है अभी तो यह काफी विस्तृत क्षेत्र है। ''भौगोलिक दृष्टि से नागपुरी भाषा साहित्य का मुख्य क्षेत्र 210 डिग्री उत्तर से 250 डिग्री उत्तर और 83 डिग्री पूर्व से 87 डिग्री पूर्व तक आयताकार विस्तृत है। जिसमें संथाल परगना का कुछ भाग उत्तर पूर्व की ओर निकला हुआ है। इसके अंतर्गत बिहार का दक्षिणी पठार, छोटा नागपुर पठार, संथाल परगना तथा पश्चिम बंगाल के पश्चिमी, उड़ीसा का उत्तरी तथा छत्तीसगढ़ का पूर्वी छोर सम्मिलित है। इसका कुल क्षेत्रफल 3000 से 35000 वर्ग मील भूमि निहित है''(9)।

नागपुरी भाषा झारखंड के रांची, चंदवा, लातेहार, हजारीबाग, रामगढ़, चतरा, लोहरदगा, गुमला, खूंटी, सिमडेगा, पश्चिमी सिंहभूम पर प्रचलित है तथा अन्य स्थानों पर भी यह संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग की जाती है। झारखंड के अतिरिक्त छत्तीसगढ़ के पूर्वी भाग के जिलों जैसे जसपुर, सरगुजा, रायपुर, कोरिया इन जिलों में भी नागपुरी भाषा का प्रभाव जान पड़ता है। झारखंड के अन्य पड़ोसी राज्य उड़ीसा के उत्तरी भाग गांगपुर, बोनाईध बोनाईगढ़, बामड़ा, क्योंझर, सुदरगढ़ क्षेत्र मे नागपुरी भाषा का प्रयोग जाना पड़ता है। इन क्षेत्रो मे नागपुरी एक द्वितीय भाषा के रूप मे कार्य करती है। झारखंड के उत्तर में रिथत बिहार के कुछ रीमावर्ती क्षेत्रों में भी नागपुरी भाषा का प्रयोग किया जाता है सन 1961 की जनगणना के अनुसार बिहार के चंपारण सहरसा तथा पूर्णिया में भी नागपुरी बोलने वालों की संख्या प्राप्त थी।

झारखड मे निर्धनता सदैव से विद्यमान रही है। अतः कुछ निर्धन मजदूर काम करने के लिए नवबर दिसबर के महीना में अराम के चाय भगवानों में काम करने चले जाते हैं। इरा प्रकार कई बार परिवार चले जाने अथवा अंग्रेजों के द्वारा वहां बसने के कारण वश असम के क्षेत्र कछार, गोलपाड़ा, सिलहट, शिवसागर, लखीमपुर, नागा पर्वत, इत्यादि जगहों पर वहां के मजदूरों द्वारा नागपुरी भाषा का प्रयोग किया जाता है।

अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में नागपुरी भाषा का जबरदस्त रूप से प्रयोग किया जाता है। छोटा नागपुर क्षेत्र की बहुत सी आदिवासी जनसंख्या यहां द्वितीय क्षेत्र में आकर बस गई है तथा यहां के स्थाई निवासी हो गए हैं यहां पर वह अपनी मुख्य मातृभाषा का ही प्रयोग करते आए हैं।

इस शोध पत्र को पूरा करने में मैंने ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग किया है, तथा द्वितीयक आंकड़ों की सहायता ली है। जैसे– पत्र–पत्रिका, पुस्तक, समाचार पत्र, जर्नल, आदि।

निष्कर्ष – उपर्युक्त सभी विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि नागपुरी भाषा झारखंड क्षेत्र की सर्वाधिक प्राचीन आर्य भाषा परिवार की भाषा है। नागवंशी शासन के आदि शासक फनीमुकुट राय के समय से ही नागपुरी भाषा यहां के जनमानस की भाषा रही। यह झारखंड के समस्त लोगों की संपर्क भाषा होने के साथ–साथ पड़ोसी राज्य में भी फैली हुई है।

संदर्भ ग्रंथ

1 नागपुरी भाषा उद्‌गम और विकास – डॉ विशेश्वर प्रसाद केशरी सुकृत प्रेस प्रथम संस्करण पृष्ठ 19
2 नागपुरी भाषा – डॉ श्रवण कुमार गोस्वामी प्रथम संस्करण बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पृष्ठ 3
3 स्वातंत्र्योत्तर नागपुरी साहित्यः एक शास्त्रीय अध्ययन –डॉ राम प्रसाद द्वितीय संस्करण झारखंड झरोखा पृष्ठ 41
4 नागपुरी भाषा उद्‌गम और विकास – डॉक्टर विशेश्वर प्रसाद केशरी सुकृत प्रेस प्रथम संस्करण पृष्ठ 20
5 नागपुरी भाषा उद्‌गम और विकास – डॉ• विशेश्वर प्रसाद केशरी सुकृत प्रेस प्रथम सस्करण पृष्ठ 23–24
6 नागपुरी भाषा – डॉ• श्रवण कुमार गोस्वामी प्रथम संस्करण बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पृष्ठ 10
7 नागपुरी भाषा – डॉ• श्रवण कुमार गोस्वामी प्रथम संस्करण बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पृष्ठ 10
8 नागपुरी गीतों में श्रृंगार रस – डॉ विशेश्वर प्रसाद केशरी प्रथम संस्करण नागपुरी संस्थान पिठोरिया पृष्ठ 3
9 नागपुरी गीतों में श्रृंगार ररा – डॉ विशेश्वर प्ररााद केशरी प्रथम रांरकरण नागपुरी रांरथान पिठोरिया पृष्ठ 6

7903048344
sowravbarman031@gmail-com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 97-101

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिक हिंदी कविता में युगीन संदर्भ

सिद्धेश्वर काश्यप

हिन्दी सह प्राध्यापक, पीजी सैन्टर, सहरसा–852201, बिहार

संपूर्ण भारतीय साहित्य में परिवर्तन–नवीनता के लक्षण 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ही दिखाई दिखने लगे थे। हिंदी साहित्य में भी परिवर्तन हुआ, नयापन आया इसे नयी दिशाएँ मिलीं और नये रूप प्राप्त हुए। हिन्दी कविता को नये आयाम भी मिलें। सन् 1850 के आस–पास पाश्चात्य प्रभाव प्रलक्षित हुए। मुगलों ने संल्तनत बख्स दी। सत्ता अँग्रजों के हाथ में आ गयी, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ परिवर्तित हुईं। ऐसी नितांत नई बदलती हुए परिस्थितियों ने युग को प्रभावित किया। युग भी बदला; अतः परिवर्तित युग में साहित्य का स्वर ही परिवर्तित होना स्वाभाविक था। सीमित वर्ण्य विषय एवं लक्षण उदाहरण ग्रंथ की परिसीमा को लांघ कर हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल आया।

'अधुना' अव्यय से 'आधुनिक' शब्द निर्मित हुआ। इसका अर्थ होता है नया, हाल का अथवा वर्तमान समय का। आज जो 'आधुनिक' है वही कालांतर में पुराना हो जाएगा। साहित्य के इतिहास में अंतिम कालावधि को आधुनिक काल के नाम से जाना जाता है। 'आधुनिक' शब्द नवीनता का सूचक है, वैज्ञानिक दृष्टि का परिचायक है। इसमें तर्क–वितर्क की प्रवृत्ति समाहित है साथ ही, यह बौधिकता का भी संकेतक है।

भारत एक बहुजातीय देश है, बहुभाषिक राष्ट्र है। विविध धर्मालंबियों का पीठ–स्थान है। यह इसकी अपनी सभ्यता एवं संस्कृति है, अपनी जीवन प्रकृति है। भारत सभ्यता, भाषा, संस्कृति, धर्म, जीवन–पद्धति और शासन व्यवस्था का देश है जिसका संपर्क पाश्चात्य देशों से हुआ। ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में हो रहे विकास से भारतीय परिचित हुए और भारतीयों ने एक नया अनुभव अर्जित किया। 'विश्वासें मिलई हरि, तरके बहु दूर' को अग्राह्य किया गया। तर्क के आधार पर वैज्ञानिक सुझ–बूझ तथा विचारों ने भारतीयों को प्रभावित किया। भारतीय चिंतकों एवं रचनाकारों ने परिवर्तित जीवन मूल्यों को देखा एवं समझा। अपने अनुभवों तथा दूरदर्शिता को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान की। इसी बीच 160 सालों में अकूत मात्रा में उत्कृष्ट साहित्य का सृजन हो चुका है। उस साहित्य पर आलोचनात्मक लेखन भी हो चुका है। विभिन्न संदर्भ के आधार पर मूल्यांकन हो रहा है।

आधुनिक काल में भारतीय साहित्य पर धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आंदोलनों का व्यापक प्रभाव पड़ता है। जिसके कारण नवीन साहित्यक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा–प्रणाली और शासन–व्यवस्था के फलस्वरूप भारतीयों में भौतिक क्षमता का विकास होता है और उनमें राजाराम मोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती के जीवन–दर्शन से प्रभावित होकर समता, स्वतंत्रता, राष्ट्रीय चेतना और मानवतावाद के प्रति नई निष्ठा जगती है।

1957 में स्वाधीनता–संग्राम की शुरूआत होती है जो केवल सिपाही–विद्रोह नहीं होता है, बल्कि अंग्रेज–राज की समाप्ति के लिए जनक्रांति होती है। बहादुर शाह जफर, लक्ष्मीबाई, अमर सिंह, तात्या टोपे आदि के बलिदान से पराधीन भारत में जागृति और चेतना का संचार होता है। स्वतंत्रता की प्राप्ति की कामना मंगल पांडे की आहुति से और प्रबल होती है। जिसकी अभिव्यक्ति स्वाधीनता–संग्राम कालीन साहित्य में होती है। सन् 1875 में भारतेन्दु हरिशचन्द्र अपने नाटक 'भारत दुर्दशा' में भारतीय पराधीनता की पीड़ा को व्यक्त करते हैं लेकिन उसमें देशभक्ति, राजभक्ति और ईशभक्ति की समन्वित अभिव्यक्ति होती है–

'रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुदर्शा न देखी जाई।।
अंगरेज राज सुखसाज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।।
ताहू पै महँगी, काल, रोज बिस्तारी।
दिन–दिन दूने दुख ईस देत हा हारी।।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।'

आधुनिक जीवन–मूल्यों और संस्कृति के साथ स्वाधीन चेतना से प्रभावित होकर भारतेन्दु युग में स्वाधीनता का स्वर मुखरित होता है–

सब तजि गहौ स्वतंत्रता नाहिं लातै खाओ।
राजा करे सो न्याय हैं पाशा परे सो दाव।।

द्विवेदी युगीन साहित्य में राष्ट्रीयता के साथ मानवता की समन्वित अभिव्यंजना होती है। साथ ही, पौराणिक मिथकों के माध्यम से भारतीयता और भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा का प्रयास होता है–

राष्ट्र प्रेम वह पुण्य पंथ है, अमल असीम त्याग से विलसित
जिसकी दिव्य रश्मियां पाकर मनुष्यता होती है विकसित।

इस युग के साहित्य में उपेक्षित दलित और स्त्री की अस्मिता की अधिष्ठापना का उपक्रम होता है। डॉ. राम कुमार वर्मा 'एकलव्य', और 'उर्मिला', पंडित केदारनाथ मिश्र प्रभात 'कर्ण' नामक काव्य कृतियों की रचना करते हैं। मैथिलीशरण गुप्त 'साकेत' एवं 'यशोधरा' नामक काव्य कृतियों की रचना करते हैं जिनमें दलित–अस्मिता के साथ स्त्री–अस्मिता की प्रतिष्ठा होती है–

कैवल्य काम भी काम स्वधर्म धरें हम
संसार हेतु शत् बार सहर्ष मरें हम। –यशोधरा

इस कालखंड में भारतीय जीवन–मूल्यों और संस्कृति का आदर्शीकरण होता है।

सांस्कृतिक और राष्ट्रीय काव्यधारा के कवि पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, पंडित बालकृष्ण शर्मा नवीन, पंडित सोहनलाल द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी और दिनकर जी ऐसे कवि राष्ट्रीय स्वाधीनता एवं अस्मिता की प्रतिष्ठा के लिए त्याग एवं बलिदान की प्रेरणा भारतीय जनगण को देते है–

प्यारे स्वदेश के हित अंगार माँगता हूँ

चढ़ती जवानियों का शृंगार माँगता हूँ। –दिनकर

छायावादी युग में स्वच्छंद प्रेम और सौंदर्य के साथ राष्ट्रीयता, भारतीयता एवं भारतीय संस्कृति के साथ मानवता की अलख साहित्य के माध्यम से जगाई जाती है। जयशंकर प्रसाद कामायिनी और अपने नाटकों–चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी में मानवता और राष्ट्रीयता को नया आयाम प्रदान करते हैं। वह चन्द्रगुप्त में स्वाधीनता के लिए प्रेरित करते है–

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्जवला स्वतंत्रता पुकारती। –चन्द्रगुप्त

जयशंकर प्रसाद अपने नाटकों में भारतीयता और भारतीय संस्कृति का गौरव–गान करते हैं–

हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार
उषा ने हँस अभिनंदन किया और पहनाया हीरक हार।
जगे और फिर लगे जगाने विश्व में फैला तब आलोक। –स्कंदगुप्त

जयशंकर प्रसाद जी 'स्कंदगुप्त' में राष्ट्रीय स्वाधीनता और अस्मिता के लिए त्याग एवं बलिदान की प्रेरणा देते हैं–

जियें तो सदा इसी के लिए यही अभिमान रहे यह हर्ष
निछावर कर दे हम सर्वस्व हमारा प्यारा भारत वर्ष।

पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी निराला 'जागो फिर एक बार' और भारती जय विजय करे में भारत की सांस्कृतिक चेतना और संघर्षशीलता को स्वर देते हैं।

प्रगतिवादी साहित्य में मुंशी प्रेमचंद युंगांतरकारी परिवर्तन करते हैं और आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद के साथ यथार्थोन्मुख आदर्शवाद की प्रतिष्ठा अपनी कथा कृतियों में करते हैं। 'सेवासदन', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि', 'गोदान', 'कफन', 'पूस की रात', 'ठाकुर का कुँआ', 'सवां सेर गेहूँ' में शोषित–पीड़ित, दलित एवं कृषकों की पीड़ा के साथ उनके मुक्ति–संघर्ष को स्वर देते हैं। प्रगतिवादी कवि केदाननाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, अरूण कमल, धूमिल आदि अपनी काव्य कृतियों में प्रगतिशील मूल्यों की प्रतिष्ठा का उपक्रम करते है और साम्यवादी जीवन–दर्शन के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हैं। प्रयोगवादी साहित्य में सच्चिदानंद हीरानंद, वात्यस्यायन 'अज्ञेय', गजानंन माधव मुक्तिबोध, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रांगेय राघव, भीष्म सहनी आदि प्रयोगशील धरातल पर सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों और व्यक्ति–अस्मिता के साथ मानव–अस्मिता कोस्वर देने का प्रयास करते हैं।

समकालीन साहित्य में नवीन जीवन–बोध और मूल्यों की अभिव्यक्ति होती है। समकालीन कविता में अगिनशेखर साम्प्रदायिकता, अलगाववाद, धार्मिक कट्टरता और आंतकवाद के विरूद्ध हो रहे संघर्षों को स्वर देते है–

छींकती है जब भी मेरी माँ
यहाँ विस्थापन में
उसे याद कर रही होती है गाय
इतने वर्षों बाद भी नहीं थमी है खून की नदी
उस पार खड़ी है गाय

इस पार है मेरी माँ। —स्वर एक आदर्श पृष्ठ 114

सुरेश सेन निशांत अपनी कविताओं में बहुराष्ट्रीय कंपनीयों के हवाले हो रहे सम्राज्यवाद की स्थापना की विद्रूपताओं को उजागर करते हैं। निशांत प्रगतिशील मूल्यों के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हैं। राजर्वद्धन अपने चारों ओर टूटते बिखरते समाज में मानवीय मूल्यों, सपनों और जीवन के सौंदर्य–बोध की रक्षा करने के लिए प्रयासरत है। प्रगतिशील मूल्यों के प्रति कवि की प्रतिबद्धता भी व्यक्त है–

मैंने
आम जनता के पास जाना ही उचित समझा
नहीं बनना चाहता हूँ अंधेरे बंद कमरे का महान कवि।

समकालीन कविता सूरज उगने की प्रतिक्षा की कविता है–

सोता रहता है
रात के अंधकार में
सूरज उगने की प्रतिक्षा में। —कबीर अब रात में नहीं रोता, पृष्ठ 39

'प्राणी उद्यान' नामक कविता में पर्यावरणीय चिंता प्रकट है और विकास के नाम पर प्रकृति के विनाश पर आक्रोश भी–

लेकिन यहाँ नहीं बचा है
बाघ में बाघपन
पक्षी में पक्षीपन
पेड़ों में हरापन। —पृष्ठ 103

महेश चन्द्र पुनेठा उपनिवेशवादी सोच पर व्यंग्य करते हैं और पूंजीवादी, बाजारवादी अर्थव्यवस्था के छल–छद्म और उसकी कारगुजारियों का पर्दाफाँस करते हैं। समकालीन कविता में प्रेम–चेतना को व्यापक आयाम प्राप्त है। प्रेम नित्य नवीन रूप में अभिव्यक्त है–

दुनिया की तमाम भाषाओं
दुनिया की तमाम बोलियों से इतर
हर भाषा और बोली में
प्रेम की
अपनी खुद की
एक अलग भाषा हुआ करती है।

समकालीन कविता में जनपक्षधरता व्यक्त है–

दिखता है बहन का उदास आटा सानना
पत्नी का बर्तन मांजना
माँ को खटिया पर बैठा
पिताजी का ढाढ़स बंधाना
और मेरे चार साल के बेटे का

चीनी से भरी रोटी खाने के लिए जिद करना।

'बहुसंख्यक बनाम अल्पसंख्यक' कविता में क्षरित हो रही संवेदनाओं के प्रति मानवीय मूल्यों के धरातल पर चिंता व्यक्त है–

इतिहास
जानता हैं
वह न रहा है
आदमी टूट रहा है।

स्पष्ट हैं कि समकालीन हिन्दी कविता में युगीन संदर्भों की अभिव्यक्ति होती है और जीवन के यथार्थ के साथ बदलते जीवन मूल्यों के प्रति निष्ठा व्यक्त होती है।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 102-104

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

महापाषाण कालीन संस्कृति : एक ऐतिहासिक अध्ययन

संजीत कुमार दास

शोधार्थी (वि० भा० वि० हजारीबाग), व्याख्याता सह, स्वामी धर्मबंधु कॉलेज आफ एजुकेशन हरहद, हजारीबाग।

भूमिका :–

भारत में महापाषाण संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान है भारतीय भूभाग इस गौरवमयी संस्कृति से ओत–प्रोत रही है। यह संस्कृति दक्षिण भारत में कई स्थानों के अतिरिक्त देश के अन्य भूभाग में भी फली फूली। इस संस्कृति के लोग कृषि उत्पादन, पशुपालन, आवास एवं वस्तुओं के निर्माण से परिचित रहे हैं। जिस कारण यह संस्कृति कई वर्षों तक देश के विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान रही। इसकी सर्व प्रमुख विशेषता शवों को दफनाने में एक विशिष्ट प्रणाली का उपयोग करना था इसके तहत ये लोग शवों को दफनाने के उपरांत उनकी पहचान हेतु अलग–अलग तरह से पत्थरों का उपयोग करके उन्हें एक अलग आकृति प्रदान करते थे ताकि उनकी पहचान बनी रहे।

दक्षिण भारत में नवपाषाण युगीन संस्कृति के पश्चात महापाषाण का दौर आया, गार्डन चाइल्ड का अनुमान है कि महापाषाण किसी अंधविश्वास संबंधी अनुष्ठान अथवा धार्मिक उद्देश्य से बनाए जाते थे। इस संस्कृति में मृतकों को आबादी क्षेत्र से दूर कब्रिस्तान में पत्थरों के बीच दफनाया जाता था। दक्षिण भारत में इस प्रकार से दफनाने की परंपरा की शुरुआत लौह युग के साथ हुई। इस संस्कृति के काल निर्धारण में इतिहासकारों के बीच कुछ मतभेद है हम इस संस्कृति को 1000–800 ईस्वी पूर्व के बीच मान सकते हैं। महापाषाण युग के लोग एक ही सांस्कृतिक समूह के नहीं थे हमें कब्रों की बनावट से यह विभिन्नता देखने से मिलती है। भारत में मिलने वाले महापाषाण की बनावट विदेशों में पाई जाने वाली कब्रों के जैसी है इस प्रकार की शवाधान मध्य एशिया तथा ईरान आदि से भी प्राप्त की जा चुकी है।

विशिष्ट शब्द– महापाषाण, मेनहिर, टॉपिकल, डोलमेन, बुर्जहोम, शवाधान, अधिशेष, गुफ्फकराल, मृदभांड।

भारत में महापाषाण कालीन स्थल मुख्य रूप से दक्षिण भारत के केरल, तमिलनाडु दक्षिणी आंध्र प्रदेश तथा दक्षिणी कर्नाटक में पाई गई है जिसे हम तमिलहम के नाम से भी जानते हैं। इस क्षेत्र में यह संस्कृर्ति मुख्य रूप से विकसित हुई। हम देखते हैं कि तमिलनाडु के आदितुचलन्दुर, चिंगलपेट, पांडुलकुली, कोरकई के साथ–साथ केरल में सानूर, अदियारनूर कन्नूर, पोरकालम, त्रिवेंद्रम के अतिरिक्त आंध्र प्रदेश में अमरावती, नागार्जुनकोंड, नौगुंडा तथा कर्नाटक में मास्की, ब्रह्मगिरी, दलूर, पिक्लिहल तथा संगनकल में यह संस्कृति विद्यमान रही इसके अतिरिक्त भारत के अन्य स्थानों जैसे महाराष्ट्र के नागपुर कश्मीर, असम एवं झारखंड में भी इस संस्कृति के होने के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। असम की खासी जनजाति एवं झारखंड के मुण्डा जनजाति इस संस्कृति के पोषक रहे हैं।

महापाषाण संस्कृति के लोग मृतकों को दफना कर उसकी पहचान एवं स्मृति हेतु समाधि के चारों ओर विशाल पत्थर को रखते थे, इन पत्थरों की आकृति एवं प्रयोग भिन्न–भिन्न होती थी। शवाधान मुख्यतः दो प्रकार से की जाती थी पूर्ण एवं आंशिक शवाधान। मृतकों को दफना कर समाधि को अलग–अलग ढंग से चिन्हित किया जाता था। समाधि कि इन आकृतियों में मेनहिर, टॉपिकल, डोलमैन, स्टोन सर्कल तथा शव पेटिका आदि शामिल है।

मेनहिर के तहत मृतक को दफनाकर उसके साथ उपकरण आदि रखा जाता था तथा उस समाधि के ऊपर एक विशाल पत्थर को स्तंभ की भांति जमीन में गाड़ दिया जाता था ताकि उसकी स्मृति एवं पहचान बनी रहे। टॉपिकल समाधि के अंतर्गत पत्थर को इस प्रकार रखा जाता था कि वह टोपी अथवा छाता की आकृति का दिखलाई पड़ता था इस प्रकार की समाधि केरल के आदियानूर, सानुर तथा चेरमनगाड़ में अधिक प्रचलित थी। डोलमेन समाधि में पत्थरों को इस प्रकार रखा जाता था कि वह दीवार के ऊपर टिके हुए छत के समान दिखलाई पड़ते थे यह समाधि मेज की आकृति लिए हुए होती थी इस प्रकार की समाधि केरल के मरपूर नामक स्थल पर दिखलाई देती है। स्टोन सर्कल समाधि के तहत समाधि के चारों और छोटे–छोटे पत्थरों को गोल घेरा बनाकर रखा जाता था इसके साथ ही शव पेटिका समाधि का निर्माण इस प्रकार किया जाता था कि वह देखने में ताबूत के समान प्रतीत होती थी इसका निर्माण मिट्टी से किया जाता था।

महापाषाण कालीन कब्रों की खुदाई से हमें उस समय उपयोग में लाई गई बर्तनों के विषय में जानकारी मिलती है इनमें कई प्रकार के बर्तन शामिल हैं जिनमें से लाल काला मृदभांड प्रमुख है। यह मृदभांड अंदर से काला एवं बाहर से लाल दिखलाई पड़ता है। इस मृदभांड का निर्माण आग में पकाकर किया गया है। इस मृदभांड में कई बार शवों को रखकर दफनाया जाता था इसके अलावे महापाषाण काल के लोग अन्य बर्तनों का भी प्रयोग करते थे जिन में मटका, थाली, तस्तरी, प्याला आदि शामिल थी। महापाषाण काल के लोग धातुओं में लोहे से परिचित थे इसके अतिरिक्त इन्हे तांबा, कांसा, टीन तथा सोने की भी जानकारी थी। धातु से ये लोग कई प्रकार की वस्तुएं एवं औजारों का भी निर्माण करते थे जिनमे कुल्हाड़ी, फावड़ा, बेलचा, खुरची, कुदाल, फरसा, सब्बल, छैनी, छूरा, बसुला आदि शामिल थी। खुदाई में महापाषाण कालीन बस्तियां कम संख्या में प्राप्त हुई हैं, कुछ स्थानों पर कृषि तथा पशुपालन के भी साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। ये लोग जो, चना, मसूर, कुलधी आदि फसलों का उत्पादन करते थे। पशुओं में गाय, बैल, भैंस, घोड़ा, भेड़, बकरी तथा खच्चर आदि जानवरों का पालन करते थे इस समय के लोग खानाबदोश कृषि का कार्य करते थे इस कार्य में औजार की उपलब्धता ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाद में ये धीरे–धीरे गांव के रूप में बसने लगे रोचक तथ्य यह है कि ये लोग पशु में घोड़े का भी पालन करते थे क्योंकि महापाषाण कालीन कब्रों से घोड़े की अस्थियां प्राप्त हुई है इसका साक्ष्य नागपुर के जूनापनी से प्राप्त होता है। कर्नाटक के मास्की से प्राप्त शैल चित्र में घुड़सवार का चित्र बनाया गया है इस काल में घोड़े मध्य एशिया से मंगवाए जाते थे क्योंकि भारत में जंगली घोड़े की भी प्रजाति नहीं थी।

महापाषाणिक कब्रगाहों में भारतीय तथा विदेशी रश्मों का मिश्रण था भारत में इस संस्कृति के निर्माता भूमध्य सागरीय तथा द्रविड़ लोग थे इस प्रकार की संस्कृति हमें एशिया, यूरोप, अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका तथा मध्य अमेरिका में देखने को मिलती है कई महापाषाण कालीन कब्रों से रोमन सिक्के भी मिले हैं जिससे प्रमाणित होता है कि ये लोग व्यापार में भी रुचि दिखाते थे सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है कि दक्षिण भारत में विकसित हुए

संगम काल के निर्माता महापाषाणिक लोग ही थे। इस समय कृषि कार्य जीवन निर्वाह पर आधारित था कृषि अधिशेष का प्रमाण हमें देखने को नहीं मिलती है। इस संस्कृति को लोह युगीन संस्कृति के रूप में भी देखा जाता है क्योंकि ये लोग लोहे के उपयोग एवं उससे वस्तुओं के निर्माण करने में दक्ष थे। बर्तन बनाने में ये लोग चाक का प्रयोग करते थे जुते हुए खेत का साक्ष्य अदियानुर तथा मुदभांड पर बैल का चित्र चिंगलपेट से प्राप्त हुआ है। कश्मीर के बुर्जहोम तथा गुफ्फकराल से भी महापाषाणिक कब्रें मिली है। इससे प्रमाणित होता है कि यह संस्कृति भारत में एक विशिष्टता के साथ विस्तारित थी इसकी कब्रें एवं शवाधान के तरीके आज भी हमें प्रभावित करती है। इस काल में हमें नगरीकरण, सिक्का, स्थाई बाजार, लेखन कला तथा वृहद व्यापार का अभाव देखने को मिलता है। विश्व में मानव जीवन के विकास के समानांतर हमारे भारत में भी मानव सभ्यता का उत्कृष्ट विकास हो रहा था। यह संस्कृति प्रतिकूल स्थिति में भी देश के विभिन्न भागों में फली फूली ताकि हम भारतीय इस संस्कृति पर गर्व कर सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कृष्ण चंद्र श्रीवास्तव : प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो (2014–15)
2. झा एवं श्रीमालीः प्राचीन भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय (2008)
3. डॉक्टर बृजेश कुमार श्रीवास्तव : प्राचीन भारत का इतिहास, एस. बी. पी. डी पब्लिकेशन (2022)
4. शीलवंत सिंह एवं सारिका : भारतीय कला एवं संस्कृति, प्रभात प्रकाशन (2022)
5. डॉ. के. के शर्मा : प्राचीन भारत का इतिहास, उपकार प्रकाशन (2020)
6. उपिंदर सिंह : प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पियर्सन इंडिया एजुकेशन (2016)
7. इग्नू, ई. एच. आई– 02, भारत : प्राचीन काल से आठवीं शताब्दी ईस्वी, खंड 3
8. रहीस सिंह : प्राचीन भारत प्रागैतिहासिक से सामंतवाद तक, पियर्सन एजुकेशन इंडिया (2010)
9. प्रसन्न कुमार चौधरी : अतिक्रमण की अंतरयात्रा, वाणी प्रकाशन (2015)
10. Lunc laporte and chirs scarre: The megalithic architecture of Europe, Oxbow Books (2015)

संजीत कुमार दास (सहायक प्राध्यापक)
पिता – श्री जीवन राम
ग्राम–नवादा (खपरियाँवा)
पोस्ट– बन्हा (नवादा)
जिला – हजारीबाग
राज्य – झारखंड
पिन कोड – 825302
Email : sanjeetkumar5774@gmail.com
M. 8084679173

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 105-108

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय परिप्रेक्ष्य में हिन्दी साहित्य और नारी सशक्तिकरण

डॉ. शकुन्तला प्रजापति

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुना, म. प्र.

सारांश :-

भारतीय सभ्यता में प्राचीन काल से महिलाओं को पुरुषों के बराबर या उनसे उच्च स्थान दिया गया है। किसी भी समाज की परिकल्पना नारी के बिना संभव नहीं है। भारतीय समाज तो प्रकृति को भी नारी का प्रतिरूप मानता है। भारत भूमि को भारत माता तथा संपूर्ण पृथ्वी को धरती माता की संज्ञा से नवाजा गया है। आधुनिक भारतीय समाज में नारी के सशक्तिकरण की आवश्यकता को महसूस किया जा रहा है। इसके पीछे कौन–कौन सी परिस्थितियाँ उत्तरदायी हैं, आज एक ज्वलंत तथा विचारणीय विषय है। प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं आधुनिक समाज में इतनी बड़ी खाई कैसे और कब उत्पन्न हुई? ऐसे अनेक सवाल हैं, जिनका उत्तर ढूँढना ही होगा, साथ ही नारी से संबंधित समस्याओं का समुचित निदान भी आवश्यक है।

मुख्य बिन्दु – नारी, सशक्तिकरण, ग्रामसेविका, संगठन, स्व सहायता समूह, योजना, सुरक्षा, शिक्षा।

प्रस्तावना :-

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरियसी, यह कथन प्रमाणित करता है कि पुरातन काल से ही भारतीय समाज में नारी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। नारी ईश्वर के द्वारा रचित अनुपम कृति है। मानव जीवन में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस परिवार, समाज और देश में नारी की स्थिति सुदृढ़ होती है। वह देश समृद्ध और विकसित होता है। भारत में प्राचीन काल में नारी की स्थिति अच्छी थी, जिसका प्रमाण हमारे ग्रंथों में भी मिलता है। लेकिन कालांतर में उसकी दशा में परिवर्तन होने लगा, नारी भोग की वस्तु समझी जाने लगी, उसका शोषण होने लगा, लेकिन स्वतंत्रता के बाद नारी सशक्तिकरण की ओर लोगों का ध्यानाकर्षण किया गया।

नारी सशक्तिकरण एक लंबी यात्रा है, जो स्त्री के समर्पण से प्रारंभ होकर प्रतिरोध तक पहुँच गया है। प्रतिरोध का प्रमुख कारण अनेक प्रकार की सामाजिक बेड़ियाँ, पुरुष कट्टरवाद, पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण तथा स्त्री–पुरुष के मध्य व्याप्त असमानताएँ हैं। आधुनिक भारतीय नारी घर की चारदीवारी के भीतर रहने की बजाय पढ़–लिखकर पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर जीवन का सफर तय करना चाहती है। यह हमारे देश एवं समाज के लिए आवश्यक भी है। किसी भी राष्ट्र के विकास की परिकल्पना महिलाओं की भागीदारी के बिना साकार नहीं हो सकती है, यह तथ्य सर्व विदित है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु अनेक प्रकार की योजनाओं (लाड़ली लक्ष्मी, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, महिला हेल्पलाइन, उज्ज्वला योजना, सपोर्ट टू ट्रेनिंग एंड एम्पलायमेंट फॉर वुमन, महिला शक्ति केंद्र) का परिचालन किया जा रहा है, परंतु क्रियान्वयन

की दिशा एवं दशा में सुधार हेतु निरंतर शोध किया जाना आवश्यक है।

वर्तमान में महिला सशक्तिकरण एक बहुत बड़ी चुनौती है। साहित्य जगत के रचनाकारों ने महिला सशक्तिकरण के लिए अपनी लेखनी से जन–जागृति का बीड़ा उठाया। स्वतंत्रता के बाद के साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में नारी के सशक्त रूप का रेखांकन किया है। इस समय लेखकों ने नारी सशक्तिकरण के मार्ग में शिक्षा को एक महत्त्वपूर्ण उपक्रम माना है। यदि नारी को समुचित शिक्षा एवं मार्गदर्शन दिया जाए तो वह एक कुशल गृहणी, समाज–सुधारक एवं राजनीतिज्ञ बनकर समाज एवं देश की सेवा में अपना योगदान दे सकती है।

स्वतंत्रता के बाद की नारी शिक्षा की गाथा हिन्दी कथाकार अमरकांत की 'ग्रामसेविका' उपन्यास में दिखाई देता है। इस उपन्यास की नायिका दमयन्ती अपने प्रेमी के द्वारा धोखा दिए जाने के बाद वह दृढ़ निश्चय करती है कि पढ़–लिखकर अपनी पहचान बनाएगी और आर्थिक संकट से जूझ रहे परिवार का सहारा बनेगी। पुरुष के द्वारा किए गए अपमान के बाद दमयन्ती सोचती है कि– "वह साहस, संघर्ष और कर्मठता का जीवन अपना कर अपने दुख, निराशा और अपमान का बदला चुकाएगी।"[1] वह ग्रामसेविका के पद पर एक छोटे से ग्राम में कार्य करने लगती है। इस गाँव में जातिवाद, छुआछूत और रूढ़िवादी मानसिकता के लोग रहते हैं। सर्वप्रथम बच्चों और स्त्री शिक्षा के लिए अथक प्रयास करती है, दमयन्ती का मानना है कि–"एक नई रोशनी फैल रही है जो लोगों के मन के अंधकार के परदे को चिथड़े–चिथड़े कर देगी। .....जब तक स्त्री पढ़ेगी–लिखेगी नहीं वह अपने बच्चों की जिंदगी सुधार नहीं सकती।"[2] इस कार्य में अनेक बाधाओं के बावजूद भी गाँव की महिलाओं को शिक्षा के लिए प्रेरित कर पायी। गाँव की स्त्रियों को शिक्षित होने के बाद समझ में आने लगा कि घर,बच्चों एवं परिवार का ध्यान कैसे रखा जाता है। उनकी सोच और विचारों में परिवर्तन हुआ, जोकि लेखक का मुख्य ध्येय था। इस प्रकार यह उपन्यास इस कथन को चरितार्थ करता है कि "एक स्त्री के शिक्षा से पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है" दमयन्ती के शिक्षित होने से पूरे गाँव के लोगों के विचारों में परिवर्तन आया। एक पढ़ी–लिखी स्त्री ही बेटी–शिक्षा के महत्त्व को समझते हुए, उसे शिक्षा के पर्याप्त अवसर प्रदान कर सकती है। शीघ्र विवाह, अपर्याप्त शिक्षण सुविधाएँ तथा लड़कियों को पराए घर की समझना जैसे सामाजिक स्थितियाँ तथा शिक्षण प्रणाली महिला सशक्तिकरण की दिशा में बाधा बनी हुई है। इन बेड़ियों को तोड़ना होगा, जिससे ज्ञान और सूचनाओं पर आधारित समाज के उत्थान में नारी भी अपनी भूमिका का निर्वहन कर सके।

स्वतंत्रता के पश्चात महिला संगठनों एवं सरकारों द्वारा निरंतर प्रयास के परिणामस्वरूप महिलाओं में शिक्षा का प्रसार हुआ। उनमें जागृति आई तथा उनका आत्मविश्वास बढ़ा है। इसके विभिन्न क्षेत्रों में भारतीय महिलाओं ने अपना परचम लहराया है। अपनी उपलब्धियों एवं क्षमताओं के कारण महिलाओं ने देश के सर्वोच्च संवैधानिक पदों को सुशोभित किया है। महामहीम श्रीमती द्रोपदी मुर्मू इसका ज्वलंत उदाहरण है। सशक्त इरादा एवं अनुशासित जीवन ने उन्हें सफलता के शिखर तक पहुँचाया है। वैश्विक प्रतिस्पर्धी परिदृश्य में भारतीय समाज को सजग रहकर नारी उत्थान हेतु प्रयासरत रहने की आवश्यकता है।

नारी सशक्तिकरण की बात होने पर सभी का ध्यान महिलाओं की आर्थिक उन्नति एवं राजनीतिक भागीदारी की ओर जाता है, जबकि सामाजिक उत्थान या बराबरी नारी सशक्तिकरण का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है। कानूनी तौर पर महिलाओं को पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त है, परंतु सामाजिक समरसता के अभाव में यह सारे कानून निष्फल हो जाते हैं। महिलाओं को यह समझना होगा कि यदि सभी महिलाएँ संगठित होकर

किसी भी कार्य को करती है तो वह किसी भी क्षेत्र में सफल हो सकती है, क्योंकि महिला स्वयं में ही सशक्त है, आवश्यकता है उनके भीतर आत्मविश्वास जागृत करने और आत्म निर्भर होने के अवसर प्रदान करने की।

वर्तमान में अनेक महिला संगठन है जो समाज और देश के उत्थान हेतु कार्यरत है। अमरकांत की महिला संगठन पर आधारित 'लहरें' उपन्यास नारी सशक्तिकरण का अनूठा उदाहरण है। इस उपन्यास में बच्ची देवी नामक, कुरूप, ग्रामीण, अशिक्षित स्त्री का विवाह नौकरी पेशा पुरुष से हो जाता है। वह अनजान शहर में पति के प्रेम से वंचित अपने आप को अकेला महसूस करती है। मोहल्ले की स्त्रियों के संपर्क में आने के बाद उसके अंदर बदलाव आता है। मोहल्ले की सरोज बाला सभी स्त्रियों को संगठित करती है और एक 'मिलनी' नामक संस्था का निर्माण करती है। इस संस्था का उद्देश्य स्त्रियों को शिक्षा एवं रचनात्मक कार्य को सीखने के लिए प्रेरित करना है। इस संस्था में शामिल स्त्रियाँ जिस कार्य में निपुण हैं, उसे वह कार्य को दूसरी स्त्रियों को सीखना होगा। सुमित्रा इस संस्था की गंभीर स्वभाव की स्त्री पात्र है। वह इस संस्था से जुड़कर अत्यंत खुश है, क्योंकि– "आम स्त्रियों के बीच थोड़ा भी सार्थक कार्य करना और उनमें स्वाभिमान तथा स्वावलंबन की भावना जगाने की कोशिश करना श्रेयकर तथा बेहतर विकल्प लगता है।"[3] जिससे वह स्त्रियाँ सामाजिक, पारिवारिक कार्यों में पुरुष की सहयोगिनी बन सकें। अंत में बच्ची देवी के पति की तबीयत खराब होने पर सभी महिलाएँ एक एकजुट होकर उसका ध्यान रखते हैं। यह उपन्यास उन असंख्य महिलाओं को जागृत करती है, जो कूपमंडूक बनी हुई हैं।

वर्तमान में मध्यप्रदेश शासन ने भी 'स्व सहायता समूह' योजना के अंतर्गत महिलाओं को एकजुट होकर कार्य करने के लिए एक अनूठी पहल की है। 'स्व सहायता समूह सम्मेलन' में माननीय मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान का वक्तव्य है कि– "मध्य प्रदेश में स्व सहायता समूह सामाजिक परिवर्तन के आन्दोलन का नेतृत्व करें। महिला स्व सहायता समूह को ही महिला सशक्तिकरण का आन्दोलन बनाया जाएगा।"[4] इस प्रकार जब तक लड़कियों को योजनाबद्ध तरीके से जीवन पथ पर चलने में मदद नहीं की जाएगी। तब तक उन्हें कामयाबी पाने में अड़चने आती रहेगी। इसके लिए समस्त मानव जाति को लड़कियों के प्रति सामाजिक नकारात्मक मानसिकता से ऊपर उठकर सोच में बदलाव लाना आवश्यक है।

नारी सशक्तिकरण के संदर्भ में यह बात भी जान लेना आवश्यक है कि सशक्तिकरण का अर्थ पुरुषों से होड़ करना नहीं है। पुरुषों की तरह पोशाक पहनना, बाल कटवाना, धूम्रपान करना व मदिरापान करना आदि सशक्तिकरण के नहीं बल्कि अनैतिकता के परिचायक हैं। हमारा देश वर्षों तक गुलाम रहा है। आज राजनैतिक आजादी के बावजूद हमारा समाज मानसिक गुलाम बना हुआ है। पाश्चात्य सभ्यता को अपना कर भटकाव की ओर बढ़ रहा है। हम विदेशी भाषा विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान को जरूर अध्ययन करें, परंतु जो गतिविधियाँ हमारी सभ्यता एवं संस्कृति के विरुद्ध हो या जिनसे हमारा नैतिक पतन हो उनसे दूर रहना ही हितकर है।

स्त्रियों को सशक्त होने के लिए व्यक्तित्व विकास की आवश्यकता है न कि नकल करने की। हम यह भली–भाँति जानते हैं कि चरित्र निर्माण और स्त्री सुरक्षा एक चुनौती पूर्ण मुद्दा है। यह कामकाजी महिलाओं की सबसे बड़ी समस्या है। वर्तमान समय में महिलाएँ घर के साथ ही बाहर भी काम करती है। नौकरी पेशा महिला को तो कभी–कभी रात में भी आना जाना पड़ता है। इस प्रकार की स्थिति में उसके साथ छेड़–छाड़, यौन उत्पीड़न और अनैतिक घटनाएँ घटने की संभावनाएँ अधिक रहती है। अतः नारी सुरक्षा के बिना महिला सशक्तिकरण संभव नहीं है। अपनी सुरक्षा के लिए स्त्री को किसी दूसरे पर निर्भर नहीं होना चाहिए। उसे स्वयं

अपनी रक्षा के लिए सचेत होना पड़ेगा। शासन के द्वारा नारी को आत्मरक्षा के लिए अनेक प्रशिक्षण दिए जा रहे हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि एक ओर जहाँ हम समाज को नारी के प्रति संवेदनशील होने की बात करते हैं। वहीं दूसरी ओर नारी को स्वयं अपने स्वाभिमान के लिए सजग एवं तत्पर रहना होगा। भारतीय नारी मर्यादा एवं नैतिकता के दायरे में स्वयं सशक्त है। उसे अपना आत्मविश्वास जगाने की आवश्यकता है। स्त्री एवं पुरुष दोनों एक दूसरे के पूरक है। समय के साथ हमारे आचार–विचार में परिवर्तन होना एक सतत प्रक्रिया है, परंतु जीवन के मूल सिद्धांतों से भटकाव दोनों के लिए ठीक नहीं है। यहाँ सवाल बराबरी करने का नहीं है, साथ–साथ चलने का है। कर्तव्यों के बंधन से मुक्त अधिकार भटकाव की ओर ले जाएगा। जो समाज एवं देश के लिए घातक सिद्ध होगा। जब तक हम एक दूसरे का सम्मान, समर्थन, विश्वास एवं सहभागिता का सामंजस्य स्थापित नहीं करेंगे, तब तक परिवार, समाज एवं देश का भला नहीं हो सकता है। नारी सशक्तिकरण हेतु कानून में प्रदत्त अधिकारों का तर्कसंगत प्रयोग करना देश व समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए जीवन पथ पर आगे बढ़ना ही नारी का ध्येय होना चाहिए। यही नारी सशक्तिकरण का मूल मंत्र है।

सन्दर्भ-सूची :-

1. अमरकांत –ग्रामसेविका, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008, पृष्ठ क्र. 19
2. पूर्ववत, पृष्ठ क्र. 42
3. अमरकांत–लहरें, अमर कृतित्व प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008, पृष्ठ सं. 78
4. रोजगार और निर्माण, भोपाल, वर्ष–34, अंक–35, दिनांक 04/09/2017 से 10/09/2017, पृष्ठ सं. 1

shakunppt@gmail.com

मो.नंबर– 9977358559

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 109-113

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ज्ञानपीठ पुरस्कृत हिन्दी साहित्यकारों में अस्मिता मूलक विमर्श

एमडी मतीन

हिन्दी स्नातकोत्तर एवं अनुसंधान विभाग, गुलबर्गा विश्वविद्यालय, कलबुरगि (कर्नाटक)

अस्मिता विमर्श का अर्थ होता है– आत्मनिर्णय, आत्मा व्यक्ति का प्रश्न और अपने अस्तित्व का बोध। अस्मिता शब्द जहाँ निजत्व से परिचय करवाता है, वहीं जीवन के दूसरे पहलुओं से भी इसका संबंध देखा जा सकता है, जिस्का समय के हिसाब से उस्का रूप परिवर्तित होता रहता है। व्यक्ति अपनी अस्मिता को प्राप्त करने के लिए अजीवन संघर्षरत रहता है। विचारधारा और चिंतन की दुनिया ने अस्मिता के प्रश्न को केंद्र में लाकर खड़ा कर दिया है।

हिन्दी साहित्य में अस्मितामूलक विमर्श के अंतर्गत वे सभी विषय आते हैं जिन्हें मनुष्य की अस्मिता से जोड़कर देखा जाता है अतरू जिन्हें हाशिए पर लाकर छोड़ दिया गया। भाषा, धर्म, लिंग, वर्ण, जाति इत्यादि विषय अस्मितामूलक विमर्श के आधार है। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, वृद्ध विमर्श, थर्डजेंडर विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श आदि इस्के प्रमुख उदाहरण है।

ज्ञानपीठ पुरस्कृत हिन्दी साहित्यकारों के साहित्य में एक विशेष रूप अस्मितामूलक विमर्श द्वारा समाज में परिवर्तन लाने की प्रक्रिया को देखा जा सकता है। ज्ञानपीठ पुरस्कृत हिन्दी साहित्यकार सुमित्रानंदन पंत, रामधारीसिंह दिनकर, अज्ञेय, महादेवी वर्मा, नरेश मेहता, निर्मल वर्मा, कुँवरनारायण, अमरकांत, श्रीलाल शुकला, केदारनाथ सिंह और कृष्णा सोबती है इन साहित्यकारों के साहित्य में विविध अस्मितामूलक विमर्श को निम्लिखित रूप से देखाजासकता है। जिससे हम विविध विमर्श के सहारे अच्छा आधुनिक समाज निर्माण कर सकते हैं।

सुमित्रानंदन पंत के चिदंबरा काव्य संकलन के 'ग्राम युवती' की पंक्तियों में स्त्री विमर्श देखा जा सकता है। रे दो दिन का उसका यौवन। दुःख से पिस, दुर्दिन से घिस, जर्जर हो जाता उसका तन। युवती का यौवन किस तरह क्षण भर की खुशिया पाकर दुःख से घिस जाता है बताते हुए हमे यहाँ सोंचने पर पंत जी ने मजबूर किया है– क्यों अएसा होता है? क्या ये सही है? हमें क्या करना चाहिए? इन प्रशनों का हल हम स्त्री विमर्श के के द्वारा ढूंढ सकते है।[1]

रामधारी सिंह दिनकर जी के उर्वशी काव्य में श्बाल विमर्शश्को भी देखा जा सकता है। उर्वशी काव्य के चौथे अंक में उर्वशी अपना नवजात शिशु च्यवन ऋषि की पत्नी सुकन्य को लालन–पालन के लिए सौंप देती है। पाँचवे अंकमें उर्वशी–पुरुरवा के पुत्र आयु को प्रतिष्ठानपुर ले आती है। भरत गुनि का शाप प्रतिफलित होता

है। उर्वशी अदृश्य हो जाती है और पुरुरवा सन्यास ले लेती है। शिशु का अपनी माँ–बाप से अलग होना ये बहोत बड़ी पीड़ा है, अपनी माँ से जो प्रेम शिशु को मिलता है वहा किसि और सेमिलना असंभव है। शिशु की क्या गलती है? जो उसे अपने माता–पिता से अलग रहना पड़ता हैइस प्रकार हम दिनकर जी के उर्वशी काव्य मे बाल विमर्श देख सकते है।[2]

अज्ञेय जी का 'शेखर : एक जीवनी' उपन्यास में पुरुष पात्रों की परिस्थितियों से पुरुष विमर्श को अंकित कर सकते हैं। शेखर अपने समय के वैचारिक द्वंदौ जैसे– व्यक्ति और समाज, स्त्री और पुरुष, पाश्चात्य और भारतीय, नैतिक और अनैतिक आदि से टकराता है।' पिता ने कान के पास घूँसा लगाते हुए कहा, 'पहले क्यों नही कहा था।' फिर एकाएक उनका स्वर गया। बोले 'वह गई चली गई...'ये शब्द मानो उन्हें और भी जड़ित करने लगे। उन्हों ने कहा, 'गई–जरा सी बात पर यांही लड़कर चली गई...। –– तीर से आहत उठने विवश हिरन की तरह वे शेखर की और देखने लगे, और बोले, 'शेखर तुम्हारी माँ चली गई हुए...' गिर कर नीचे ही बैठे हुए शेखर को बालों से पकड़कर उठाते और बाहर की ओर ढकेलते उन्होंने कहा 'मरते क्यों नहीं तुम जाओ उसे ढूँढो!' किवाड़ को लात मारकर खोलते हुए कहा, 'किधर गई थी वह?' और बाहर दौड़ पड़े। शेखर एक और गया, वे दूसरी ओर। नौकर भी कुछ समझकर एक और चल पड़ा....। अज्ञेय जी के इन पंक्तियों से समझ सकते है कि पुरुष भी समाज मे शोषित होता है जिससे वो जिंदगी से घृणा करने लगता है।[3]

महादेवी वर्मा जी के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने कहा है कि –'छायावादी कहें जाने वाले कवियों में महादेवी वर्मा जी ही रहस्यवाद के भीतर रही है।' यह कथन सही है क्योंकि वर्मा जी के संध्यगीत काव्य संकलन की– मैं नीर भरी दुःख की बदली! पंक्तियों में दो प्रकार के भाव प्रकट होते है– एक बादल के प्रति होता है तो दुसरा वंदना भरी स्त्री के भाव पक्ष भी प्रकट होते हैं। बदलों की गरजना मे पिडित और चोट खाए हुए संसार के स्त्रियों की पिड़ा अभिव्यक्त हो रही है। आँसु गृहणी के पलकों से नदी के समान बहने को आतुर है, वह अपने विरह वेदना को आँसुओं के रूप में प्रवाहित करना चाहती है। ठीक उस प्रकार जिस प्रकार बदली जल बूँदों को। इसमें पर्यावरण विमर्श और स्त्री विमर्श नज़र आता है।

नरेश मेहता जी की 'किसका बेटा' कहानी को गरीब विमर्श के अंतर्गत लिया जा सकता है। इस कहानी में गरीब भिखारिन की शोचनिय स्थिति को दर्शाया गया है। मँगतन कुड़ी अपने गंदे घाघरे को दोनों टांगों के अंदर से पीछे फेंकते हुए हाथ धोने की जगह बैठ गई। पीठ पर बदबू देते हुए कपड़े में उसका बच्चा बँधा हुआ था। जिस पर मक्खियां आकर बैठ रही थी। 'देदे रे बाबु, बासी बचा खुचा बच्चा भूखा है। 'ओ ए वीर सरदार! अपनी रोटियों में से कुछ देदे रे।' सरदार मँगतन से कहता है 'ओ गाना गा दे कुड़ीए ! 'छुप–छप छैंयाँ, रोटी बचेगी तो दे देंगे। इतने दिनो कहाँ थी? 'पहले कुछ बचा खुचा बासी देदे बाबू! फिर जो तूं केगा गा दूँगी।' बहोत सारे लोग जामा होकर भिखारिन का हँसी–मज़ख उड़ारते है– फिर एक कहता है 'क्यों सरदार जी! इससे शादी करोगे? बीवी की बीवी और मनाफे में बच्चा 'सभि लोग फिर हँस ही रहे थे भिखारिन झटका खाकर उठी। वह एडियों पर ऐंठ गई। 'ए बाबु ! बहोत बाप वाला नबन, समझे। अपनी माँ से पूछना कि तु किसका बेटा है? नाराज न होना.––. गरीबों के बेटों का बाप नहीं होता बाबु! वे माँ के ही बेटे होते है।' इस तरह गरीब की शोचनिया स्थिति समाज में मौजूद है इसे दूर करना हमारा कर्तव्य होना चाहिए।[5]

निर्मल वर्मा जी के 'अन्तिम अरण्य' उपन्यास में 'वृद्ध–विमर्श' को देख सकते हैं। साहिब जो वृद्ध हो चुके

है उनके स्वभाव में बदलाव आ गया है और वो थोड़ी–थोड़ी देर मे अपनी कही हुई बाते भूल जाते है। उन्हीं मन में बहुत बेचैनी होती है, कभी बो बहुत बाते करते है तो कभी खामूश ही रहते है, वह अपने मे एक डर सा महसूस करते हैं और बेसमझी बाते। उपन्यास में इस प्रकार वृद्ध की समस्याओं को बताया गया है। 'एक अजीब सी हुँकार ऊपर आती है, दरवाजे को भेद कर बाहर बरामदे में एक पीले फेनिल ज्वार की तरहा गूंजने लगती है – गों, गों, गों....झाड़ी में पड़ा कोई घायल पशु बाहर आने के लिए तड़प रहा हो।' 'साहिब जी बिस्तर से उठने की कोशिश कर रहे हैं और मुरलीधर उन्हें लिटाने की कोशिश कर रहा है। वह बार–बार अपना हाथ छुड़ा कर नीचे आना चाहते है और मुरलीधर उन्हें वापस बिस्तर पर खींच लेता है।[6]

कुँवर नारायण का पहला काव्य संग्रह 'चक्रव्यूह' में समाजिक विमर्श अर्थात सामाजिकता से घिरे व्यक्ति की एक दी हुई निश्चित स्थिति को कह सकते है। कुँवर 'नारायण जी का 'चक्रव्यूह' आधुनिकता की मनोदशा का सूचक है– 'में नवगत वह अजित अभिमन्यु हूँ। प्रारब्ध जिसका गर्भ ही से हो चुका निश्चित / अपरिचित जिन्दगी के ब्यूह में फेंका हुआ उन्माद बाँधी पंक्तियों को तोड़ / क्रमशः लक्ष्य तक बढ़ता हुआ जयनाद।' यह आज की सामाजिकता से धीरे व्यक्ति की एक दी हुई निश्चित स्थिति है। पर व्यक्ति लक्ष तक बढ़ेगा ही, किंतु इसे कुछ निग्रह (रिजरवेशन) के साथ ही स्वीकारा जा सकता है। इन पंक्तियों में अनजाने ही जो अन्तविरोध आ गया है वह कुँवर नारायण का ही नहीं है अनेक अन्य कवियों और युग का भी है।

नचिकेता का परिवेश भी अभिमन्यु के चक्रव्युह से कम जटिल नही है। नचिकेता अपने ढंग से ब्यूह को तोड़कर लक्ष्य तक पहुँच जाता है। वस्तुतः नचिकेता निजी सुख–सुविधा से आगे किसी ऐसे मूल्य या बोध की तलाश में है कि 'मर्त्य होते हुए भी मनुष्य किसी अमर अर्थ में जी सकता है।' वाजश्रवा भौतिक जीवन का विश्वासी है जो आज का युग है और नचिकेता आत्मा के सत्य तक सार्थकता तक पहुँचना चाहता है। वह मृत्यु–बोध से आत्मा–बांध या जीवन बोध पाता है। संपूर्ण जीवन को देकर ही सम्पूर्णजीवन को पाया जाता सकता है।[7]

अमरकांत का दोपहर का भोजन गरीबी से जूझ रहे एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार विमर्श की कहानी है। इस कहानी में समाज में व्याप्त गरीब मध्यवर्गीय परिवार कोदेखा गया है। मुंशी जी के पूरे परिवार का संघर्ष भावी उम्मीदों पर टिका हुआ है। सिद्धेश्वरी गरीबी के अहसास को मुखर नहीं होने देती और उसकी आँच से अपने परिवार को बचाए रखती है। शिल्प की सादगी और सहज संकेतों के माध्यम से कथा को प्रस्तुत करने की कला का उत्कृष्ट रूप इस कहानी में देखने को मिलता है।

अचानक उसे मालूम हुआ कि बहुत देर से उसे प्यास लगी है। वह मतवाले की तरह उठी और गगरे से लोटा भर पानी लेकर गट गट चढ़ा गई। खाली पानी उसके कलेजे में लग गया और वह 'हाय राम!' कहकर वहीं ज़मीन पर लेट गई। लगभग आधे घंटे तक वहीं उसी तरह पड़ी रहने के बाद उसके जी में जी आया। वह बैठ गई, आँखों को मल–मलकर इधर–उधर देखा और फिर उसकी दृष्टि ओसारे में अध–टूटे खटोले पर सोये अपने छः वर्षीय लड़के प्रमोद पर जम गई। लड़का नंग–धड़ंग पड़ा था। उसके गले तथा छाती की हड्डियाँ साफ़ दिखाई देती थीं। उसके हाथ–पैर बासी ककड़ियों की तरह सूखे तथा बेजान पड़े थे और उसका पेट हँडिया की तरह फूला हुआ था। उसका मुँह खुला हुआ था और उस पर अनगिनत मक्खियाँ उड़ रही थीं। वह उठी, बच्चे के मुँह पर अपना एक फटा, गंदा ब्लाउज़ डाल दिया और एक–आध मिनट सुन्न खड़ी रहने के बाद बाहर

दरवाज़े पर जाकर किवाड़ की आड़ से गली निहारने लगी। बारह बज चुके थे।

रामचंद्र, मोहन और मुंशी चंद्रिका प्रसाद परिवार की वास्तविकता से अच्छी तरह परिचित हैं। दोपहर के भोजन के समय सिद्धेश्वरी के बार–बार आग्रह करने पर भी वे रोटी लेने से मना कर देते हैं। उन्हें पता है कि यदि वे और रोटी ले लेंगे तो घर के दूसरे सदस्यों को भूखा रहना पड़ेगा। इसलिए जहाँ रामचंद्र ने कहा कि उसका पेट भर गया है वहीं मोहन ने रोटी अच्छी न बनी होने का बहाना किया। मुंशी जी ने भी यह बहाना कर दिया कि नमकीन चीजों से उनका मन ऊब गया है। इस प्रकार तीनों ने कोई–न–कोई बहाना बनाकर रोटी लेने से मना कर दिया। इससे उनकी इस विवशता का पता चलता है कि भूख रहते हुए भी अभाव के कारण वे रोटी लेने से मना कर देते हैं।[8]

श्री लाल शुक्ला जी का रागदरबारी उपन्यास 'ग्रामीण जीवन' की समस्याओं को प्रस्तूत करता है। जिससे शहरी और ग्रामीण जीवन में बहोत अंतर होने के कारण ग्रामीण के लोग शहर चले जा रहे है। शिवपाल गंज के माध्यम से हम ग्रामीण विमर्श को भी देख सकते हैं।

थोड़ी देर में ही धुंधलके में सड़क की पटरी पर दोनों ओर कुछ गठरियां–सी रखी हुई नजर आयीं। ये औरतें थीं, जो कतार बांधकर बैठी हुयी थीं। वे इत्मीनान से बातचीत करती हुयी वायु सेवन कर रहीं थीं और लगे हाथ मल–मूत्र विसर्जन भी। सड़क के नीचे घूरे पटे पड़े थे और उनकी बदबू के बोझ से शाम की हवा किसी गर्भवती की तरह अलसायी हुयी–सी चल रही थी। कुछ दूरी पर कुत्तों के भौंकने की आवाजें हुईं। आंखों के आगे धुएं के जाले उड़ते हुये नज़र आये। इससे इन्कार नहीं हो सकता था कि वे किसी गांव के पास आ गये थे। यही शिवपाल गंज था।

रूप्पन बाबू स्थानीय नेता थे। उनका व्यक्तित्व इस आरोप को काट देता था कि इण्डिया में नेता होने के लिए पहले धूप में बाल सफ़ेद करने पड़ते हैं। उनके नेता होने का सबसे बड़ा आधार ये था कि वे सबको एक ही निगाह से देखते थे। थाने में दरोगा और हवालात में बैठा हुआ चोर– दोनों उनकी निगाह में एक थे। उसी तरह इम्तहान में नकल करने वाला विद्यार्थी और कालिज के प्रिंसिपल उनकी निगाह में एक थे। वे सबको दयनीय समझते थे, सबका काम करते थे, सबसे काम लेते थे। उनकी इज्जत थी कि पूँजीवाद के प्रतीक दुकानदार उनके हाथ सामान बेचते नहीं, अर्पित करते थे और शोषण के प्रतीक इक्केवाले उन्हें शहर तक पहुँचाकर किराया नहीं, आर्शीर्वाद माँगते थे। उनकी नेतागिरी का प्रारंभिक और अंतिम क्षेत्र वहाँ का कालिज था, जहाँ उनका इशारा पाकर सैकड़ों विद्यार्थी तिल का ताड़ बना सकते थे और जरूरत पड़े तो उस पर चढ़ भी सकते थे। वे पैदायशी नेता थे क्योंकि उनके बाप भी नेता थे। उनके बाप का नाम वैद्यजी था।

केदारनाथ सिंह दक्षिण भारत की दलित कविता पर लिखते जो टिप्पणियाँ की हैं वे इस बात से अवगत कराती हैं कि अपनी कविताओं में लोक–संवेदना को रचते हुए जो कवि दलित समस्याओं से विमुख होता या एस्केप करता हुआ नज़र आता है, वह इस समस्या पर बहुत गंभीर है. इस अंदेशो के साथ कि इन मसलों पर मुखर न होने की उसकी अपनी सामयिक, जाति–वर्णगत या अन्य प्रकार की विवशताएँ हो सकती हैं। कवि केदारनाथ सिंह का यह 'थोड़ा सा दलित विमर्श' उनके अपने गाँव के बचपन के मित्र जगन्नाथ की मृत्यु पर लिखे गए संस्मरणात्मक आलेख में भी मिलता है। सीमाएँ ये हैं कि लोकजीवन में दलित भी है और उनकी कविताओं में वह कहीं नज़र नहीं आता अपनी कविताओं में केदारनाथ सिंह जिस गाँव के राग और अतीत व्यामोह

में छटपटाते हैं, उसी गाँव को अंबेडकर ने 'जातीय भेदभाव का नर्क' कहा था।

कृष्णा सोबती का जिन्दगीनामा मे किसान विमर्श को भी देख सकते हैं। पीछे इतिहास की बेहिसाब तहें। बेशुमार ताकतें। जमीन जो खेतिहर की है और नहीं है, यही शाहों की नहीं है मगर उनके हाथों में है। जमीन की मालिकी किसकी है? जमीन में खेती कौन करता है? जमीन का मामला कौन भरता है? मुजारे आसामियाँ। इन्हें जकड़नों में जकड़े हुए शोषण के वे कानून जो लोगों को लोगों से अलग करते हैं। लोगों को लोगों में विभाजित करते हैं। जिन्दगीनामा के पन्नों में बादशाह और फकीर, शहंशाह, दरवेश और किसान एक साथ खेतों की मुँडेरों पर खड़े मिलेंगे। सर्वसाधारण की वह भीड़ भी जो हर काल में, हर गाँव में, हर पीढ़ी को सजाए रखती है।

अनेक समस्याओं के कारण किसान विवश होकर अपनी ज़मीन को छोड़ने पर मजबूर हो जाते हैं। दूध–भरी छातियों से अब दूध नहीं खून टपकता है, देखो पलटकर मत, देखो दौड़ चलो, छोड़ चलो इस पानी को इस धरती को जिसने हर मौसम, हर बहार में सूरमाओं की पनीरी उगाई थी, जिसने हाड़–मांस के इन्सानों में मेहनत करने और जिन्दगी को जीभर–भर प्यार करने कीललक जगाई थी, लौ लगाई थी अलविदा।

सहायक ग्रंथ सूची :-

1. चिदंबरा – सुमित्रानंदन पंत राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली।
2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास – डा. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली।
3. शेखर : एक जीवनी पहला भाग – अज्ञेय भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, बनारस।
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास – अचार्य रामचंद्र शुक्ला – कमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. सांध्यगीत – महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन।
6. किसका बेटा (कहानी) – नरेश मेहता।
7. अन्तिम अरण्य (उपन्यास) – निर्मल वर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास – डॉ. बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. दोपहर का भोजन (कहानी) अमरकांत।

एमडी मतीन
शोधार्थी, हिन्दी स्नातकोत्तर एवं अनुसंधान विभाग,
गुलबर्गा विश्वविद्यालय कलबुरगि, कर्नाटक –585106.
No : 9845998137, md.mateen984@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 114-119

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रकाश मनु के बाल नाटकों में जीवन–मूल्य एवं शिक्षा

('हमारा हीरो शेरू', 'मुझसे दोस्ती करोगे' और 'कहानी नानी की' नाटकों के विशेष संदर्भ में)

अमित कुमार, शोधार्थी, हिन्दी विभाग,

रमेश यादव, सहायक प्रोफेसर,

विजयसिंह पथिक राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कैराना जनपद, शामली।

सारांश

प्रस्तुत शोध ''प्रकाश मनु के बाल नाटकों में जीवन–मूल्य एवं शिक्षा'' में हम पाते हैं कि प्रकाश मनु जी बाल साहित्य के कुशल चितेरे माने जाते है। बाल साहित्य की कोई–सी भी विधा हो चाहे वह कविता हो, कहानी हो, उपन्यास हो, नाटक हो या अन्य विधा हो मनु जी में बच्चों को बांधे रखने में और बातों–बातों में जीवन से जुड़ी अनेक बातों को सीखाने की अपूर्व क्षमता है। अपने बाल नाटकों में मनु जी चाहे छोटे–छोटे संवादों में खेल–खेल में बच्चों को बहुत कुछ सीखा देते है। मनु जी में एक मुख्य विशेषता यह है कि अपने नाटकों में हो या फिर बाल साहित्य की अन्य किसी विधा में, वे बच्चों को पुस्तक पढ़ने के प्रति विशेष जागृत करते हैं किसी–न–किसी माध्यमों से वे बच्चों के मन में किताबों के प्रति एक जागरूकता पैदा करते रहते हैं और किताबों के महत्व उनकी आवश्यकता आदि को समझाते रहते है। यहीं उनके नाटकों में भी विशेष रूप से देखने को मिलता है।

हिंदी में बाल मनोवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए आदिकाल और भक्तिकाल में पदों का सजृन होने लगा था। आदिकाल में अमीर खुसरो के कुछ पदों में इस प्रकार की कुछ विशेषताएँ दृष्टिगोचर होने लगी थी। भक्तिकाल में आकर तो राम और कृष्ण की बाल मनोवृत्तियों एवं बाल छवियों को लेकर अनेक कवियों ने विस्तृत फलक पर काव्य–सृजन किया लेकिन हाँ अन्तर इतना ही रहा कि उन कवियों ने बाल मनोवृत्तियों एवं बाल चेष्ठाओं को ध्यान रखते हुए भी उसे बड़ो के लिए लिखे गये साहित्य में ही समाहित कर लिया था।

सूरदास, रसखान, नंददास, कुंम्भनदास, कृष्णदास आदि कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के जन्म, उनकी बाल्यावस्था तथा कृष्ण का अपने मित्रो के साथ किऐ गये विभिन्न क्रियाकलापों का सुन्दर और बालमोहक चित्रण अपनें काव्य में कर लिया था। इसमें सबसे अधिक सफलता मिली है महाकवि सूरदास जी को। ठीक इसी प्रकार रामभक्ति शाखा के प्रिय कवियों में तुलसीदास, नागरी दास, अग्रदास जी ने महाप्रभू राम की बाल छवियों का सुन्दर वर्णन किया है जिनमें तुलसीदास एक सफल, प्रसिद्ध एवं उच्च कोटि के कवि माने जाते रहे है। जैसे–जैसे समय

आगे बढ़ता रहा तो समय के साथ ही साहित्यकारों का ध्यान भी बाल साहित्य की ओर विशेष रूप से बढ़ता गया। अब साहित्यकारों के मन में यह बात विशेष रूप से बैठ गई थी कि बच्चें भविष्य के कर्णधार है और इन्हें शिक्षित करना, इनका ध्यान पुस्तकों की ओर आकृष्ठ करना सहित्यकारों का कर्तव्य है अनेक बाल साहित्यकारो ने विस्तृत फलक पर बाल साहित्य का सजृन किया। इनमें हिंदी के उच्च कोटि के कवियो का भी विशेष योगदान रहा है। आज के समकालीन कवियो मे भी अनेक ऐसे कवि है जो बाल साहित्य के सजृन में लगे हुए है उनमें से ही एक प्रसिद्ध चर्चित बाल साहित्यकार है प्रकाश मनु जी।

पाठ्य पुस्तकों मे ऐसे बाल साहित्य का समावेश करना कि बालक पाठय पुस्तकों को खेल–खेल में और विशेष रूचि लेकर पढ़े। इन्ही विशेषताओं को ध्यान मे रखते हुए प्रकाश मनु ने बाल साहित्य कि परिभाषा इस प्रकार से दी है **''बाल साहित्य वह साहित्य है जो विशेष रूप से बच्चों के लिए लिखा जाए या जो बच्चों को सम्बोधित हो तथा जिसके केन्द्र में बच्चें और उनका बहुरंगी संसार हो।''**[1]

प्रारम्भ में दादी–नानी बच्चों को अनेक रोचक और आश्चर्यजनक कहानियाँ सुनाया करती थी जिसमें परियों, भालू बोलने वाले पेड़–पोधें आदि के किस्से, कहानियाँ हुआ करती थी, जिसकों बच्चें की रूचि को ध्यान मे रखते हुए साहित्य में स्थान दिया जाने लगा और एक तरह से इन्ही को बाल–साहित्य माना और समझा जाने लगा परन्तु आधुनिक युग के कवियों ने यह महसुस किया कि बाल–साहित्य में कुछ इस तरह का समावेश किया जाऐ कि बाल पाठक अपने वर्तमान युग की समस्याओं से भी जुड़ पाएं एवं बातों–बातों में उन्हें समझे और उनका मनोरंजन भी हो। वे एक काल्पनिक दुनिया में ही न खोकर रह जाए। मोटे तौर पर देखे तो बाल साहित्य की शुरूआत बाल कविताओं से ही हुई इन कविताओं में अपना विशेष योगदान देने वालो मे प्रथम खेमें के प्रमुख कवि है श्रीधर पाठक, हरिऔद्य जी, मैथिली शरण गुप्त जी, मन्नम द्विवेदी, बालमुकुंद गुप्त आदि चोटी के प्रसिद्ध कवि हुए है इनकी बहुत–सी रचनाऐं आज भी पाठकों के दिलों–दिमाग में बैठ गई है। जिसका एक प्रमाणिक उदाहरण है मैथिली शरण गुप्त जी की 'सर्कस' कविता (**''होकर कौतुहल के बस में, गया एक दिन मैं सर्कस में''**) जिसने बाल पाठकों पर अपनी गहरी छाप छोड़ी है। कविता के साथ–साथ अब बाल साहित्य की हर विद्या में साहित्यकारों ने लिखना शुरू कर दिया था जिसमें बाल कहानियाँ, बाल नाटक, ज्ञान–विज्ञान, फंतासी की कहानियाँ आदि। साथ ही विभिन्न साहित्यकारों ने बाल साहित्य के स्वरूप एवं उसके विकास पर भी आलोचनात्मक दृष्टि डालनी शुरू कर दी है। वर्तमान तक आते–आते बहुत से बाल साहित्यकारों ने बाल साहित्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर अपना विशिष्ट स्थान स्थापित कर लिया है, जिसमें प्रमुख कवि है दामोदर अग्रवाल, शेरजंग गर्ग, बालस्वरूप राही, प्रयाग शुक्ल, रमेश कौशिक, दिविक रमेश एवं प्रकाश मनु जैसे उत्कृष्ट कोटि के साहित्यकार है जो बाल साहित्य की कमान थामे हुए है तथा कुछ अपनी महती भूमिका निभाकर इस संसार से विदा ले गये है।

प्रकाश मनु जी उत्कृष्ट कोटि के बाल साहित्यकार है इन्होनें बाल साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, ज्ञान–विज्ञान की कहानियाँ आदि मे उल्लेखनीय लेखन कार्य किया है। इन्होनें पिछले चालीस–पैंतालिस वर्षों से बाल 'पत्रिका' 'नंदन' का सम्पादन कार्य कर बाल

साहित्य में अपना विशिष्ट योगदान दिया है। यदि प्रकाश मनु जी के बाल नाटकों की बात की जाए तो मनु जी मानो बाल नाटक लिखते नही वरन् उनमें जीते है, उनकें मन में मानो रचना करते समय अनेक बच्चे आकर बैठ जाते है जो उनके साथ खेलते है, बोलते हैं, एक–दूसरे से संवाद करते है। मनु जी के बाल नाटकों की विशेषता यह है कि वे उसमें कहानी, कविता, संवाद, गीतों आदि तत्वों का समावेश कर लेते है। नाटकों में बच्चे ज्यादा रमते है और छोटे–छोटे संवादों और सरल भाषा एवं शैली का आनन्द लेते हुए अंत में नाटकों से कुछ–न–कुछ शिक्षा ग्रहण करते है। प्रकाश मनु जी के नाटक तो अपने आप में अनोखे हैं ही प्रकाश मनु जी के नाटकों की विशेषता बताते हुए एवं उनके नाटको की प्रशंसा करते हुए **पिंकी बिरला जी** लिखती है कि **''मनु जी के बाल नाटकों के केन्द्र में स्वयं बच्चे है जो लीक से हटकर कुछ करना चाहते है। इन नाटको में हास्य–विनोद, खिलंदडापन, मनोरंजन, बालको की समस्याएँ, उलझनें है तो उनका अबोध मन भी है जो इन सभी उलझनों से मुक्त होने के लिए छटपटाता है।''**[2]

मनु जी के नाटकों में छोटे–छोटे संवाद है जो बच्चों के मन की तह तक जाकर उन्हें पढ़ने के लिए उत्सुक करते है और उनमें शिक्षा के प्रति लग्न व मेहनत की भावना जाग्रत करते है। प्रकाश मनु जी के नाटक बच्चों के जीवन–मूल्यों से जुड़े हुए नाटक है। उनके नाटकों मे माता–पिता के प्रति प्रेम, आदर–सत्कार है। उनके नाटक बड़ों के प्रति सम्मान की भावना जाग्रत कर बच्चों को उनके जीवन–मूल्यों एवं नैतिक आचरण की शिक्षा देते है। बाल नाटकों के विषय में चर्चा करते हुए प्रकाश मनु जी अपने बाल साहित्य के इतिहास में कहते हैं कि **''नाटक की एक दोहरी भूमिका है। पुस्तक के रूप में पढने पर जहाँ वह बच्चों को किसी एक सम्पूर्ण बाल–रचना का सुख और आस्वाद देता है, वहीं अक्सर मंच पर खेले जाने पर वह आप से आप बच्चों और अभिभावकों के बीच संवाद की अनोखी कडी बन जाता है।**[3]

मनु जी के नाटकों की भाषा सरल, सुरूचिपूर्ण एवं स्पष्ट है जो बच्चों को आकर्षक व रोचक भी लगे एवं बच्चों को आसानी से समझ भी आ जाए उन्हीं की एक नाट्य पुस्तक–

'हमारा हीरो शेरू'– नाटक से, जब पप्पू अपनी मम्मी से पाँच रूपये लेकर नीली गेंद लेकर दोस्तों के बीच खेलने जाता है और वह अपनी गेंद को देखकर कितना खुश हो रहा होता है। साथ ही पप्पू के मित्र भी कितने खुश हो रहे होते है। उनके कुछ संवाद के अंश देखिए–

पप्पू : (उत्साह के मारे हवा में उड़ता हुआ) गेंद..... मेरी गेंद। नीली गेंद।

सोनू : (दूर से चिल्लाकर) आ जा पप्पू, आ जा। हम खेलेंगे

गुड्ड़न : (मीठी आवाज में) अरे वाह! नीली गेंद कहाँ से लाया पप्पू?

पप्पू : अभी–अभी ला रहा हूँ हामिद अंकल की दुकान से पूरे पाँच रूपए की है, पाँच रूपए की।

धीरू : (ललचायी आँखों से) गेंद तो बड़ी सुन्दर है एक बार छूकर देख लूँ?

पप्पू : (खूब जोश में) एक क्या दस बार छूकर देख। मैं खेलने के लिए ही तो लाया हूँ

देबू : वाह, वाह, वाह.....! आओ भाई, आओ। खेल जमेगा प्यारा

टुलटुल : प्यारा और न्यारा

गुड्ड़न : टी–टी, टू–टू, टिट्टी।

धीरू : आओ प्यारे, आओ सारे.....हुर–हुर हुर्रे।

सच में, मनु जी के नाटकों के ये ऐसे संवाद बच्चों को अपनी ओर आकर्षित ही नहीं करते वरन् उन्हें अपने भाव में बहा ले जाते हैं।

जहाँ एक और प्रकाश मनु जी के नाटकों एवं उनके चंचल चुस्त संवादों ने बाल पाठकों का मन मोहा है और उनका मनोरंजन कराया है वहीं दूसरी ओर मनु जी के नाटकों के संवादों ने शिक्षा के प्रति भी बच्चों को जागरूक किया है और उनके मन में पढ़ाने के प्रति विशेष जागरूकता पैदा की है।

इसका एक उदाहरण उनके नाटक **'मुझसे दोस्ती करोगे'**[4] से देखिए जब गोपू उदास हो जाता है तो लाल परी गोपू को लाल फूलों वाली पुस्तक देती हुई गोपू से कहती है–

लाल परी : नही गोपू, उदास मत होओ। यह लो, मैं तुम्हारे लिए किस्से–कहानियों की एक प्यारी पुस्तक लाई हूँ। तुम इसमें से हर रोज एक कहानी पढ़ना। इसकी कहानियाँ कभी खत्म न होगी।

(गोपू ने पुस्तक हाथ में ली, उसकी खुशी का कोई ठिकाना न रहा। पुस्तक बहुत सुन्दर थी। उस पर सुन्दर–सुन्दर रंग–बिरंगे चित्र बने थे। नीचे सुन्दर अक्षरों में लिखा था, लाल फूलों वाली पुस्तक')

लाल परी : (मुस्कुराते हुए) गोपू, इस पुस्तक को सँभालकर रखना। जब तक तुम्हारे हाथ में लाल फूलोंवाली यह पुस्तक रहेगी, तुम कभी उदास नही होओगे।

गोपू : अच्छा लाल परी, अच्छा! यह पुस्तक तुम्हारी निशानी है, बड़ी प्यारी निशानी! मैं इसे सँभालकर रखूँगा।

इसमें से मैं हर रोज कहानियाँ पढ़ूँगा, नई–नई कहानियाँ। बातों–बातों में मनु जी कैसे बच्चों के हृदय में पढ़ने के प्रति रूचि जाग्रत करते है इसका उपरोक्त उदाहरण ही स्पष्ट है। प्रकाश मनु जी बाल हृदय की अतल गहराइयों तक पहुँचने वाले कुशल चितेरे है। वे बच्चों की इच्छाएँ, उनकी जरूरत, उनकी जागरूकता तथा बच्चों के मनोरंजनों के साधनों को बहुत अच्छे से जानते है कि बच्चा किस प्रकार की भाषा–शैली पसंद करते है, किन प्रकार के संवादो मे उन्हे ज्यादा मजा आता है तथा किस प्रकार के किस्से–कहानियों को नाटक मे पिरों कर बाल

पाठको योग्य बनाया जा सकता है। बाल नाटकों के विषय में मनु जी अपने **'हिंदी बाल साहित्य के इतिहास'** में कहते है कि–**बच्चे के मन और इच्छा संसार को समझने के लिहाज से तो बाल नाटकों का निर्विवाद महत्व है ही, क्योंकि किसी कविता या कहानी की तुलना में बाल नाटक में बच्चे को अपने भीतर की सर्वाधिक मुकम्मल अभिव्यक्ति मिलती है।**[5]

प्रकाश मनु जी के नाटकों की एक विशेषता यह है कि वे नाटकों के संवादो मे विशेष ध्वनियों का प्रयोग करते है जिससे नाटक और रोचक व आकर्षक बन पड़ते है। उदाहरण स्वरूप जैसे (हमारा हीरो शेरू में)

गुड्डनः टी–टी, टू–टू, टिट्टी।

धीरू : आओ प्यारे, आओ सारे.....हुर–हुर हुर्रे।,

(मुझसे दोस्ती करोगे में) हा–हा, हा–हा.....हा–हा–हा ही–ही, ही–ही.....ही–ही–ही, (कहानी नानी की में) नटी (नृत्य मुद्रा मे गरदन हिलाकर) ना! ना–ना–ना।

नट : तो क्या सरकस की तैयारी

नटी : न–न।

इस प्रकार के संवाद बच्चे भी पूरा आनन्द उठाकर बड़े मजे ले ले कर पढ़ते है। कहीं–कहीं तो प्रकाश मनु जी ने नाटकों में कहानी को पूरा काव्यात्मक रूप ही दे दिया है **''कहानी नानी की''** नाटक से कुछ अंश देखिए–

नानी : (मुस्कुराती हुई, कहानी को आगे बढाती है) फिर परियों ने छूम छनन–छन।

छूम छनन–छन, छुम छनन, छन,

सारी दुनियों को महकाया,

सोने –सा चंदा उग आया

फिर परियों ने नृत्य दिखाया

आहा, कैसा नृत्य दिखाया।

नट–नटी : (दोनों एकाएक नाटकीय मुद्राओं के साथ बाहर आ जाते हैं। फिर हाथ लहराकर बच्चों से.....)

देखो–देखो प्यारे बच्चो,

बढ़ती जाती अजब कहानी,

चढ़ती जाती अजब कहानी

हर बाधा से, हर मुश्किल से

लड़ती जाती अजब कहानी।

इस प्रकार हम देखते है कि प्रकाश मनु के कुछ नाटकों में काव्यात्मक शैली का समावेश हो जाने पर भी भाषा की दृष्टि से नाटक की कहानी के आगे बढते जाने में भी पाठकों के मन में कोई बाधा या अन्य किसी प्रकार का विघ्न नहीं पड़ा वरन् इस प्रकार के काव्यात्मक नाटकों को बच्चों ने और बाल पाठकों व बाल साहित्याकारों ने एक काव्यात्मक शैली में भाषा का पूरा रस ले–लेकर पढ़ा है और पूरे आनन्द के साथ पढ़ा है।

प्रकाश मनु के बाल नाटकों के विशेषताओं पर टिप्पणी करते हुए **पिंकी बिडला** जी लिखती है कि **''प्रकाश मनु के बाल नाटक ऐसे ही रसपूर्ण और मजेदार है, जो खेल–खेल में बडी बातें कह जाते हैं। इन नाटकों की भाषा आम बोलचाल की सरल, सुबोध भाषा है, जिसमें बचपन की चहक–महक और मस्ती है..... जिससे बच्चे खूब आनंद लेकर इन्हें पढ़ते है, और साथ ही अनायास बहुत कुछ सीखते भी हैं।''**[6]

इस तरह प्रकाश मनु जी के नाटकों के माध्यम से बच्चों का सर्वांगीण विकास होता है वे खेल–खेल में ही जीवन की विविध आवश्यकताओं, समस्याओं आदि से अवगत हो जाते तथा खेल–खेल में ही उनकी पढ़ने के प्रति रूचि भी बढती तथा साथ ही अनेक जीवन–मूल्यों को सीख जाते है जो छात्रों के विकास एवं भविष्य निर्माण में अपनी महती भूमिका निभाती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. हिंदी साहित्य ज्ञानकोश, भाग–5 प्रधान संपादक–शंभुनाथ, प्रकाशक : भारतीय भाषा परिषद, 36ए शेक्सपियर सरणी कोलकाता–700017, वाणी प्रकाशन, 4695, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
2. प्रकाश मनु एकाग्र–सोच विचार (साहित्यक पारिवारिक मासिकी पत्रिका), अंक–8, फरवरी 2022, पृ०सं० 55
3. हिंदी बाल साहित्य का इतिहास प्रकाश मनु, प्रकाशन प्रभात प्रकाशन, 4/19 असफ़ अली रोड, नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2018, पृ०सं० 336
4. इक्कीसवीं सदी के बाल नाटक, प्रकाश मनु, प्रकाशक : ज्ञान गंगा, 205–सी चावडी बाजार, दिल्ली–110006, संस्करण 2016, पृ०सं० 16
5. हिंदी बाल साहित्य का इतिहास प्रकाश मनु, प्रकाशन प्रभात प्रकाशन, 4/19 असफ अली रोड़, नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2018, पृ०सं० 336
6. यह जो प्रकाश मनु है, सृजन मूल्यांकन–5, सम्पादक अनामीशरण बबल/स्वामी शरण, सम्पादकीय सम्पर्क–ए–3 1154–एच, मयूर विहार, फेज–3, दिल्ली–110096, संस्करण : जुलाई 2019, पृ०सं० 117

7505803271, amitkumar260793@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 120-123

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कविकुलगुरू कालिदास के ग्रन्थों में नारी चित्रण

डॉ. कविता जैन

सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, विजय नगर, ब्यावर।

कविकुल कलाधार कविवर कालिदास की कमनीय कलेवर कविता विश्व के किस सहृदय–हृदय को आनन्दमग्न नहीं कर देती? महाकवि कालिदास हमारे राष्ट्रीय कवि तथा भारतीय संस्कृति के प्रमुख परिपोषक थे।[1] कालिदास की शैशव स्थली उज्जयिनी थी, विभिन्न मतों के आधार पर उनको प्रथम शताब्दी का कवि माना है। कालिदास ने अपने काव्य–चमत्कार से समस्त संसार में ख्याति प्राप्त की है। कालिदास का गीतिकात्य 'ऋतुसंहार, मेघदूत, महाकाव्य 'कुमारसंभव', रघुवंश व नाटक 'विक्रमोर्यशीयम्', 'मालविकाग्निमित्रम' एवं अभिज्ञानशाकुन्तलम्' है, जो अपनी अपूर्व माधुरी, दिव्य, सरलता, मन्दाकिनी की सी तथाकथित प्रसाद प्रसन्नता, हिमालय की सी भावोदात्तता एवं सागर का अर्थगाम्भीर्य, प्रेम की तरलता एवं वाणी तथा अर्थ का समन्वय विद्यमान गरिमा, संस्कृति संपदा तथा उदात शिक्षा प्रेरक मानव कल्पना की त्रिवेणी की भांति विश्व साहित्य में समर्थ्य संपूज्य है। उनकी कविता में प्रसाद गुण की अगाघता, माधुर्य का मधुर सन्निवेश कोमल कान्त पदावली का प्राचुर्य उपमाएँ जीवन के अत्यन्त निकट सुपरिचित एवं कथ्य को स्पष्ट तथा प्रभावशाली बनाने के लिए प्रयुक्त हुई है, अलंकारो की रमणीयता, छन्दों की छटा और भावसौष्ठव, तथापि सरल, सुबोध, एवं प्रवाहमयी है। प्रकृति चित्रण स्वाभाविक एवं सजीव है, व्यज्जना प्रधान शैली, रुप वर्णन तथा चरित्र चित्रण में भी उनका अद्‌भुत कौशल प्रकट होता है। उनकी कल्पनाशक्ति, पदलालित्य नाटकीय सन्निधान सभी उच्चकोटि के है। कालिदास प्रेम व शृंगार के कवि है, उनका प्रेम मर्यादित है। उन्होने नारी सौन्दर्य रमणी के नख से शिख तक समस्त रुप राशि का वर्णन बड़ी ही मार्मिकता से किया है। अतः कालिदास संस्कृत साहित्य के अद्वितीय महाकवि माने जाते हैं।

''कालिदास के ग्रन्थों में नारी चित्रण'' में कालिदास ने नारी को बाला, कन्या, कान्ता, कामिनी, वनिता, प्रिया, धर्मपत्नी, कल्याणि, साध्वी, जननी एवं गृहणी, सखी विविध कलाओं में निपुण सचित्र आदि विविध रुपों में चित्रित किया है।[2]

कालिदास ने नारी के गुणों की चर्चा बड़ी सहजता से की है, वह अपने सहज एवं प्राकृतिक गुणों से ही पुरुष की सहज चेतना को प्रदीप्त करती है। प्रातिव्रत्य, महाकुलीनता, रुपसंपद, यौवनसंपद, सुचित्रा, शीलसम्पद्, प्रियवदता, चातुर्य, वाग्मित्व, शास्त्रज्ञान, कृतज्ञता, कठोर परिश्रमी, विविध कलाओं में निष्णात, मानिता, अदीनवाक्यता, दृढ़ भक्तित्वम्, लज्जाशील, मुग्धा, मातृत्व आदि गुण उसके विविध रुपों में परिलक्षित होते है। कालिदास ने कन्या के रुप में, प्रेयसी के रुप में पत्नी के रुप में, माता के रुप में नारी का चित्रण किया है।

''कुमाररसंभव'' में तपस्या तथा पातिव्रत का अपूर्वप्रतीत पार्वती ''मेघदूत'' में तन्वी भयामा यक्षपत्नी,

''मालविकाग्निमित्रम्'' में धीरता की मूर्तिधारिणी मालविका, ''विक्रमोर्यशीयम्'' में उन्मत प्रेम की अधिकारिणी उर्वशी, ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' में मनोज्ञा वल्फलेनापि तन्वी शकुन्तला ''रघुवंश'' में देवी सीता, दीपशिखा इन्दुमती, धर्मपत्नित्व सुदक्षिणा, ऐसी दिव्य मूर्तियां है, जो निरन्तर प्रभावित करती है और आदर्श प्रस्तुत करती है।

''नारी सौन्दर्य'' में सौन्दर्य तत्व को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि भाग, अभिव्यक्ति का सामञ्जस्य सौन्दर्य है। नारी सौन्दर्य की प्रतीक है, एसमें रुप भोग, अभिव्यक्ति का सामञ्जस्य परिलक्षित होता है। कालिदास नैसर्गिक सौन्दर्य के प्रेमी है, उन्होनें नैसर्गिकता का परिचय शकुलन्तला में दिया है, वह अतुलनीय सौन्दर्य से सम्पन्न है, वल्कलवेष्टिता होने पर भी उसकी शोभा में माधुर्य है।[3]

वत्कल वस्त्र धारण करती हुई शुकन्तला के सौन्दर्य को देखकर राजा दुष्यन्त मन में विचार करता है कि भले ही वह वल्कल वस्त्र इसके योग्य न हो फिर भी यह इसके सौन्दर्य में उसी प्रकार वृद्धि कर रहा है, जिस प्रकार शैवाल (काई) से कमल आच्छादित होने पर भी सुन्दर प्रतीत होता है, चन्द्र की मलिन ज्योत्सना (काला धब्बा) भी सौन्दर्यमयी होती है। उसी प्रकार कृभाांगी भी इस वल्कल से और भी सुन्दर लग रही है। स्वभावतः सबको प्रिय लगने वाली आकृतियों के लिए कौन सी वस्तु अलंकार नहीं बनती?

कालिदास की दृष्टि में सौन्दर्य को बाह्म साधनों की अपेक्षा नहीं (अभि, शाकु 1/10) वास्तविक सौन्दर्य सभी अवस्थाओं में मनोरम एवं रमणीय होता है। उसकी चारुता उसके 'अक्लिष्ट कान्ति' होने में ही निहित है। कालिदास का विश्वास है कि आकृति का सौन्दर्य अन्तरात्मा के सौन्दर्य में समन्वित होता है। पार्वती जब अपने पार्थिव रुप में शिव को जीतना चाहती थी, तब तक वह असफल रही। परन्तु जब उन्होनें आध्यात्मिक रुप से शिव की आराधना की तो वे सफल हो गई। तब मिलन हुआ तथा वह कल्याणकारी हुआ।

कालिदास ने नारी रुप सम्पति का वर्णन बड़ी ही मार्मिकता से किया है। रुप वर्णन में उन्होने प्रत्येक अंग–प्रत्यंग पर दृष्टि डाली है जो कहीं पाम्परिक तो कही मौलिक उद्भावनाओं के साथ अभिव्यक्ति हुई है। उनकी कल्पना की नारी का चित्र दृष्टव्य है, वह सामान्य गृहस्थ महिला है।[4] नायिका युवती है और कवि की दृष्टि में ब्रह्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति भी। वह तन्वी अर्थात् इकहरी शरीर यष्टि वाली है, छरहरी देह यौवन के मध्य द्वार पर स्थित है। कुछ नुकीले, थोड़ा ऊपर उठे दांतो वाली है। उसके अधर पके बिम्बा (कुंदरु) के समान लाल है। कटि या मध्य भाग पतला, नाभि गहरी, नेत्र हरिणी के समान बड़े, कजरारे और चंचल, नितम्ब भारी, क्षिप्र गति के बाधक स्तनों के भार से कुछ झुकी–झुकी। यह है कालिदास की नारी का चित्र। नारी के प्रत्येक अगों पर दृष्टि डालते हुए और समन्वित सौन्दर्य के प्रभाव को अंकित किया है।

कालिदास ने नारी के नख से शिख तक समस्त रुप राशि – केश, केशपाश, कर्णभूषण, भ्रूभंगि, नेत्र और विप्रेक्षण, गण्डस्थली, मुख, अधर और स्मित, स्तन, बाहु, कण्ठ, नाभि, कटि, उरु और जंघा, चरण, लाक्षारस का वर्णन करने में अपना सर्वस्व कवित्व समाप्त कर देने में वह नहीं हिचके है।

इस प्रकार कालिदास ने अंग विन्यास करके सौन्दर्यमयी नारी का एक सफल चित्र खींचा है, जिसमें उनको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

कालिदास की सौन्दर्यमयी दृष्टि बाह्य रुप तक ही सीमित नहीं रही, उन्होनें रुप सौन्दर्य के साथ सर्वत्र सात्विक्ता का वातावरण उपस्थित किया है। उनका सौन्दर्य एक विचित्र मानसिक संतोश और शक्ति प्रदान करता है, क्षोभ, लिप्सा और संवेग नहीं बढ़ाता। कालिदास की नायिकायें एक अलौकिक वासन्ती श्री से स्नात है। उनका

बाह्य अन्तर सब कुछ अवयात है। उशा द्वारा अमृत –धट से नहलायी, बालारुण की हैम किरण रज्जुओं द्वारा मरकतपत्रदोल पर झुलायी हुई नवल–नवल अर्द्धविकसित कलिकाओं के समान उनकी नायिकायें कुछ पार्थिक कुछ अपार्थिक सी लगी है और पाठक या दर्शक को आत्मविभोर कर देती है।

''कालिदास युगीन नारी की स्थिति'' में नारी की स्थिति का क्या स्वरुप है? उनका समाज में क्या स्थान है? इसका वर्णन बड़ा ही सूरुचिपूर्ण रुप में किया है। उस समय नारी को विद्याध्ययन करने का पूर्ण अधिकार था, सहशिक्षा का प्रचलन था, वह विविध कलाओं में निपुण हुआ करती थी, स्वयंवर प्रथा प्रचलित थी, उसको वर चुनने का पूर्ण अधिकार था। नारी परिवार का आभूषण समझी जाती थी। नारी को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था व गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित थी।

महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में नारी न केवल सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति है। अपितु वह गुणों की साकर मूर्ति है।

''भारतीय शास्त्रों में नर–नारियों का संयत कठिन अनुशासन के रुप में आदिष्ट है और कालिदास के काव्यों में सौन्दर्य से सुसंगठित हुआ है। यह सौन्दर्य श्री ही कल्याण से उद्‌भासित है, गंभीरता की ओर से नितान्त एकाकी और व्याप्ति की और से विश्व का आश्रय स्थल है। वह त्याग से परिपूर्ण दुःख से चरितार्थ और धर्म से ध्रुव निश्चित है।

नारी भारतीय संस्कृति में अतीत उन्नत गौरव की अधिकारिणी सदा से ही रही है, उसका गरिमामय महत्वपूर्ण एवं अपरिहार्य योगदान रहा है। नारी त्याग और तपस्या की जाज्जवल्मान विभूति है। नारी जीवन का मूल मंत्र है त्याग और इस करुणां को सिद्ध करने की क्षमता तपस्या ने प्रदान की। पारिवारिक आदर्शो, सामाजिक जीवन, राजनीतिक संगठनों एवं पुरुष की आत्मिक शक्ति को दृढ़ एवं उत्कृष्ट बनाने में स्त्री ने अपने विविध रुपों में त्याग और तपस्या के उदाहरण समय–समय पर प्रस्तुत किये है। देवी सीता तपस्या की अपूर्व प्रतीत पार्वती, सावित्री, अनुसूया, अरुंधती आदि का सुन्दर चित्रण काव्यों में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीयता, विश्व बन्धुत्व की परिकल्पना वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य तक पूर्ण रुप से पायी जाती है।

स्त्री पुरुष की सत्ता समान है, मनु ने कहा है कि ब्रह्मा ने अपने देह को दो भागों में विभक्त किया। आधे भाग से पुरुष बना व आंधे से स्त्री।[5]

इस प्रकार हम देखते है कि स्त्री पुरुष का मूल आधार एक ही है तथा उनके जीवन का आदर्श रथ के दो पहियों के समान परस्पर सहयोग की भावना से अनुक्रमाणित है। पुरुष जहाँ स्वभाववश कठोर होता है, वहाँ नारी उतनी ही कोमल जीवन के सुख दुख में छाया की भांति नर का साथ देने के कारण अर्द्धांगिनी, घर की व्यवस्था करने के कारण गृहलक्ष्मी और त्याग सेवा आदि श्लाघनीय गुणों के कारण देवी कही जाती है। उसके प्रकाश से नर ने अपना मार्ग खोजा है। उसकी सुगन्ध से नर का जीवन कुसुम सुवासित हुआ है। वस्तुतः नर आजीवन नारी का ऋणी रहता है। नारी मानवीय भावों की मंजुषा है व मानव सृष्टि के विकास की सर्वोत्तम सीढ़ी हे। आज उसने परिवार एवं समाज को अपने दिव्य गुणों से प्रभावित ही नहीं किया वरन् एक सभ्य राष्ट्र की प्रगति उस पर ही अवलम्बित है। भारतीय नारी वैदिक युग के उन उद्धात्त आदर्शो को समेटकर आधुनिक जीवन के मूल्यों को भी पूर्ण क्षमता से निर्वाह कर रही है।

भारत की नारियों ने समय–समय पर अपने कार्यक्षेत्र के साथ 'साथ पुरुषों के कार्यक्षेत्रों में उतर कर बड़े

साहस, पराक्रम एवं चतुराई का परिचय दिया तथा भारतीय नारी के आदर्शो एवं सर्वागीण योग्यता की सारे संसार में पताका फहराई।

वह विधाता की अनुपम सृष्टि है जिसके बिना मानव जीवन का अस्तित्व नहीं है। अतः वेदों का यह कथन सत्य ही है –

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' यह है भारतीय मानस का आदि शक्ति अर्द्धागिनी, गृहलक्ष्मी, नारी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन। नारायण के साथ लक्ष्मी, शिव के साथ भवानी, राम के साथ सीता और कृष्ण के साथ राधा की आराधना नारी शक्ति की ही अर्चना है। अपाला, गार्गी, मैत्रेयी तथा विदुला की गौरवमयी परम्परा को भारतीय नारी ने आज तक निभाया है। यदि नारी को श्रद्धा की भावना अर्पित की जाए तो वह विश्व के कण–कण को स्वर्गीय भावनाओं से ओत–प्रोत कर सकती है।

संदर्भ :–

1. स विश्ववन्द्यो महतां कवीनां गुरुर्मनीशी कविकालिदासः
   यत्काव्यपीयूषरसप्रवाहः स्वादामितानन्दमयो हि लोकः।।
2. ''गृहिणी सचिवः सखी मिथः
   प्रियः शिष्या ललिते कलाविधौ। रघु. 1/67
3. ''सरसिजमनुविद्ध शैवलेनापि रम्यं
   मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति
   इयमधिकमनोज्ञा वक्कलेनापि तन्वी,
   किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम।'' अभि. शाकु 1/17
4. ''तन्वी श्यामा शिखरि–दशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी,
   मध्ये क्षामा चकित–हरिणी–प्रेक्षणा निम्न–नाभिः।
   श्रोणी भारादल सगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
   या तत्र स्याद् युवति विषये सृष्टिराद्येव धातु। मेघ 2/19
5. द्विधा कृताऽऽऽत्मनों देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
   अर्धेन् नारी तस्यां च विराजमसृजत्प्रभुः।। मनुस्मृति 1/32

A-4 पृथ्वी एनक्लेव, सिविल लाइन्स, कोटा

मो. नं. 94141–22558

EmailID : rainbow9052006@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 124-130

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हरिवंशराय 'बच्चन' की कविता में विचलन : शैलीगत अध्ययन

डॉ. सुनील दत्त, सहायक प्रोफेसर (हिन्दी),
पं. चिरंजीलाल शर्मा राजकीय महाविद्यालय, करनाल।

सामान्य भाषा के नियम, बंधन, चलन अथवा पथ को छोड़ कर नए नियमों को अपनाना ही विचलन कहलाता है। भाषा एक नियमबद्ध व्यवस्था होती है और प्रत्येक भाषा की अपनी नियमबद्ध व्याकरण होती है, ध्वनि, रूप, रचना, शब्द प्रयोग वाक्य रचना तथा अभिव्यक्ति आदि के विभिन्न स्तरों पर अपने नियम होते हैं। भाषा काव्याकरण इन्हीं व्यवस्थाओं और नियमों की व्याख्या करता है। उस भाषा को प्रयोग करने वाला उन नियमों का पालन इतनी सहजता से करता है कि उसको इसके अस्तित्त्व का पता ही नहीं चलता। इसी भाषा में व्यक्ति स्वयं को वाणी प्रदान करता है। कोई भी साहित्यकार सामान्यतः भाषा के मानक रूप का प्रयोग करता है, लेकिन बहुत बार वह नियमों से बंधी हुई इस भाषा में पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं कर पाता। ऐसी स्थिति में वह मानक भाषा को नया रूप रंग देता है, जिससे रचना में अव्याकरणिक रूप प्रयुक्त होने लगते हैं, इससे भाषा अनियमित होती है यही प्रक्रिया विचलन कहलाती है। अतः विचलन का अर्थ है– भाषिक नियमों का उल्लंघन।

विचलन की अवधारणा के सम्बन्ध में डॉ० विद्या निवास मिश्र का विशेष योग रहा है। वे मानते हैं, 'विचलन एक सचेत रचना की सोद्देश्यता का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है। यह मुख्यतः सर्जनात्मक कृत्ति के निजी वाक्य विन्यास का ही एक आवश्यक उपकरण है। काव्य भाषा पूर्व निश्चित सम्बन्धों को एक नयी वास्तविकता से अभिभूत करके विचलित करती है।'[1]

विचलन के विषय के डॉ० भोलानाथ तिवारी का कहना है कि "सामान्य भाषा नियम, बंधन, चलन अथवा पथ को छोड़कर नए का अनुसरण करना, नए पथ पर चलना ही विचलन है। पश्चिम में 'पोयटिक लाइसेंस' (कवि द्वारा ली गई छूट) अथवा संस्कृत का प्रसिद्ध कथन 'निरंकुशाः कवयः' (कवि निरंकुश होते हैं) इसी विचलन की ओर संकेत करते हैं। भारतीय काव्य शास्त्र के वक्रोक्ति – सम्प्रदाय की – 'वक्रोक्ति' भी यही है। सामान्य भाषा की उक्ति अवक तथा सामान्य होती है तथा काव्य–भाषा की उक्ति असामान्य अथवा वक्र होती है। पश्चिमी सौन्दर्य शास्त्र तथा शैली विज्ञान में बहुप्रयुक्त 'फोरग्राउंडिंग' शब्द भी इसी ओर संकेत करता है। अभिव्यक्ति की सामान्य व्यवस्था 'बैग्राउंडिंग' (पुरा व्यवस्था) है तथा विचलन द्वारा प्राप्त नई व्यवस्था 'फोरग्राउंडिंग' (नव्य व्यवस्था) है।'[2] डॉ. रवीन्द्रनाथ श्री वास्तव के अनुसार 'सहेतुक विचलन को शैली विज्ञान – दो निश्चित सन्दर्भों में ग्रहण करता है–व्याकरणिकता (ग्रामेटिकलिटी) का सन्दर्भ और आवृत्ति का संदर्भ।[3]

जो फ्रीलीच मानते हैं कि "साहित्यिक भाषा सामान्य भाषा से विचलनमयी (Deviated) होती है। यह

विचलन, व्याकरण, ध्वनि, लिखावट, अर्थ, बोली, रजिस्टर एवं ऐतिहासिक काल आदि कई स्तरों पर होती है।[4] उपरोक्त परिभाषा के अनुसार विचलन के तीन कारण हो सकते हैं–पद बंधया रूपात्मक नियमों का अति क्रमण, शब्द कोटि नियमों का अतिक्रमण, दोनों का एक साथ अतिक्रमण। पद बंधया रूपात्मक नियमों के अतिक्रमण से अभिप्राय है, वाक्य में पदों का मानक भाषा की दृष्टि से अशुद्ध क्रम शब्द कोटियों के नियमों के अतिक्रमण से तात्पर्य है शब्दों का अनुपयुक्त चयन। उदाहरण के लिए सामान्य भाषा में यदि कोई व्यक्ति कहे – "खारोटी है सोहन रहा "तो वाक्य क्रम की दृष्टि से अशुद्ध माना जाएगा। क्योंकि हिंदी भाषा काव्या करण इस प्रकार की क्रम व्यवस्था की अनुमति नहीं देता। हिन्दी भाषा के व्याकरण नियमों के अनुसार वाक्य का रूप 'सोहन राटी खा रहा है' शुद्ध होगा। जैसे– "कर रहा हूं आज मैं आजाद हिन्दुस्तान का आह्वान"। यहां 'कर रहा हूँ' क्रिया का प्रयोग पहले हुआ है लेकिन इसे अशुद्ध नहीं माना जाता। लेखक ने क्रम में परिवर्तन जान बूझ कर किया है। 'कर रहा हूँ' क्रिया का पूर्व प्रयोग करके वह अपने उद्देश्य में सफल है। यहाँ कवि आजाद भारत का भारत का आह्वान कर रहा है। इस प्रकार से साहित्य भाषा में यह क्रम प्रायः टूटता रहता है।

इन सभी परिभाषाओं तथा उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होती है कि 'विचलन' मात्र विचलन के लिए नहीं होना चाहिए, विचलन से रचनाकार का भाव प्रकट होना चाहिए। विचलन हमेशा उद्देश्य परक होना चाहिए, चाहे वह ध्वनि स्तर पर हो, या शब्द स्तर पर या व्याकरण स्तर पर या फिर प्रोक्ति स्तर पर। विचलन भाषा के विविध आयामों जैसे ध्वनि, शब्द, रूप (कारक, बहुवचन) वाक्य, अर्थ आदि सभी स्तरों पर प्रतिफलित हो सकती है।

ध्वनि विचलन के सन्दर्भ में यदि बात करें तो मानक भाषा में प्रयुक्त ध्वनियाँ जब अपने सामान्य व्यवहृत रूप से भिन्न रूप में प्रयोग की जाती है तो वहाँ ध्वनि स्तरीय विचलन होता है। ध्वन्यात्मक विचलन लयात्मकता के लिए, कथ्य को नयी अर्थवत्ता से सम्पन्न करने के लिए किसी न किसी अभिप्रायः के विशेष के लिए प्रयुक्त होता है। उदाहरण के लिए धूमिल जी के मोची राम कविता का यह पद्यांश लिया जा सकता है –

"इशे बांधों, इशे काट्टो, हियांठ ठोक्को, वहाँ पीट्टो
घिश्शो दो, अइशा चमकाओ, जुत्ते कोऐ ना बनाओ।

प्रस्तुत उद्धरण मे इसे बांधों, उसे, काटो, यहाँ ठोको, पीटो, घिस्सा, ऐसा, जूता, आइना–ध्वन्यात्मक विचलन के रूप में व्यवहृत हैं। ये शब्द केवल एक वर्ग विशेष की भाषा की अभिव्यक्ति ही नहीं करते, अपितु कवि के आक्रोश को भी व्यक्त करते हैं।

बच्चन जी की काव्य–भाषा से लिए गए ध्वन्यात्मक विचलन के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं –

1. "डोंगा डोले, नित गंग–जमुन के तीर।"[5]
2. "नभ से उत्तरी पावन पुतरी।"[6]
3. "ओरी भोरी, तेरा होरी गोरी नागिन का डंसा।"[7]

प्रथम उद्धरण में गंगा–जमुना के स्थान पर गंग–जमुन का प्रयोग मिलता है जिसमें लोकगीत में लयात्मकता का गुण बना रहता है। दूसरे उदाहरण में पुत्री के स्थान पर पुतरी का प्रयोग मिलता है जोकि प्रकरण के अनुरूप है क्योंकि यह एक लोकगीत है तथा इसमें ग्रामीण परिवेश है। तीसरे उद्धरण में भोली के स्थान पर भोरी विचलित प्रयोग मिलता है जिसके प्रयोग से ग्रामीण परिवेश का आभास होता है तथा लोकगीत में संगीतत्मकता का गुण बना रहता है।

शब्दगत विचलन जब कोई शब्द भाषा के परिष्कृत रूप में प्रयुक्त न होकर विकृत रूप में प्रयुक्त होता है तो शब्द विचलन होता है अर्थ लालित्य की उद्‌भावना करने की लालसा से जब साहित्यकार शब्द के मानक प्रयोग के स्थान पर उसका कलात्मक प्रयोग करता है, किसी परिष्कृत शब्द का विरूपित प्रयोग करके अपने कथ्य को सौन्दर्य सम्पन्न बनाता है, यहाँ शब्द स्तर पर विचलन दृष्टिगोचर होता है।

डॉ. शशिभूषण शीतांशु के अनुसार 'स्तरीय आधार भाषा में मानक रूप – व्यवहृत होने वाला शब्द जब विरूपित, विकृत होकर प्रयुक्त होता है तब वहाँ शब्द स्तरीय विचलन होता है।"[8] शब्द विचलन किसी विशिष्ट शब्द निर्माण में भी होता है। विशिष्ट शब्द निर्माण से तात्पर्य है कि कवि या लेखक द्वारा आवश्यकता पड़ने पर नवीन शब्दों का निर्माण। लीच के अनुसार शब्द निर्माण कर अर्थ है– 'शब्द–निर्माण के नियमों को अपेक्षाकृत अधिक सामान्यता के साथ लागू करना ही नियमों का अतिक्रमण है।[9] और यह अतिक्रमण प्रायः प्रत्ययी करण समस्त पद क्रिया तथा प्रकार्यात्मक अन्तकरण द्वारा अर्थात् प्रचलित शब्दों के अंत में प्रत्यय लगाकर, प्रचलित इकाइयों का आलंकारिक प्रयोग करके या छंद पूर्ति के लिए विशिष्ट शब्द निर्माण द्वारा होता है। कभी–कभी साहित्यकार यह अनुभव करता है कि भाषा के मानक शब्दों से वह अपनी बात नहीं कह पा रहा है तो ऐसी स्थिति में उसे भाषा के मानक शब्दों को छोड़कर उनके स्थान पर लोक शब्दों का प्रयोग करता है। इस प्रयोग से साहित्यकार की अभिव्यक्ति अधिक प्रभावशाली तथा सशक्त बनती है। कुछ शब्द तो प्राचीन साहित्य से भी लिए जाते हैं। ऐसे शब्दों की एक विशेष परम्परा होती है। अतः वे विशेष अर्थ, रस तथा भाव आदि का सहज ही द्योलन कर लेते हैं। बच्चन जी के काव्य में शाब्दिक विचलन का प्रयोग कहीं–कहीं मिलता है। उनकी काव्य भाषा में ऐसे अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जो हिंदी मानक भाषा में सामान्यतः प्रयुक्त नहीं होते –

1. "भीड़ करके सब किवाड़े।"[10]
2. "मूक दुहराती हुई अपनी कहानी।"[11]
3. "जोखिम लेना ठीक नहीं अब।"[12]

प्रथम उद्धरण में किवाड़ के स्थान पर किवाड़े शब्द का विचलित प्रयोग मिलता है। दूसरे उद्धरण में दोहराती शब्द के स्थान पर दुहराती, तीसरे उद्धरण में जोखिम शब्द के स्थान पर जो खमलोक शब्द रूपों में विचलित शब्दों का प्रयोग मिलता है। उपर्युक्त उद्धरणों में मानक भाषा की दृष्टि से विचलन निहित है। परन्तु ये सभी शब्द प्रयोग सोद्देश्य हैं।

रूपगत विचलन से अभिप्राय है किसी रूप का अध्याहार है। जब कोई कवि या लेखक किसी रूपिम के मानक रूप के स्थान पर किसी अन्य रूपिम का प्रयोग करता है तो रूप स्तर पर विचलन होता है।

डॉ. शशि भूषण शीतांशु के अनुसार जनरूप स्तर पर भाषा में किसी स्वीकृत मानक रूप की जगह उसका कोई दूसरा स्थानापन्न आ जाए, जो विहित नहीं हो तो वहाँ इस स्तर पर विचलन उपस्थित होता है। व्याकरणिक कोटियों से सम्बद्ध ऐसी प्रत्येक अध्याहति या स्थानापन्नता रूपगत विचलन को जन्म देती है।[13]

बच्चन जी ने अपने काव्य में प्रत्ययों के विचलित प्रयोग से काव्य में नवीनता लाने की चेष्टा की है, जिससे रूप विचलन हो गया है। कुछ उद्धरण दृष्टव्य हैं –

1. "शक्तियाँ जो पश्चिमी जग में उठी थीं,
   क्रूरता नाशाहियत की।"[14]

2. "मेघ छाते, कड़कड़ाती बिजलियाँ।"[15]

प्रथम उद्धरण में 'तानाशाही' शब्द की अपेक्षा 'ताना शाहियत' शब्द व प्रयोग हुआ है। दूसरे उद्धरण में 'कड़कती' शब्द के स्थान पर 'कड़कड़ाती' शब्द प्रयोग मिलता है।

लिंगाधारित विचलन में साहित्यकार अपनी रचना की भाषा में कोमलता, लघुता, लयात्मकता आदि के लिए कभी–कभी पुल्लिंग शब्दों का प्रयोग स्त्रीलिंग में करता है। इसी प्रकार कभी–कभी स्त्रीलिंग शब्दों का प्रयोग पुल्लिंग में करता है। बच्चन जी की काव्य भाषा में कहीं–कहीं लिंग विचलन भी मिलता है। जिसके कुछ उद्धरण इस प्रकार दृष्टव्य है–

1. "कठिन काव्य के प्रेत, कभी क्या तुमने मन–पट खोला?
कलम तुम्हारा बहुत चला, पर कभी हृदय भी बोला?"[16]
2. "तारे करते हैं, उनसे बात,
उल्का होते हैं उनके पास,
आसमान करता है उनका सम्मान।[17]

प्रथम उद्धरण में 'कलम' शब्द का प्रयोग पुल्लिंग में किया गया है, जबकि इसका प्रयोग स्त्रीलिंग में होता है। इसी प्रकार दूसरे उद्धरण में 'उल्का' शब्द का पुल्लिंग में प्रयोग मिलता है जबकि है यह स्त्रीलिंग।

इसके अलावा बच्चन जी के काव्य में कहीं–कहीं पर वचन आधारित विचलन भी मिलता है। इसके कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं :–

1. "जगो कि तुम हजार साल सो चुके,
जगो कि तुम हजार साल वो चुके।"[18]
2. "प्राण की यह बीन बजना चाहती है।"[19]
3. "जगती की शीतल हालासी पथिक, नही मेरी हाला,
जगती के ठण्डे प्याले सा, पथिक, नहीं मेरा प्याला।"[20]

उपरोक्त सभी उद्धरणों में वचन विचलन दृष्टिगोचर होता है। कहीं एकवचन के स्थान पर बहुवचन का कहीं बहुवचन के स्थान पर एकवचन का प्रयोग मिलता है जोकि मानक भाषा की दृष्टि के विचलन के अंतर्गत आता है। प्रथम उद्धरण में 'हजार' शब्द एकवचन में प्रयुक्त हुआ परन्तु मानक भाषा नियमों के अनुसार 'हजारों' होना चाहिए था। द्वितीय उद्धरण में 'प्राण' शब्द एकवचन में प्रयुक्त हुआ है। जब कि प्राण शब्द सदा बहुवचन में प्रयुक्त होता है। तृतीय उद्धरण में 'ठण्डे' और 'प्याले' शब्द का बहुवचन में प्रयोग मिलता है जबकि यहाँ इसका प्रयोग एकवचन में होना चाहिए था और ध्यातव्य है कि इस प्रयोग से काव्य सौन्दर्य में वृद्धि हुई है।

व्याकरणिक विचलन के सन्दर्भ में प्रत्येक भाषा में वाक्य संरचना में पदों के क्रम विन्यास सम्बन्धी कुछ नियम होते हैं, जिनका पालन आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी भाषा में कर्त्ता, क्रिया तथा कर्म का क्रमशः प्रयोग होता है जबकि हिन्दी भाषा में कर्त्ता, कर्म और क्रिया का क्रम होता है। लेकिन काव्य भाषा में यह क्रम सर्वदा वहीं नहीं होता जो सा मान्य बोलचाल या गद्य में होता है। किन्तु वास्तविकता यह है कि कविता की भाषा में वाक्यों के पदों का वास्तविक क्रम वही होता है जो कविता में होता है। उस क्रम के लयात्मक प्रभाव का अपना महत्त्व है। इस रूप में काव्य भाषा का क्रम सामान्य क्रम से विचलित अथवा परिवर्तित होता है। यदि

उसे सामान्य क्रम में रख दे तो उसका वह सौन्दर्य समाप्त हो जाएगा और परिणामतः काव्यभाषा की क्षति होगी। क्रम परिवर्तन की पृष्ठभूमि में कोई न कोई उद्देश्य निहित रहता है। कवि किसी विशेष भावाभिव्यक्ति के लिए सामान्य क्रम को बदल देता है। अतः कवि या लेखक अपनी गहन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए वाक्य के किसी अवयव जैसे कर्म या क्रिया को वाक्य के प्रारम्भ में रखकर उसका उन्नयन करता है और उसके अर्थ को केन्द्र बिन्दु बनाता है। बच्चन जी की काव्यभाषा में क्रम विचलन की प्रवृत्ति अनेक स्थलों पर देखी जा सकती है। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार है –

1. "सुना था मैंने प्रातःकाल,
   हुआ जब रजनी का अवसान
   लगे जब होने उहगणम्लान।"[21]
2. "चढ़ना हो, चढ़ना हो जिसे चढ़ जाये, नैया जाती है।"[22]

उपरोक्त दोनों, उद्धरणों में व्याकरणिक विचलन मिलता है क्योंकि इनमें पहले क्रिया का प्रयोग मिलता है जबकि हिन्दी भाषा की वाक्य विन्यास योजनानुसार क्रिया का वाक्य में प्रयोग वाक्य के अंत में आता है। इस प्रकार से यहाँ पर व्याकरणिक विचलन दृष्टिगोचर होता है।

यह सर्वविदित है कि प्रत्येक भाषा के अपने व्याकरणिक नियम होते हैं। इन नियमों के अनुसार ही संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण आदि शब्दों का प्रयोग होता है। भाषा की व्याकरण ही यह बताती है कि कौन से शब्द का प्रयोग किस शब्द के साथ उचित है। जैसे 'मोहन' मो गया है।' वाक्य में मोहन के साथ 'सोना' क्रिया का प्रयोग संगत है, परन्तु यदि कहा जाए कि 'मंजिले सो गयी हैं।' तो इस वाक्य में 'सोना' क्रिया का प्रयोग उचित नहीं है, क्योंकि 'सोना' प्राणी धर्म है, अचेतन का नहीं। परन्तु इस प्रकार के प्रयोग काव्य भाषा में मिलते रहते हैं। इस प्रकार के असामान्य प्रयोग काव्य भाषा में होते रहते हैं। ये प्रयोग सोद्देश्य होते हैं। इसी प्रकार से व्याकरणिक कोटियों के विचलन से सम्बन्धित कुछ उद्धरण दृष्टव्य हैं –

किसी वस्तु व्यक्ति स्थान के नाम या किसी गुण को प्रकट करे उसे संज्ञा कहते हैं। संज्ञा शब्दों के विचलन भी काव्य–भाषा में अनेक प्रकार से मिलते हैं इसमें एक संज्ञा के स्थान पर दूसरी संज्ञा का प्रयोग मिलता है।

1. "काठ का आदमी।[23]
2. "गुलाब की पुकार।"[24]

उपर्युक्त सभी उद्धरणों में संज्ञा विचलन मिलता है। पहला वाक्य 'काठ का 'आदमी' कविता के शीर्षक रूप में प्रयु क्तहुआ है। यह सर्वविदित है कि आदमी पंचतत्त्वों से मिलकर बनता है न कि लकड़ी से इस उद्धरण के माध्यम से कवि ने प्रकाश डाला है। मरती हुई आदमी की नैतिकता पर दूसरे उद्धरण में 'गुलाब की पुकार' क्य प्रयुक्त हुआ है। 'पुकार' क्रिया प्राणी धर्म है।

जब कोई क्रिया अपने उद्देश्य से मेल नहीं खाती तब उसे क्रिया विचलन कहते हैं। उदाहरण के लिए 'झांकना' क्रिया का प्रयोग आदमी के लिए होता है, जो झांक सकता है। 'सितारों' के लिए नहीं हो सकता जोकि अचेतन हैं। अर्थात् 'मोहन छत सेनी चे झांक रहा है' तो कह सकते हैं किन्तु 'बादल से झांकते सितारे' नहीं कर सकते। साहित्यकार अपनी रचना में इस प्रकार के प्रयोग तब करता है। जब सामान्य अभिव्यक्ति द्वारा उसका

उद्देश्य पूरा नहीं होता। बच्चन जी के काव्य के लिए कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

1. "तप रहा दिन–दिन दिवाकर, ज्योति जीवन ले रहा, रो रहा सागर अहर्निश, विश्व नौका खे रहा है, जल रहा नभ का हृदय, निज पथ–दिशा यात्री समझता, क्यों न इनकी वेदना पर ध्यान कोई दे रहा है?[25]
2. "यह मिट्टी की हठधर्मी है जो फिर–फिर मुझ को छलती हैं।"[26]
3. "सिमिट–सिमिट कर एक सरोवर में जल का जा भर जाना।"[27]

प्रथम वाक्य में 'रो रहा सागर ... हुआ में 'रोना' क्रिया के अर्थ में विचलन है, क्योंकि रो रहा सागर में 'रोना' ठीक वही अर्थ देता है जो 'रो रहा मनुष्य' में है। यहाँ पर कवि ने सागर का मानवीकरण कर दिया है जोकि अभिव्यक्ति के अनुसार है दूसरे उद्धरण में 'छलना' क्रिया का प्रयोग हुआ है जोकि प्राणी धर्म हेन कि मिट्टी का। तीसरे उद्धरण में जल के साथ 'सिमटना' रूप में क्रिया विचलन मिलता है।

जब विशेषण का प्रयोग अपने विशेष्य के अनुरूप न हो वहाँ पर विशेषण विचल नया विशेषण–विपर्यय कहते हैं। बच्चन के काव्य से लिए गये इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार दृष्टव्य हैं '–

1. "मेरे शब्दों,
   मेरी क्वारी भावना को
   इतने मोटे–मोटे वस्त्रों में लपेट कर।"[28]
2. ''मर्यादा
   नियम को
   क्रूर पाँवों से कुचलता।"[29]

प्रथम उद्धरण में भावना के साथ 'क्वारी' विशेषण जोड़ा गया है। क्वारी विशेषण का प्रयोग मानव के साथ उचित है परन्तु यहाँ पर यह भावनाओं के साथ प्रयुक्त हुआ है जो भावानुकूल' है। दूसरे उद्धरण में 'क्रूर' पाँवों का विशेषण है। जबकि क्रूरता मानवीय भावों तक एक रूप है न कि पैरों का इसलिए यहाँ विशेषण विचलन है।

अतः निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि बच्चन जी की काव्य भाषा में जहाँ कहीं भी विचलन मिलता है, वह सोद्देश्य है। इनकी भाषा विचलन के द्वारा अधिक आकर्षक, प्रभावशाली एवं व्यंजक हुई है। ध्वन्यात्मक विचलन के माध्यम से इन्होंने कहीं तो कथ्य पर अधिक बल दिया है तो कहीं पर व्यंग्य प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार भाषा शाब्दिक विचलन द्वारा नवीन शब्दों का निर्माण किया है। बच्चन जी की काव्य में व्याकरणिक दृष्टि से भी विचलन हुआ है, कहीं संज्ञापदों का अतिक्रमण हुआ है, वहीं विशेषण पदों का, कहीं क्रिया पदों का, लेकिन इन सब का प्रयोग सोद्देश्य है। बच्चन जी की काव्य भाषा में व्याकरणिक कोटियों के नियमों का भी विचलन मिलता है। कहीं संज्ञा विचलन, कहीं विशेषण विचलन और कहीं क्रिया विचलन के द्वारा नये प्रयोग किये हैं। जो भाषा में सौन्दर्य तथा चमत्कार उत्पन्न करते हैं। मानवीकरण तथा विशेषण–विपर्यय के रूप में भी विचलन मिलता है, जो अत्यन्त सार्थक है। मानक भाषा से परे अमानक भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है जो समय, वातावरण भावानुकूल होने के कारण सोद्देश्य है। अतः यह कहा जा सकता है कि बच्चन जी का भाषा परपूर्ण अधिकार है, उनकी शैली दूसरों से उन्हें अलग करती है और हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान दिलाती है।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. डॉ. विद्यानिवास मिश्र, रीति विज्ञान, पृ. 76

2. डॉ. भोलानाथ तिवारी, शैली विज्ञान, पृ. 49
3. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, संरचनात्मक शैली विज्ञान, पृ. 49
4. जोफ्री एन. लीच, एलिंग्विस्टिक गाइड टू इंग्लिश पोयट्री, पृ. 45–53
5. अजित कुमार (सम्पा०), बच्चन रचनावली, खण्ड– 2
6. वही।
7. वही।
8. डॉ. शशिभूषण शीतांशु, शैली विज्ञान प्रतिमान और विश्लेषण, पृ. 34
9. जोफ्री एन. लीच, एलिंग्विस्टिक गाइड टू इंग्लिश पोयट्री, पृ. 42
10. अजित कुमार (सम्पा०), बच्चन रचनावली, खण्ड – 2
11. वही।
12. वही।
13. डॉ. शशि भूषण शीतांशु, शैली विज्ञान प्रतिमान और विश्लेषण, पृ. 34
14. अजित कुमार (सम्पा०), बच्चन रचनावली, खण्ड – 3
15. वही, खण्ड– 2
16. वही।
17. वही।
18. वही।
19. वही।
20. वही, खण्ड – 1
21. वही, खण्ड – 3
22. वही, खण्ड – 2
23. अजित कुमार (सम्पा०), बच्चन रचनावली, खण्ड – 3
24. अजित कुमार (सम्पा०), बच्चन रचनावली, खण्ड – 3
25. वही।
26. वही।
27. वही।
28. वही।
29. वही।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 131-135

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उषा प्रियंवदा 'अल्पविराम' सार्थक जीवन की तलाश में स्त्री यात्रा

रीना नागर, शोध छात्रा,
प्रो० रहिम कुमारी, विभागाध्यक्ष
हिंदी विभाग, कु० मायावती महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, गौतम बुद्ध नगर।

शोध सारांश :-

आधुनिकता के इस दौर में सामाजिक–पारिवारिक संघर्ष में फंसी स्त्री की विभिन्न मनःस्तिथियों का उतार–चढ़ाव उषा प्रियंवदा ने अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है। किसी भी स्त्री के लिए परिवार एक सुरक्षा कवच की तरह होता है जो उसे सुरक्षित जीवन तो प्रदान करता ही है साथ ही साथ असामाजिक तत्वों से भी बचाकर रखता है किन्तु यह सुरक्षा का बोध कब एक नारी को दब्बू और अकर्मठ बना देता है उसे स्वयं पता नहीं चलता है। 'अल्पविराम' उपन्यास में भी एक ऐसी ही नारी की कहानी है जो पिता और भाई के साये में पली बढ़ी है। उपन्यास की नायिका शिंजिनी जिसे सदैव निर्णय सुनाया गया कभी निर्णय लेना सिखाया नहीं गया। अपने सभी उपन्यासों की भांति उषा प्रियंवदा 'अल्पविराम' की नायिका को भी हार नहीं मानने देती है। 'अल्पविराम' की शिंजिनी की कहानी को भी वो एक ऐसे मोड़ पर लाकर समाप्त करती है जहाँ वह एक बार निर्णय लेकर वापिस नहीं मुड़ती है। डॉ० संदीप रणभिरकर के शब्दों में, ''महिला उपन्यासकारों में उषा प्रियंवदा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी साहित्यिक अभिव्यक्ति, सामाजिक रूढ़ियों, कुप्रथाओं एवं विसंगतियों के प्रति विद्रोहात्मक तो निश्चित रूप में है ही, साथ ही युगीन बोध के अनुरूप सापेक्ष परिलक्षित होती है। व्यक्ति के सूक्ष्म रूप को टटोलना, उसे खोजना, मन की व्यथा की गाथा चित्रित करना उनकी एक प्रमुख विशेषता है। जीवन की नवीन परिस्थितियों के साथ समझौता न कर पाने के कारण आज स्त्री और पुरुष दोनों किस प्रकार असंबद्धता, अजनबीपन, तल्खी एवं जीवन की विसंगतियों का अनुभव कर रहे हैं और तनाव झेल रहे हैं इसका यथार्थ चित्रण उषा जी ने किया है।''[1]

मुख्य शब्द : सार्थकता, घरेलू, अबोध, निर्णय, द्वंद्व आदि।

'अल्पविराम' उपन्यास की नायिका शिंजिनी एक भोली भाली मासूम लड़की है। जिसके मन में हजारों सवाल उत्पन्न होते तो हैं किंतु भाप की तरह तुरंत ही शांत भी हो जाते हैं। शिंजिनी जीवन की सार्थकता की बात करती है उसके पास सभी भौतिक सुख हैं। पहले पिता और भाई के द्वारा बाद में पति उसके सुख की जिम्मेदारी ले लेता है। किंतु शिंजिनी का मन बार–बार सार्थक जीवन का अर्थ जानना चाहता है। उसके पति

इतिहास के प्रोफेसर हैं। पति से मिलने अक्सर दो छात्राएं – प्रस्तावना और इलिकी आती रहती हैं। शिंजिनी आत्मलिप्त और आत्मकेंद्रित स्त्री है। एक मौजा तक खो जाने पर वह दिन भर परेशान रहती है किंतु जब वह प्रस्तावना और इलिकी को देखती है तब उसे अपने नीरस जीवन का बोध होता है। उन दोनों का आत्मविश्वास से भरा व्यक्तित्व देखकर शिंजिनी के मन में ईर्ष्या होती है क्योंकि कहीं न कहीं अपने दब्बूपन का एहसास उसे होता रहता है। उसका ध्यान अपने उद्देश्यहीन जीवन की ओर जाता है वह पति से सार्थक जीवन का अर्थ जानना चाहती है। उसे लगता है पति के अनुसार वह एक खोखला, उद्देश्यहीन और निरर्थक जीवन जी रही है, केवल एक पत्नी मात्र बनकर। ''कैसे समझाऊं कि जब वे और अन्य कार्यरत स्त्रियां मुझे हिकारत की दृष्टि से देखती हैं तो मैं अपने को कितनी हीन और नगण्य समझने लगती हूँ।''[२] पति उसे समझाने का प्रयास करते हैं कि जीवन की सार्थकता स्वतंत्रता में है। वह व्यक्ति जो अपने जीवन के निर्णय लेने की समझ स्वयं रखता है उसका जीवन सार्थक है। ''आप इन लोगों से कहीं अधिक स्वतंत्र और मॉडर्न है।''

वह मुझे बहलाने लगे–आपने अपनी जिंदगी के अहम निर्णय स्वयं लिये–यह स्वतंत्रता नहीं तो और क्या है?''[३] उषा प्रियंवदा शिंजिनी के माध्यम से उन कारणों को भी उजागर करती है जिनके कारण एक स्त्री अपने अधिकारों और दायित्वों के प्रति अबोध और अनजान बन कर रह जाती है। शिंजिनी स्वयं की और ध्यान देती है। वह विचार करती है कि अब तक के जीवन में उसने ऐसे कौन–कौन से कार्य किए हैं जिनसे उसे अपने जीवन की सार्थकता का एहसास हो। स्वयं को अंदर से खाली पाने पर वह कहती है, ''मुझे लगने लगा कि मैंने अब तक की जिंदगी बर्बाद ही की है। एक डिप्टी कलेक्टर की बेटी, आई.ए.एस. की बहन, आराम से रही। पढ़–लिख कर भी उस मनोवृति में उलझी रही–पापा से डरना, मम्मी के दबंगपन से दबना, भाई की हर बात को अच्छी बहन की तरह मानना। यह सब क्या था? सब मुझसे मेरे इस व्यवहार, मेरे अपने इस भूमिका में पूरी तरह समर्पित रहने से प्रसन्न रहते थे। पर यहां इस नए परिवेश में आकर मेरे मन में बार–बार प्रश्न उठने लगे थे–क्या हूँ मैं? मेरी पसंद–नापसंदगी, मेरा दब्बू, कायरता से भरा व्यक्तित्व, जिंदगी के सारे अहम मसलों का दायित्व परिवार के पुरूषों पर छोड़ देनाकृचाहे विवाह हो, आगे की पढ़ाई हो, या यहां अमेरिका भाई का पुछल्ला बनकर आने का निश्चय–क्या हूँ मैं ? यह प्रश्न बार–बार मेरे मन को मथने लगा।''[४]

उषा प्रियंवदा स्त्री के लिए भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति के संदर्भों को स्पष्ट करते हुए लिखती है, ''भारत में मुझे लगता था मेरा एक संदर्भ है। समाज, समय और परिवार के द्वारा निर्धारित सीमाओं में रहना कितना सुरक्षित लगता है। कोई न कोई मेरी जिंदगी के सुख–दुःख के लिए जिम्मेदार तो है। मुझे कुछ नहीं करना, निर्धारित लीक पर सहज रूप से चलते रहना, विवाह... पढ़ाई... फिर कुछ नहीं...। यह 'कुछ नहीं' भी अच्छा लगता था। खाओ, पियो, सोजाओ–नकाम, न धंधा, न जिम्मेदारी। सुख–चौन की जिंदगी जो मुझे अब एकदम खोखली लगने लगी थी–तो मैं करूँ क्या? कहाँ से अपने को एकदम पहचानूँ–जानू कि मैं हूँ कौन?''[५]

डॉ० नीता द. भोंसले के शब्दों में, ''आधुनिक महिला साहित्यकारों में उषा प्रियंवदा स्त्री की इसी ठोस अस्मिता को ढूँढने का प्रयत्न करती हैं। बदलते हुए वातावरण के संदर्भ में पितृसत्तात्मक समाज की स्त्रीगत मान्यताओं का संस्कारों की सार्थकता का विचार उषा प्रियंवदा के अपने साहित्य में अपनी आत्मा और आवरण के साथ रूपायित होता है। प्रियंवदा की दृष्टि में नारी मुक्ति केवल वह आधुनिक बोध नहीं जो वेश–भूषा, रहन–सहन तक सीमित है। उनकी दृष्टि से आधुनिकता परम्परागत संस्कारों से मुक्ति केवल दिखावा है।''[६]

शिंजिनी के परिवार की परंपरा थी कि घर की बेटियों का कम उम्र में विवाह कर दिया जाए और बेटों को जीवन में आगे बढ़ने के अवसर प्रदान किए जाएं। शिंजिनी इस बात से अनजान थी कि परंपरा की इस आहुति में उसके सपनों को भी झोंक दिया जाएगा। ''हमारे परिवार में एक और परिपाटी थी–वह थी कि घर की लड़कियों की कम उम्र में शादी कर दी जाए पर लड़कों पर यह लागू नहीं होता। वे अच्छे–अच्छे बोर्डिंग स्कूल में पढतें, बड़े होकर विश्वविद्यालय जातें। कॉम्पिटिशन में बैठना और अफसरी की उम्मीद करना उनकी विचारधारा में अटूट रुप से बिंधा हुआ था। इसी के चलते डैडी डिप्टी कलेक्टर थे और भाई श्रीमय से भी यही आशा की जाती थी पर बुआएँ आस–पास या दूर की जिनके नाम पायल, नूपुर, कंगना और झुमकी आदि–आदि थे, जल्दी–जल्दी समृद्ध घरों में ब्याह दी गई थी। वे अपने–अपने जीवन से संतुष्ट लगती थी।

मगर मेरे साथ भी ऐसा होगा, यह विचार मुझे नहीं आया था। आखिरकार डैडी पढ़े–लिखे आधुनिक विचारों के थे। मैं भले ही कॉम्पटीशन में न बैठूँ, पर कॉलेज, यूनिवर्सिटी जरूर जाऊँगी, यह मैं माने बैठी थी। पर न जाने क्यों, परिवार की रीति निभाते हुए डैडी ने हाईस्कूल पास करते ही मेरी सगाई कर दी। क्यूँकि यह तो हमारे घर की परंपराथी–लड़कापढ़ा–लिखा, अच्छा खाने–कमाने की क्षमता रखता हो, बस लड़की के लिए यह पर्याप्त था। लड़के का रूप–रंग, आचार–विचार, पसंद–नापसंद इस सब से किसी को कोई सरोकार नहीं था।''[७]

एक ग्रहणी जो परिवार को संभालती–संवारती है। परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को पूरी निष्ठा से निभाती है। बच्चों को अच्छे संस्कार और परवरिश देकर देश को अच्छे नागरिक देती है। दिनभर व्यस्त रहकर और परिवारजनों के प्रति अपना पूरा जीवन सौंपने के बाद भी उसका जीवन सार्थक क्यों नहीं हो सकता है? प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने इन्हीं प्रश्नों की ओर अपने पाठकजनों का ध्यान आकर्षित किया है। ''घर का काम–काज, सजना–संवारना, अपने कपड़े तहा कर क्रमवार अलमारी में टाँगना, क्या यह सब समय को बर्बाद करना है? क्या दूसरों का जीवन सुधारने का प्रयत्न ही सार्थकता है–चाहे, वह अच्छे घरों की लड़कियों को पढ़ाना हो, या सब्जी बेचने वालियों को संगठन करना सिखाना या आत्मनिर्भरता का संदेश देना ही आधुनिक नारी का जीवन सार्थक बनाता है?''[३]

इलिकी ने मुंह बिचका लिया, ''यदि आपको घर–गृहस्थी ही सार्थक लगती है तो आगे क्या कहा जा सकता है? आप बहुत परंपरागत जीवन जी रही हैं।''

''पर हरेक व्यक्ति को अपना जीवन अपनी तरह से बिताने का अधिकार होना, क्या यह स्वतंत्रता–मुक्ति नहीं है?''[८]

शिंजिनी फिर विचार करती है कि इस बार उसे कुछ करना है। वह अपने अकर्मण्य जीवन से बाहर निकल कर कुछ बनना चाहती है। शिंजिनी के रूप में लेखिका तमाम उन महिलाओं को प्रस्तुत करती है जो जीवन में करना तो बहुत कुछ चाहती हैं लेकिन कभी सुविधाओं के अभावों में, कभी जिम्मेदारियों के चलते स्वयं को एक कोने में रखती चली जाती हैं और जब–तब पर छोड़कर धीरे–धीरे अपने सारे सपनों को स्वयं अपने हाथों से खत्म कर देती हैं। ये वो महिलाएं हैं जो लीक पर चलती हैं। न कभी वह स्वयं के लिए बोल पाती हैं और न कभी परिवार अथवा समाज का ध्यान ही उनकी ओर जाता है।

अमेरिका के उन्मुक्त माहौल में रहकर माताजी विचार करती हैं कि भारत में स्त्रियों को कैसे जीना सिखाया जाता है? वह सोचती है कि अगर उसे ऐसी आजादी युवा रहने पर मिली होती तो वह स्वयं का कितना विकास

कर पाती और फिर शिंजिनी की ओर देखती है कि उसके पास अवसर है फिर भी वह दब्बू और डरपोक ही रह गई। कारण, उसके स्वयं को दिए गए संस्कार और रोक–टोक है। "तुम सारी जिन्दगी यों ही डरपोक और दब्बू बनी रहोगी? अगर तुम्हारी उम्र में मुझे अमेरिका आने को मिला होता तो देखती..."

"क्या देखती मम्मी?"

"अरे, उम्र होने से कोई अरमान, शौक खत्म तो नहीं हो जाते? हमें तो मन मारना ही सिखाया जाता है, और हम वही स्वीकार भी कर लेते हैंकृयह न खाओ, यह न पियो, यह मत करो, वहाँ मत जाओ। निषेध ही निषेध! औरों का, पड़ोसियों, समाज और रिश्तेदारों का डर..."

"तो फिर मुझे डरपोक क्यों कहती हैं ?"

"वह तो तुम्हारा स्वभाव ही है अपने में सिमटे, सिकुड़े रहना। मेरा भी दोष है," वह रुकीं, मेरी ओर देखते हुए आगे बोलीं, "माँ–बाप अपने बच्चों को जिंदगी के थपेड़ों से बचाना चाहते हैं, उनकी सुरक्षा कभी–कभी कैद बन जाती है।"[९]

'अल्पविराम' उपन्यास में, डॉ० साहब के रूप में सच्चे और पवित्र प्रेम को दर्शाया है। आधुनिक विचारधारा का एक पति जो अपनी पत्नी को परिपक्व बनते देखना चाहता है। डॉ० साहब शिंजिनी के भोलेपन और सादगी से प्रेम करतें हैं। किंतु उन्हें भय होता है समाज का कि कहीं समाज उसके भोलेपन का गलत फायदा न उठा ले। वह शिंजिनी को अपने दिल का सब हाल पत्रों के माध्यम से बतातें हैं। शिंजिनी को सारे पत्र उनकी मृत्यु के बाद प्राप्त होते हैं। एक पत्र में वह लिखतें हैं, "तुम्हारे लिए जो प्रेम का स्त्रोत फूटा, वह बिल्कुल अलग एहसास था। इसलिए नहीं कि तुम अनगढ़ और जवान थी, बल्कि वह तुम्हारी सादगी, अपनेपन से बेखबरी और तुम्हारा अप्रस्फुटित सौंदर्य था। तुम्हें रौंदने का, खूँदने का और लूटने का मन में विचार भी नहीं आया। मैंने चाहा, यही चाहा कि तुम पर निसार हो जाऊँ और हो भी गया–चुपचाप, उस कहानी की बुलबुल की तरह, जिसने अपने हृदय में काँटा चुभोकर गुलाब के फूल को अपने रक्त से लाल रंग में रँग दिया था।

मेरे हृदय में कई कांटे थे–मेरी उम्र, मेरा कैंसर से युद्ध और मेरा संतान न दे पाने का एहसास।

मेरा जीवन–वृत्त क्या है? यही न, एक पचास वर्ष का पुरुष जिसने जवानी ऐयाशी और लम्पटता में बिताई, पर पिछले पच्चीस वर्षों से तापसी जीवन अध्ययन, खनन और शोध में बिताया है, जो मृत्यु की कगार पर खड़ा है–अपने से आधी उम्र की, बेफिक्र बेखबर लड़की के प्रेम में पड़ जाता है। और जब वह लड़की पूर्ण विश्वास के साथ उसका वरण कर लेती है तो वह अपने उन्मत्त प्यार से उसे सराबोर करता है और दिन–प्रतिदिन उसे प्रस्फुटित होते, उसे अपने को पहचानने का प्रयत्न करते देखता है। उसे आशा है कि वह लड़की एक दिन आत्म साक्षात्कार करने में सफल होगी, और तभी मुझे बहुत शांति बहुत सुकून मिलेगा।"[१०]

पति की मृत्यु हो जाने के बाद शिंजिनी भारत वापिस न जाने का निर्णय लेती है और अब वह अपना आगे का जीवन प्रवाल के साथ बिताना चाहती है– "मेरे मन में असम्बद्ध विचार मंडराते हैं। लौटने के लिए एयरलाइन में सीट मिल सकती है, पर मैं अब जान रही हूँ कि मैं वापस नहीं जाऊंगी। कभी नहीं। यही रहूँगी, पति के फ्लैट में निर्वाह करने के लिए छोटी–मोटी नौकरी कर लूँगी, जैसे अवैधानिक लोग करते हैं। और अपना उपन्यास लिखूँगी।"[११]

निष्कर्षतः उषा प्रियंवदा हिंदी साहित्य की बहुचर्चित लेखिका हैं। उनकी रचनाओं को पढ़ते हुए पाठकगण

अपने जीवन के अनुभवों को महसूस करते हैं। अपने साहित्य में वह नारी मनःस्थितियों के साथ–साथ, पुरुष की संवेदनाओं को भी सहज रूप से प्रकट करतीं हैं। 'अल्पविराम' उपन्यास में पुरुष पात्रों का एक नया रूप देखने को मिलता है, जिनके साथ की वजह से शिंजिनी जैसी भोली–भाली लड़की परिपक्व बनकर सामने आती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि :-

१. डॉ० संदीप रणभिरकर : आधुनिकता बोध और उषा प्रियंवदा, अमन प्रकाशन, रामबाग, कानपुर, सन् २०१३, पृ० १३६
२. अल्पविराम : उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, सन् २०१६, पृ० १०
३. वही, पृ० १०
४. वही, पृ० ६४
५. वही, पृ० ६४
६. डॉ० नीता द. भोंसले : उषा प्रियंवदा कृत शेषयात्रा एक अनुशीलन वाङ्गमय बुक्स मिल्लत कॉलोनी, अलीगढ, २०१४
७. अल्पविराम : उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, सन् २०१६ पृ० २२
८. वही, पृ० १६ और १७
९. वही, पृ० ६६
१०. वही, पृ० २७५
११. वही, पृ० ३१०

रीना नागर
फ्लॅट सं० 103, राज रिट्रीट सोसाइटी,
डिफेंस कॉलोनी, भोपुरा, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश) – 201005
मो० – 9310191233

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 136-140

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मधु कांकरिया के उपन्यासों में निम्नवर्गीय जीवन

नितिन कुमार, शोधार्थी,
डॉ० मिन्तू, एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, कु० मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर (उ०प्र०)

कथाकार मधु कांकरिया का नाम महिला साहित्यकारों में किसी परिचय का मोहताज नहीं है। उनका निम्नवर्गीय समाज से बहुत गहरा संबंध रहा है। उन्होंने अपने जीवन में अनेक दंश झेले हैं। कांकरिया जी ने घटना स्थल पर जाकर समाज के दबे–कुचले, शोषण ग्रस्त लोगों के जीवन को निकटता से देखा, उनके दुःख में दुःखी हुई तथा उनकी खुशी में स्वयं भी मुस्कुरा दी।

मधु कांकरिया ने अपने उपन्यासों में निम्नवर्गीय समाज के जीवन की स्थिति का यथार्थ चित्रण बड़ी ही तटस्थता के साथ किया है। उनके उपन्यासों के पात्र अज्ञानी, अनपढ़, गरीब, शोषित, दलित, आदिवासी तथा महिला हैं, वो जहाँ शोषण ग्रस्त जीवन जीने पर मजबूर हैं वहाँ अपनी स्थिति को बदलने के लिए प्रयासरत् भी दिखाई देती हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश को विकास की ओर अग्रसर करने के लिए नए–नए उद्योगों को बढ़ावा दिया गया। अमीरों ने गरीबों को कार्य तो दिया, परन्तु तनख्वाह कम होने के कारण उनकी हालत दयनीय ही बनी रही न तो उनके रहने की उचित व्यवस्था की गई और नहीं उनकी स्थिति में परिवर्तन के लिए प्रयास किए गए। एक छोटे से घर में परिवार के सदस्य इस प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं, जैसे इन घरों में मनुष्य नहीं, बल्कि जानवर बाड़े में रह रहे हो। मधु कांकरिया ने अपने उपन्यासों में निम्नवर्गीय समाज के जीवन से जुड़ी समस्याओं को उठाया है। दलित समाज के जीवन में उत्पन्न समस्याऐं तथा उनके निम्न स्तरीय जीवन में आवासीय समस्या को लेखिका में इन शब्दों में व्यक्त किया है– षठिंगने–ठिंगने घर। कच्चे–कच्चे गोबर माटी से लिपे–पुते। कहीं खपरैल की छत, कहीं टीन की, तो कहीं केवल पत्तों से बनी . . .! कुछ झोपड़ियाँ एकदम नई नवेली, ताजी टटकी तो कुछ रिसती . . . ध्वस्त प्रायः। घरों के पास की जमीन वर्षा के पानी से भीगी हुई। आस–पास ढ़ेर सारा गोबर, कचरा, बादा कीचड़, मक्खियाँ और बजब जाता मल–मूत्र जिसे चतुर मेहतरों की तरह सफाचट करते चुस्त कमॉडों से सुअर–प्राकृतिक मेहतर।'[1]

निम्न वर्गीय जातियों को समाज में अनेक सुविधाओं से वंचित रखा जाता है। उनके साथ पशुओं से भी अधिक बुरा व्यवहार किया जाता है। इसी स्थिति को ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है– 'भारत की कुल आबादी का 20 प्रतिशत (आँकडों में 16 प्रतिशत) हिस्सा दलितों का है, जो हजारों साल भारत की सामाजिक व्यवस्था में सबसे नीचे के पायदान पर रहे हैं, जिन्हें मूलभूत मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया

है। वे सार्वजनिक स्थलों का उपयोग नहीं कर सकते थे। तालाबों, कुंओं से पानी नहीं पी सकते थे। आज भी यह स्थिति मौजूद है। राजस्थान, हरियाणा में सार्वजनिक तालाबों से पानी लेने के लिए आज भी आन्दोलन करने पड़ते है।'[2]

निम्नवर्गीय समाज में आदिवासी समाज को जीवन जीने के लिए मजबूर होना पड़ता है। जीवन का कोई भी पक्ष नहीं जो अभाव एवं असुविधा से घिरा हुआ न हो। आदिवासी समाज जंगलों को अपना घर मानते हैं, लेकिन पैसों के लालच में कुछ लोग जंगलों और पहाड़ों का दोहन कर इन लोगों के लिए रहने के संसाधन समाप्त कर रहे हैं– 'आदिवासियों का अपना कृषि–ढ़ांचा था। गैर आदिवासियों ने जंगलों और पहाड़ों में आर्थिक संसाधनों के दोहन के लिए घुसपैठ शुरू कर दी। यह सिलसिला वर्षों से लगातार चल रहा है। आर्थिक उदारीकरण के बाद पिछले दो दशकों से इसकी प्रक्रिया और तेज हुई है।'[3]

सरकार चाहे कोई भी कानून बना दे परन्तु उसका क्रियान्वयन संबंधित अधिकारियों के द्वारा ही किया जाता है। संबंधित अधिकारी भ्रष्ट मानसिकता से ग्रस्त होकर जनता का मनमाने ढंग से शोषण करने का अवसर हाथ से जाने नहीं देते हैं। आदिवासियों के लिए संसद ने 'जंगल कानून' तो बना दिए आदिवासियों का सबसे अधिक शोषण जंगल में तश्करी करने वाले गिरोहों से मिलकर वन अधिकारी ही करते है। मधु कांकरिया ने इसी स्थिति का वर्णन अपने उपन्यास 'हम यहाँ थे' में इन शब्दों में किया है– 'बाबा तो खुले आम कहते हैं कि सरकार ने बिल्ली को दूध की रखवाली में लगा दिया है। जंगल को जंगल वासियों से खतरा नहीं है, इन्हें खतरा है तो उन वन अधिकारियों से जो जंगल को अवैध ढंग से काट–काटकर इसे मरूस्थल बना रहे हैं। जब तेज आंधी या तूफान आते हैं इन वन अधिकारियों के चेहरे खिल जाते हैं। क्योंकि अनाधिकृत वृक्ष काट लिए जाते हैं और उसे दिखा दिया जाता है कि वे तेज आंधी में उखड़ गए।'[4]

आदिवासियों के अशिक्षित होने के पीछे केन्द्र और राज्य सरकारें बराबर की दोषी है। आदिवासियों को उनकी भाषा में प्राथमिक शिक्षा देने में सरकारें उदासीन हैं। आज तक लाखों की संख्या में होने के बावजूद भी गोण्ड, सन्थाल, भील आदि प्रमुख समुदाय शिक्षा से वंचित है।

साहित्य सदैव वंचित और निम्न वर्ग के समाज की समस्याओं को उठाता रहा है। आदिवासी समाज में तो अभावग्रस्त जीवन मानों उनका भाग्य ही बन गया है। आदिवासी समाज की गिरती हालत का सबसे प्रमुख कारण अशिक्षा है। उनके अशिक्षित रहने के कई कारण है, इन्हीं कारणों को मधु कांकरिया ने इन शब्दों में व्यक्त किया है– 'जाने क्यों मन में लहर–सी–उठी, क्या इसका पति झारखण्ड की उस युवा पीढ़ी से है जो अब थोड़ा–बहुत पढ़–लिखकर बजाय खेती या अन्य परम्परागत कामों के शहरों में मजदूरी के लिए जाना चाहते थे।

'कितनी जमात पढ़ा है तेरा पति?' मेरे पूछते ही गर्व से उसका चेहरा चमक उठा। नाक फुलाते हुए कहने लगी– 'डेढ़–डेढ़ सौ मीटर की दो–दो नदियाँ पारकर लोहर दगा की सरकारी स्कूल में जाता था रघुबर पढ़ने को।'

'दो–दो नदियाँ पार कर?'

पाँच जमात के बाद सबसे नजदीक स्कूल वहीं थीं।'[5]

निम्नवर्गीय समाज की सबसे बड़ी विड़म्बना है बेरोजगारी। सरकारों की उदासीनता और उद्योगपतियों द्वारा कारखानों में बनने वाले टिकाऊ माल के आगे आदिवासियों द्वारा बनाए गए हस्तशिल्प के माल को बाजारी

प्रतिस्पर्धा से बाहर कर दिया गया, जिस कारण आदिवासी समाज में बेरोजगारी अपनी चरम सीमा को पार करने लगी है। बेरोजगारी के कारण न वह भरपेट भोजन का इंतजाम कर पाते हैं नही रहने के लिए घर का। मधु कांकरिया ने आदिवासी समाज की इसी स्थिति का वर्णन किया है– 'का बताएं दीदी, हमारा लोहा और लोहे का सामान थोड़ा महंगा बनता था, बाजार में टाटा के लोहे का सस्ता सामान मिलने लग गया। तब लोग न क्यों खरीदेंगे हमारा सामान। सामान नहीं बिकता था। हमारे दादा ससुर ने सरकार से गुहार भी लगाई कि हमें थोड़ी सुविधा दे दीजिए, हम फिर से जी उठेंगे। ई टाटा–बाटा ने हमारा ही ज्ञान चुराया है।'[6]

बेरोजगारी के कारण निम्नवर्गीय समाज को कई तरीके से शोषण का शिकार होना पड़ता हैं। आदिवासी समाज बाहरी दुनिया के छल–कपट से अंजान होता है। वह स्वभाव से भोला होता है। आदिवासियों की आर्थिक वैषम्यता का बड़ा कारण उनका सरल स्वभाव भी है। बाहरी समाज के छल–कपट से अंजान यह समाज शोषण का शिकार आसानी से हो जाता है। मधु कांकरिया के 'सूखते चिनार' उपन्यास में इसी स्थिति को स्पष्ट किया गया है– 'पापा लालदेव के काका को कोई बिचौलिया यही से ईंट निकालने के लिए भूटान ले गया था, गाँव के कई दूसरे आदिवासियों के साथ। उसके काका आने के बाद भी नहीं बता पाए कि वे कितने साल रहे वहाँ और कितना वेतन मिलता रहा उन्हें वहाँ। जो कुछ भी एकमुश्त राशि बिचौलियाँ दे देता वे खुश होकर ले लेते। रांची पोस्टिंग के दौरान मैंने आदिवासियों की जो अँधेरी दुनिया देखी, बिना आँखों से देखे उस पर विश्वास करवाना मुमकिन था। मानव द्वारा मानव के शोषण और जीवन के अन्तहीन संघर्ष को मैंने वही समझा।'[7]

मधु कांकरिया ने स्त्री की दुर्दशा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण अपनी कहानियों तथा उपन्यासों में किया है। निम्नवर्गीय समाज की स्त्री का जीवन तो नरक से कम नहीं होता है। आज लगभग सभी शहरों में कॉल गर्ल्स और जिस्मफरोशी आम बात हो गई है। वर्तमान समाज चाहे कितनी भी उन्नति को प्राप्त करने में सफलता हासिल कर रहा हो। सभ्यता चाहे जितनी भी आगे चली गई हो, इन्टरनेट में भले ही दुनिया को मनुष्य के हाथों में समेट दिया हो परन्तु स्त्री को आज भी भोग की वस्तु समझा जाता है। यह मानसिकता प्राचीन काल से आज भी समानान्तर चली आ रही है। मधु कांकरिया ने स्त्री–त्रासदी का यथार्थ वर्णन 'सलाम आखिरी' उपन्यास में इस प्रकार किया है– 'और लगभग वही हैं, इनके सुख–दुःख। इनकी शब्दावलियों और मानसिकता का सिमटता आकाश। क्या खोकर वह क्या पा रही हैं, यह विवेक इस देह–व्यापार ने रफ्ता–रफ्ता छीन लिया है इनसे। सभ्यता और विकास की यात्रा, क्लोनिंग और इन्टरनेट तक पहुँची है, पर औरत वहीं खड़ी है . . . अपनी देह को लिए, देह की भाषा के साथ।'[8]

गरीब और मजबूर स्त्रियों को रोजगार के नाम पर देह–व्यापार में धकेल दिया जाता है। कोई भी स्त्री देह–व्यापार में अपनी मर्जी से नहीं उतरती है। उनकी मजबूरियाँ उन्हें इस घृणित व्यापार में धकेलने का कारण बनाती हैं। स्त्री तो सदैव से लज्जा की मूर्ति रही है। एक वेश्या धंधे वाली बाद में होती है, पहले वह स्त्री है। वेश्यावृति मैं एक स्त्री भले ही अपने शरीर को पराए पुरुष को बेच देती है परन्तु अपनी संवेदनाओं तथा भावनाओं से वह कभी–भी जुड़ नहीं पाती है। इसी मनोवैज्ञानिक स्थिति का वर्णन मधु कांकरिया ने किया है– 'तमाम शालीनताओं, मर्यादाओं और सम्बन्धों के मुर्दाघरों के ये रास्ते, जहाँ हर आने वाले इस सत्य से नितान्त अनभिज्ञ है कि जीवन की तमाम आधुनिकता के बावजूद सेक्स जीवित तभी तक रहता है, जब तक भावनाओं से जुड़ा

हो वह। वरन् वह सिर्फ मुर्दा जिस्मों के साथ हम बिस्तर भर होना है।'[9]

देह–व्यापार के बाजार में स्त्री को एक वस्तु की भाँति बेचा जाता है। उसकी भी वैरायटी होती है। किसी भी सभ्य समाज के लिए यह बात बड़ी ही शर्मनाक हैं किए – मनुष्य को वस्तु की भाँति बेचा जाता है और समाज उसके जिस्म को नोंचने के लिए बोलियाँ लगाता है। मधु कांकरिया ने सदैव अपने उपन्यासों में ज्वलन्त मुद्दों को उठाया है। उनका उपन्यास 'सलाम आखिरी' तो वेश्या समाज का खुला चिट्ठा तथा मैग्नाकार्टा है। स्वयं लेखिका ने कलकत्ता के सोना गाछी रेड लाइट एरिया में जाकर वेश्याओं की समस्याओं को निकटता से जाकर देखा और उनकी स्थिति का यथार्थ वर्णन अपनी रचना में किया। इस उपन्यास 'सलाम आखिरी' को पढ़कर ऐसा लगता है कि मानों स्त्री, स्त्री न होकर एक वस्तु मात्र है, जो पुरुष के उपयोग के लिए पैदा की गई है। यथा– 'सर, सुनिए तो, अब की–बहुत वैरायटी हैं। आगरा वाली, नेपाली, बंगाली और सर . . . मोहम्डन भी है, खालिस मुसल्ली . . . कसम सेसर, अरे झूठ क्यूं बोलूँगा सर और झूठ बोल भी दूँ तो भी क्या, सोलह साल की कुड़ी को तो जवान होनी ही है . . .!'

'क्या कहा . . .? मोहम्डन भी है, तब तो हम जरूर जाएँगे . . . उसे पवित्र करने। यही तो जीत होगी हमारे ब्राह्मणत्व की।'[10] निम्न वर्गीय समाज के बड़े–लोगों को हीन हीं बच्चों को भी पेट भरने के लिए जूझ नापड़ता है। जब बड़ों को कोई का मन हीं मिले गातो वह बच्चों का पेट कहाँ से भर पाएँगें। मधु कांकरिया ने निम्न वर्गीय समाज की खाने के लिए संघर्ष की पीड़ा को अपने साहित्य विशेषकर उपन्यासों के माध्यम से यथार्थ चित्रण करने का प्रयास किया हैं। उनके उपन्यास 'पत्ताखोर' का एक उदाहरण –'दृटव्य है– 'दूसरे दिन जब उसका छोटा भाई बहुत रो रहा था तो वह टेंशन के सामने खड़ी रेलगाड़ी में चढ़ गया। भीख मांगकर अपने छोटे भाई को कुछ खिलादे ने की खातिर। एक–दो मिनट बाद ही ट्रेन चल दी। वह उतर नहीं पाया। तब से यह यहीं पर था . . . न जाने का रास्ता जानता था– न घर का कोई ठिकाना पास में भी। बाली स्ट्रीट बच्चे की तरह वह केले के ठेले से केला, मछली के ठेले से मछली जैसी छोटी–मोटी चीजें भी नहीं चुरा पाता था, इसका रण भीख माँगकर गुजारा करता था।'[11]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि साहित्यकार मधु कांकरिया ने उपन्यासों के माध्यम से अपने समय, समाज के निम्न वर्गीय समाज एवं जीवन से संबंधित जो मुद्दे समाज के समक्ष प्रस्तुत किए हैं, उनकी प्रासंगिकता को नकारा नहीं जा सकता है। आज भी निम्न वर्गीय समाज की समस्याएँ वैसी ही है जैसी पहले थीं, जैसा कि लेखिका ने उपन्यासों में दर्शाया है। इस स्थिति के एक नहीं अनेक कारण हैं– जैसे अज्ञानता, एक–दूसरे के प्रतिईर्ष्या–भाव, शिक्षा का अभाव, उदासीनता तथा सबसे गम्भीर समस्या गरीबी और बेरोजगारी की हैं। आप भी निम्न वर्ग केवल राजनीतिक दल और वोट बैंक मानते हैं। न तो सरकार उनकी स्थिति बदलना चाहती है और न समाज। साहित्यकारों में भी निम्न वर्ग के प्रति उदासीनता की भावना प्रकट हो रही है।

आज साहित्य में मात्र दलित–विमर्श, स्त्री–विमर्श, समलैंगिकता आदि मुद्दे चर्चा के विषय तो बनते हैं, परन्तु निम्न वर्ग की भूख, उनकी प्यास, उनका तन, उनकी संवेदना, उसकी इज्जत साहित्य का विषय नहीं बन पा रहे हैं। निम्न वर्ग में समाज के सभी धर्म और जाति के लोग आते हैं। साहित्यकारों को चाहिए कि वह यश की लालसा को छोड़कर प्रत्येक शोषण ग्रस्त के हक में आवाज उठाएँ ताकि साहित्य पर अवसरवादी लोग आरोप न लगा सकें कि अब तो साहित्य भी अभिजात्य वर्ग का खिलौना मात्र बनकर रह गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मधु कांकरिया, सेज पर संस्कृत, पृ० सं० 17–18
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य : अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, पृ० सं० 75
3. गंगासहाय मीणा, आदिवासी और हिन्दी उपन्यास, पृ० सं० 69–70
4. मधु कांकरिया, हम यहाँ थे, पृ० सं० 187
5. वही, पृ० सं० 190–191
6. वही, पृ० सं० 192
7. मधु कांकरिया, सूखते चिनार, पृ० सं० 87
8. मधु कांकरिया, सलाम आखिरी, पृ० सं०17
9. वही, पृ० सं०15
10. वही, पृ० सं०14
11. मधु कांकरिया, पत्ताखोर, पृ० सं० 179

मो०नं० 9897961846

ई–मेल sahilsamar1992@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 141-146

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

China's Strategy in South China Sea

Saumya Verma

Assisstant Professor, Swami Sahajanand Post Graduate College, Ghazipur- 233001

ABSTRACT :-

China has declared the South China Sea as the area of their core interest they have been trying to dominate the region from the era of Mao-Tse-Tung. The South China Sea is situated near the southern border of the People's Republic of China it is surrounded by many nations namely the Philippines, Malaysia, Indonesia, Brunei, Taiwan, Vietnam and China.From geographical point of you as well as economically China is the largest nation near South China Sea so China is being very assertive in South China Sea region. To maintain balance of power in this region, international community and other powerful nations like the United States of America, Japan, India, Australia are jointly trying to stop Chinese influence in the region.Undoubtedly China's national security lies on a controlled South China Sea so that China has some strategy to secure its core interests. It is a matter of research that how the International community has shifted its area of focus to the Indo-Pacific region. The paper tries to know the importance of the South China Sea as well as what strategies are followed by the People's Republic of China to secure its core interest in the region. This paper also gives a glance over the point of view of the other powerful nations who are not the claimant in the region and of those small nations who are claimant in this particular area. The paper also gives data over international law of the sea which helps to understand the reason of conflict and also what could be the probable solution.

KEYWORDS - UNCLOS (United Nations convention on the law of the sea), EEZ(Exclusive economic zone), Indo Pacific, SCS (South China Sea), QUAD, ASEAN, Transpacific Partnership, USA.

The crucial difference between the 20th and 21st century lies on the area of conflict which has shifted from a dry land to deep blue sea. In last century we have seen March of armies, bloodshed, war and power politics across the borders of Germany. Dry land of Europe was the area where great powers projected their selves to gain the superpower status. 21st century is different from the last century in many aspects, one of those aspects is the "most important geopolitical area", which has

shifted from Europe to Indo-pacific. South China sea is a part of Indo-pacific region and one of most tensed areas of the world.

The strategic significance of SCS has started as increasing conflict among those nation-states who have surrounded this water body i.e. China, Vietnam, the Philippines, Malaysia, Indonesia, Brunei and Taiwan as well as those who want the freedom of navigation i.e. India, USA, Japan, UK and Australia. China's aggressive behavior over the issue of controlling the disputed parts of SCS is giving extraordinary attention to this area of Indo-pacific. Present circumstances lead us to a situation where China seeks to exert its hegemonic stance through island-building and land reclamation activities. It is very clear that tensions are bound to rise and increase regional instability. To acquire the area within Nine- dotted line without creating much instability China definitely has a plan. In this backdrop, the paper focuses on the strategy of China in South China Sea.

East Asia is distinctive maritime region where shipping plays very important role. The region has some very important choke points like straits of Malacca, Sunda, Lombok and Makassar connecting Indian and Pacific Oceans which are used as shipping lanes economically and strategically crucial for the economies of Northeast Asia, USA and other emerging maritime powers. The oil transported through the strait of Malacca from the Indian Ocean, route to east Asia through the South China Sea, is more than half than six times the amount that passes through the Suez Canal and 17 times the amount that transits the Panama Canal. That is why this region has potential to become a new zone of conflict in 21st century. The countries near SCS are undergoing the economic transformation where security of maritime routes is becoming important day-by-day. SCS has become an integral part of the economies of states situated near SCS. Moreover, food security, energy security and other kind of non-traditional security threats are also there which can only be tackled by access to the seas. It is not only location and energy reserves that providing the South China Sea geostrategic importance, but also the existing territorial disputes that have surrounded these waters. Several disputes related to Spratly group of islands and Paracel Islands exists there which are taking attention of the world.

The shadow of historical animosity and associated mutual fear and suspicion are creating tension in the region. Regional power's defence policies are reflecting their asymmetrical power relations with extra regional powers that is implied by the moral, financial and military support by those powers who are much interested to suppress China. However, history of SCS says that, this interfering policy of extra regional power is not new. Imperialist Japan had also claimed and occupied Paracel and Spratly islands in May,1939. Before that France had controlled some features of SCS. Similarly, there are many incidents which indicate that SCS holds strategic significance for power politics. China portrays itself as a peace-loving developing state, In 2007, China's foreign ministry's

spokesperson Qin Gang made statements about the eight point diplomatic philosophy of China where he says that "China will not seek hegemony. China is still developing country and if it becomes a developed country, it will not seek hegemony. China will not play power politics……." Thus, China never tries tooccupy the region at once, it always goes slow. Looking upon the history of China's claim in the SCS signifies its gradual shift towards the region. Nine Dash line, originally eleven dash line, was first indicated by the Kuomintang government in 1947 after that when the communist party of China took over the main land China and formed People's Republic of China in 1949, the line war adopted and revised as Nine Dash/ Dot Line. With the end of the first Indochinese war the Geneva Accord 1954 came, and it gave south Vietnam control of the Vietnamese territory south to the 17th parallel which included the islands of Paracel and Spratly, but in 1958, China published a map showing area under Nine dash line as their part. The cold war geopolitical impact on SCS became prominent when Vietnamese war occurred, in this situation Soviet Union took the side of North Vietnam and USA had to take help of China for maintaining the balance. A non-involving promise from USA enabled People's Liberation Army Navy to take control over the South Vietnamese islands. The cold war geopolitics of the region was more Sino-Soviet than US-USSR. Although, USA defeated in Vietnamese war and China was backed in this region by USA but China did not leave control over the region and gradually occupied most of the areas of SCS. It used forces and diplomacy both to acquire reefs and islands of South China Sea.

In 1988, China and Vietnam fought near the Johnson reef, because China obtained a permit from Intergovernmental Oceanographic Commission to build five observation posts for conducting ocean surveys. One of the five observation posts was located in Spratly islands region, China started buildinga post in Fiery Cross Reef, When Vietnam sent its Navy to monitor the situation, both the navies fought near Johnson Island and then China occupied Johnson Reef. Similarly, In 1994, China occupied Mischief Reef which is situated some 250 miles from the Philippines cost. It was the first confrontation of China and the Philippines, an ally if the USA.Again in 2012, China took the Scarborough Shoal as a response to the Philippines navy's action of stopping Chinese fishing boats in the area. Most recently in 2021 Chinese fishing boats have been seen near Whitson Reef in the Spratly Island, a reef claimed by the Philippines as a part of their Exclusive Economic Zone. Thus, starting from a supporter of USA, China has now become so provocative and power projective and obviously a rivalry for the USA. This is because all other states that touch the South China Sea are more or less against China and that is why they look atUSA for diplomatic and military support.

The geography of China orients it in the direction of South China Sea. China's southern costal line touches SCS that makes China to look southward a basin of water formed, by Taiwan, the

Philippines, Malaysia and Indonesia all are weak states as compared to China, similar to the case of United States where Caribbean Sea is surrounded by small island states and enveloped by a continental-seized USA, where it projects power. Thus, South China Sea is an obvious arena for the Chinese power projection. As USA has been dominating the Caribbean since 19th century, China probably also wants to dominate the region of SCS.

The expansion of China into South China Sea and subsequent militarization of the region over the past several years has cultivated a security concerned environment. Looking upon its initial stage it was predicted that the expansion is probably for the geopolitical interest in the region, but new stage and steps of China in the region is increasing complexity. It implies that for the dedicated push to consolidate its gains in SCS, China can use its political and military powers because it has deployed surveillance aircrafts, guided-missile destroyers and also a bank of military equipment. China's behavior in the region has already established it as a regional dominant. However, it has to achieve that level where non-regional actors, USA, Japan and other members of QUAD, could not become voice of regional countries against it. In a region where five other parties- Vietnam, the Philippines, Indonesia, Malaysia and Taiwan- have made territorial claims and also all of them are modernizing their navies with the help of USA, Australia, India and Japan, China's position remains under pressure and its territorial assets under continued threat. The verdict, given by International Court of Justice on the basis of United Nations Convention on the Law of the Sea (UNCLOS) in a case filed by the Philippines related to the South China Sea disputed region, is against China. It makes China's stance in the region illegal and weakens its claims.

China's reaction against any naval exercise done by territorial claimants with extra regional power, indicates that it's assets in the region remain vulnerable. So long as it perceives external threat, it will be very reactive that any movement in the region will seem naked military aggression or alliance against it. As in the case of recent QUAD meeting, before which China's spokesperson gave statement where he says that "it will end up nowhere and will get no support." However, QUAD meeting was not concluded anything against China. It implies, the action of China it nothing but the reaction of its perception. So as long as it perceives threat against its area of 'core interest', it will be more aggressive and power projective in the region.

Initially, China was just claiming some islands and region by showing maps and historical documents, then it took permission for making post for surveys from International Oceanographic Center, after that it fought there with regional weak countries and increased its control. For last 10 years, it has been involved in making artificial islands, made many tiny islets habitable including strategically important Scarborough Shoal, lying just 140 miles away from island of Luzon of the

Philippines. Now China's SCS expansion is the consolidation and military fortification of its territorial assets. It already has expanded existing reefs and atolls by thousands of acres, but its military presence and preparedness has not reached to that adequate level where it can fearlessly control the entire region of SCS as USA holds its control over the Caribbean.

There are some factors which indicates that the militarization of south China Sea will further increase: China's past expansionist behavior and clashes with persistent claims by states situated near to the SCS; USA's declaration that the freedom of navigation (FON) principle should be preserved; and China's departure from past promises about not developing its SCS assets further. China gives justification of its military installation and placement of weapon and weapon systems that they are for the security of the civilians and rescue operations. So, it is China who made artificial islands habitable and now for the security of the people, living there, it is fortifying and militarizing them.

It is not a truth that China is only using its military power to gather more power in the region, China is also using some other diplomatic, financial and political ways to establish its unchallengeable dominance in the South China Sea. China has turned to other methods for rolling out its claims, for example, making statements of collaboration of East Asian Nations, asking them to talk to China bilaterally, making financial and trading arrangements with relatively weak countries like Brunei. China is trying to increase economic reliance of other regional countries so that their dependency on China will work better of it. However, there are other countries who have not got stuck in China's debt trap. Thus, here China will be seen consistently trying to make alliance with regional parties like Indonesia and Malaysia. The Philippines has reconciled with China after being successfully deceivedby China's Belt and Road Initiative. Belt and Road initiative seems a political tool by which China wants to increase its political influence over the region of South China Sea. Vietnam, however has remained adamant in its approach to the SCS, with a record of systematic attempts to challenge China and turn the SCS into its own lake. Vietnam has made so many efforts to proscribe Chinese venture in the SCS as creation of further artificial islands, establishment of Air Defense Identification Zone and so on. These steps show the limit of Chinese influence. Thus, China has to have some alternative strategy to handle with Vietnam, most potential regional rival.

China has shown that it has many ways to expand its control in South China Sea. Formal talks, buying off its neighbors are just two possible tactics. For regional countries it is trying to be supportive and collaborative but for extra-regional powers it is very aggressive. It does not mean that these ways are firm, China can use forceful methods against regional powers also. These regional countries are seeking for USA's clear strategy related to China and also economic ties. China knows that if these littoral states come under the influence of the USA, it will be a more challenging scenario for it. That

is why, China is trying to use soft power diplomacy and debt trap and other peaceful tactics to acquire entire region of the South China Sea.

After the outbreak of coronavirus pandemic, China has become more assertive and aggressive in the South China Sea. The incidents of sinking of Vietnamese fishing boat by China Coast Guard ship in the Paracel and opposing Malaysian oil and gas operations are some examples of China's aggressiveness in the region during the pandemic. It may be because every country is accusing China for spreading coronavirus or it can be part of China's strategy. Whatever moral drama is occurring in South China Sea is taking the form of austere power politics of the sort. It is making sense of Thucydides statement that "The strong do what they can and the weak suffer what they must", here a strong China is making to suffer other South-East Asian Countries. China, with grandstrategy, has made itself strong enough that it can take forceful steps but, looking upon its history of claims and disputes it can be said that it will not indulge in a full-scale war. It will wait and gradually increase its influence with all possible ways.

Bibliography :-

1. Bhattacharya, Shubhadeep, Understanding South China Sea Geopolitics, Pentagon Press, Delhi,2017.
2. CaptSoni, S.L.&Col. Bhargav, C. P., Supremacy of China Over South China Sea, Prashant Publishing House, Delhi, 2017.
3. Dr. Dubey, Sarika, South China Sea and the Chinese Game of Expansionism, World Focus Volume XXXIX Number 4, New Delhi, April 2018.
4. Nath, Sanjukta, Reflecting on the Strategic and Geopolitical Dynamics of the Concept of Indo-pacific, Worlds Focus Volume XXXIX Number 1, New Delhi, January 2018.
5. Permeshweran, Prashanth, The South China Sea 2020: What to Watch, The Diplomat(e-paper), April 17, 2020.
6. Burgers, Tobilas and Romaniuk, Scott N., China's Next Phase of Militarization in the South China Sea, The Diplomat(e-paper), March 20,2019.
7. Joshi, Manoj, The Beating Heart of the Indo- Pacific Strategy is the South China Sea, www.orfonline.org, July 17, 2021.

M. : 9140161287

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 147-153

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अर्थावबोधे निरूक्तशास्त्रस्य उपादेयता

जयकिशन नैनानी, शोधच्छात्र

प्रो. मनोज कुमार मिश्र, मार्गदर्शक

वेदपौरोहित्य विद्या शाखाः, गंगानाथ झा परिसर, के. संवि. वि. प्रयागराज (उ.प्र.)

प्रस्तावना -

वैदिकशब्दराशिः निरुक्ते : समाम्नातः , गवादेरारभ्य देवपत्न्यन्तं शब्दसमुदाय : ऋषिभिः सञ्चित्य सञ्चित्य अत्र ग्रन्थीकृतम् । निरुक्तशास्त्रम् विश्वस्य प्रथमं प्राचीनतमं च शब्दकोशशास्त्रमस्ति । ब्राह्मणग्रन्थेषु या निर्वचनपद्धतिः आसीत्, सा अत्र सुष्ठु पल्लविता पुष्पिता च अभवत् । अत्र तस्याः निर्वचनपद्धतेः सिद्धान्तानां व्यवस्थितं, शास्त्रानुगुणं, क्रमपूर्वकं - शास्त्रं निरुक्तम् इति प्रसिद्धम् । निरुक्तस्य कृते आंग्लभाषायां 'एटिमालाजी' (etymology) इति शब्दः प्रसिद्धः , यस्यार्थो अस्ति शब्दस्य उत्पत्तेः विकासप्रक्रियायाः च अध्ययनम् ;

भाषाशास्त्रदृष्टया अपि निरुक्त अत्यन्तं महत्वपूर्णं शास्त्रं विद्यते , अत्र शब्दानां मूलज्ञानं क्रियते प्रक्रियाः एषा अर्थविज्ञानम् ' (semantics) इति उच्यते । अत्र शब्दार्थयोः विकासः कथम् ?, एकार्थशब्दाः कथं ? , अनेकार्थकाः भवन्ति, विभिन्नार्थयुक्ताः शब्दाः एकार्थका : कथम् ? , पर्यायवाचिपदेषु के के सूक्ष्माः भेदाः ?, अर्थः कथं परिवर्तते? इत्यादयः चर्चा : अस्मिन् ग्रन्थे क्रियन्ते। यथा गो इति शब्दः कथं अनेकार्थको अभवत्। एतत् शास्त्रं प्राचीनानां गुरूणाम् भाषाविज्ञानदृष्टिकोणमाधारीकृत्य तेषां सुदीर्घचिन्तनस्य च सूचकं विद्यते ।

विषयप्रतिपादनम् -

निरुक्तस्य विभजनम् -

निरुक्ताङ्गं द्विस्वरूपमुपलभ्यते - निघण्टुशब्दाभिधेयमेकम्, द्वितीय निर्वाचनात्मकम् च । अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तमिति प्रथमस्य लक्षणम् अर्थात् गौः, ग्मा, ज्मा, क्ष्मा, क्षा, क्षमेत्यारभ्य, वसवः, वाजिनः देवपत्न्य इत्यन्तं यः पदानां समाम्नायः समाम्नातः एतस्मिन् ग्रन्थे पदार्थावबोधाय परापेक्षा न विद्यते । एतावन्ति पृथिवीनामान्येतावन्ति हिरण्यनामानीत्येवं तत्र तत्र विस्पष्टमभिहितत्वात् । (१)

निःशेषेण पदानामर्था उच्यन्ते यत्र तन्निरुक्तमिति च द्वितीयस्य । एतामेव च निरुक्ताङ्गसम्बन्धिनीं विवेचनां साम्प्रतिकयुगे भाषाविज्ञानपदेन जनाः व्यवहरन्ति । निरुक्तस्य विषयक्षेत्रं पद्येनानेन प्रतिपादितम् अस्ति -

"वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ । धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् । "इति । इदञ्च निरुक्ताङ्गं चतुर्दशभिर्ऋषिभिर्विवेचितमिति बहुश: श्रूयमाणमपि सम्प्रति यास्ककृताद् निरुक्तान्नाधिकमुपलभ्यते, अत एव तत् सर्ववेदसमादृतम् । वाररुचं निरुक्तमपि लघुपुस्तकमेकं मुद्रितमुपादेयञ्च अस्ति एवं वेदशाखापर्यालोचनिति ग्रन्थः वर्णयति ।

निरुक्तशास्त्रविषये सायणः स्वस्य ऋग्वेदभाष्यभूमिकायां लिखति यत् -

तदेतन्निरुक्तं त्रिकाण्डम् । तच्च अनुक्रमणिकाभाष्ये दर्शितम्-

'आद्यं नैघण्टुकं काण्डं द्वितीयं नैगमं तथा । तृतीयं दैवतञ्चेति समाम्नायस्त्रिधा स्थितः ।। गौराद्यापारपर्यन्तमाद्यं नैघण्टुकं मतम् । जहाद्युल्वमृवीसान्तं नैगमं सम्प्रचक्षते ॥

अग्न्यादिदेवपत्न्यन्तं देवताकाण्डमुच्यते । अग्न्यादिदेवी ऊर्जाहुत्यन्तः क्षितिगतो गणः ॥ वाय्वादयो भगान्ताः स्युरन्तरिक्षस्थदेवताः । सूर्यादिदेवपत्न्यन्ताद्युस्थाना देवता इति । गौरादिदेवपत्न्यन्तं समाम्नायमधीयते ।।' इति । एकार्थवाचिनां पर्यायशब्दाना सङ्गो यत्र प्रायेण उपदिश्यते तत्र

निघण्टुशब्दः प्रसिद्धः । तादृशेषु अमरसिंह वैजयन्तीहलायुधादिषु दश निघण्टव इति व्यवहारात् । एवमत्रापि पर्यायशब्दसङ्घोपदेशाद् आद्य .काण्डस्य नैघण्टुकत्वम् तस्मिन् काण्डे त्रयोऽध्यायाः । तेषु प्रथमे पृथिव्यादि- लोकदिक्कालादिद्रव्य विषयाणि नामानि । द्वितीये मनुष्यतदवयवादि- द्रव्यविषयाणि । तृतीये तदुभयद्रव्यगतबहुत्वह्रस्वत्वादिधर्मविषयाणि । निगमशब्दो वेदवाची, यास्केन तत्र तत्रापि निगमो भवतीत्येवं वेदवाक्यानाम् अवतारितत्वात् । तस्मिन् निगम एव प्रायेण वर्तमानानां शब्दानां चतुर्थाध्यायरूपे द्वितीयस्मिन् काण्डे उपदिष्टत्वात् तस्य काण्डस्य नैगमत्वम् । पञ्चमाध्यायरूपस्य तृतीयकाण्डस्य दैवतत्वं विस्पष्टम् ।

पञ्चाध्यायरूपकाण्डत्रयात्मके एतस्मिन् ग्रन्थे परनिरपेक्षतया पदार्थस्य उक्तत्वात् तस्य ग्रन्थस्य निरुक्तत्वम् । तद्व्याख्यानञ्च समाम्नायः समाम्नात इत्यारभ्य तस्यास्तस्यास्ताद्भाव्यमनुभवत्यनुभवतीत्यन्तैर्द्वादश- भिरध्याययस्को निर्ममे । तदपि निरुक्तमित्युच्यते, एकैकस्य पदस्य सम्भाविता अवयवार्थास्तत्र निःशेषेण उच्यन्ते इति व्युत्पत्तेः । तत्र हि, चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्गनिपाता चेति प्रतिज्ञाय, उच्चावचेषु अर्थेषु निपतन्तीति निपातस्वरूपं निरुच्य एवमुदाहृतम्-नेति प्रतिषेधार्थीयो भाषायामुभयमन्वध्यायं 'नेन्द्र' देवममंसत' इति प्रतिषेधार्थीय इति, 'दुर्मदासो न सुरायां' मित्युपमार्थीय (नि० १।१।४) इति च । तच्च लोके केवल- प्रतिषेधार्थीयस्यापि नकारस्य वेदे प्रतिषेधोपमालक्षणोभयार्थीदाहरणमस्मिन् ग्रंथेऽवगम्यते । एवं ग्रन्थकारेण उक्तास्तत्तत्पदनिर्वचनविशेषास्तत्तन्मन्त्र- व्याख्यानावसरे एव अस्माभिरुदाहरिष्यन्ते । न च निर्वचनानां निर्मूलत्वं शङ्कनीयम्, एतद्व्युत्पत्त्यर्थमेव ब्राह्मणेषु पदनिर्वचनानां केषाञ्चिदुक्तत्वात्- 'तदाहुतीनाम् आहुतित्वम्' इति, (ऐत० ब्रा० १११।२) 'तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षत' (ऐत० आ० २।४।३) इति, यद प्रथयत् तत् पृथिव्याः पृथिवी- त्वम् (तै० ब्रा० १।१।३।६।७) इति च । ग्रंथकारोऽपि तत्र तत्र स्वोक्तनिर्व- चनमूलभूत ब्राह्मणानि उदाहरिष्यति । केषाचिन् निर्वचनानां व्याकरणबलेन सिद्धावपि न, सर्वेषां सिद्धिरस्ति । अतएव ग्रन्थकार

आह-'तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कात्स्न्र्यं स्वार्थसाधकञ्च' (नि० १ ।१५) इति । तस्माद् वेदार्थावबोधाय उपयुक्तं निरुक्तम् । (२)

तत्र यास्केन सह चतुर्दश निरुक्तकाराः आसन् 'निरुक्तं चतुर्दशप्रभेदम् ' (३)
परन्तु वर्तमानसमये तु प्रजापतिकश्यपकृत निघण्टुः ,यास्ककृत निरुक्तग्रन्थश्च एवोपलभ्यते । यास्कस्य पूर्ववर्तिनः निरुक्तकाराः सन्ति , यथा - आग्रायण :, औपमन्यवः, और्णवाभ :, गार्ग्यः, गालव :, वार्ष्यायणि : , शाकपूणि : इत्यादयः। यास्केन निरुक्ते समुचितस्थानेषु तेषां मतं प्रदर्शितम्

महाभारतशान्तिपर्वे यास्कः निरुक्तकाररुपेण स्पष्टतया उल्लिखितम् अस्ति । एतदपि उक्तम् यत् यास्केन विनष्टं निरुक्तशास्त्रं पुनरुत्थापितम्।

यास्को मामृषिरव्यग्रो नैकयज्ञेषु गीतवान् । ...
यास्क ऋषिरुदारधीः ... नष्टं निरुक्तमधिजमिवान् ॥
(४)

यास्कः पाणिनेः पूर्ववर्ती आसीत्। तस्य समयः ८०० ई.पू. यावत् इति मन्यते ।

निरुक्तस्य त्रीणि भाष्याणि उपलभ्यन्ते।
एते सन्ति-
१. 'ऋज्वर्थ-वृत्तिः' इति अस्य भाष्यकारः दुर्गाचार्यः अस्ति । अस्मिन् निरुक्तस्य प्रत्येकं शब्दस्य व्याख्या कृता ' लोधशब्द ' विषयिणी ऋक् अतिरिच्य । अस्य भाष्यम् अतीव प्रामाणिकम् अस्ति।

२. स्कन्दमाहेश्वरटीका - एतस्याः टीकाकारः स्कन्द महेश्वर आसीत् एषा टीकाः लाहौरतः प्रकाशिता विद्यते। अयं स्कन्द : ऋग्वेदस्यापि भाष्यकारः आसीत्।

३. 'निरुक्त-निचयम्- एतस्य भाष्यकारस्य नाम वररुचिः इति अस्ति। अस्मिन् निरुक्तस्य सिद्धान्तानां व्याख्या १०० श्लोकेषु अस्ति ।

निरुक्तस्य प्रयोजनानि -

यास्कः स्वयमेव निरुक्ते लिखति _

१. अथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यते । अर्थमप्रतियतो नात्यन्तं स्वरसंस्कारोद्देशः । तदिदं विद्यास्थानं, व्याकरणस्य कात्स्न्र्यं स्वार्थसाधकं च । (५)
२. अथापीदमन्तरेण पदविभागो न विद्यते ।।
अव॒साय॑ प॒द्वते रुद्र मृळ ऋ० १०.१६९.१।। इति
पद्वदवसं गावः, पथ्यदनम् । अवतेर्गत्यर्थस्यासो नामकरण- स्तस्मान्नावगृह्णन्ति ।

अव॒सायाश्वा॑न् ऋ० १.१०४.१॥ इति

स्यतिरुपसृष्टो विमोचने, तस्मादवगृहणन्ति। दूतो निर्ऋत्या इदमाजगामं ॥ - ऋ० १०.१६५.१ इति । पञ्चम्यर्थप्रेक्षा वा षष्ठ्यर्थप्रेक्षा वा । आःकारान्तम्। परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व ॥ ऋ० १०.१६४.१ । इति । चतुर्थ्यर्थप्रेक्षैकारान्तम्॥ परः सन्निकर्षः संहिता, पदप्रकृतिः संहिता, पदप्रकृतीनि सर्वचरणानां पार्षदानि ॥

३. अथापि याज्ञे दैवतेन बहवः प्रदेशा भवन्ति । तदेतेनोपेक्षितव्यम्। ते चेद् ब्रूयुर्लिङ्गज्ञा अत्र स्म इति । इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति ।- ऋ० ६.४.७॥
इति ॥
वायुलिङ्गं चेन्द्रलिङ्गं चाग्नेये मन्त्रे । अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व ॥- ऋ० १०.८४.२ ॥
इति तथाग्निर्मान्यवे मन्त्रे । त्विषितो ज्वलितः । त्विषि- रित्यप्यस्य दीप्तिर्नाम भवति ।

४. अथापि ज्ञानप्रशंसा भवत्यज्ञाननिन्दा च॥॥

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेद न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥

यद् गृहीतमविज्ञातं निगर्देनैव शब्द्यते ।

अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित् ॥ इति (६)

निरुक्तस्य भाषाशास्त्रीय महत्वम् -

निरुक्तं व्युत्पत्तिशास्त्रस्य (etymology) प्राचीनतमः ग्रन्थः अस्ति। ' डा. सिद्धेश्वर वर्मा ' प्रख्यात भाषाशास्त्रिणा निरुक्तस्य भाषाशास्त्रीय अध्ययनं कृतम् अस्ति । तस्य मते निरुक्ते ११५८ शब्दानां निर्वचनं कृतम् अस्ति, तत्र ७६२ शब्दानां निर्वचनं प्राचीनप्रक्रियायाः कृतं ,१९९ शब्दानां निर्वचनं पूर्णरूपेण वैज्ञानिकं ,१९९शब्दानां निर्वचनं च अस्पष्टमस्ति।

निरुक्ते वैदिकमन्त्राणां निर्वचनात्मिका व्याख्या कृतास्ति ।
तत्र निर्वचने आध्यात्मिकी ; , आधिदैविकी, आधिभौतिकी , आधियाज्ञिकी इति चतुर्विधः प्रकारिका व्याख्या कृता अस्ति । इयं व्याख्यापद्धतिः निरुक्तकारस्य उच्चकोट्यात्मिकी मौलिकी पद्धतिः च वर्तते। यथा -

सप्तऋषय : प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम् । सप्ताप : स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ' च देवौ ।। (७)

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे, रश्मय आदित्ये । सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादं, संवत्सरमप्रमाद्यन्तः। सप्तापनास्त एव स्वपतो लोकमस्तमितमादित्यं यन्ति । तत्र जागृतोऽस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ, वाय्वादित्यौ । इत्यधिदैवतम् ।

अथाध्यात्मम्-सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे । षडिन्द्रियाणि विद्या सप्तम्यात्मनि । सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्, शरीरमप्रमाद्यन्ति । सप्तापनानीमान्येव स्वपतो लोकमस्तमितमात्मानं यन्ति। तत्र जागृतोऽस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ, प्राज्ञश्चात्मा तैजसश्च। इत्यात्मगतिमाचष्टे । (८)

निरुक्ते सर्वप्रथमं पद - विभजनं (parts of speech)कृतं ।
यथा -
तद्यान्येतानि चत्वारि पदजातानि, नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्च तानीमानि भवन्ति ।
तत्रैतन्नामाख्या- तयोर्लक्षणं प्रदिशन्ति- भावप्रधानमाख्यातम्, सत्त्वप्रधानानि नामानि । तद्यत्रोभे, भावप्रधाने भवतः । पूर्वापरीभूतं भावमाख्यातेनाचष्टे व्रजति पचतीति । उपक्रमप्रभृत्यपवर्ग- पर्यन्तं मूर्तं सत्त्वभूतं सत्त्वनामभिर्व्रज्या पक्तिरिति । अद इति सत्त्वानामुपदेशो गौरश्वः पुरुषो हस्तीति । भवतीति भावस्यास्ते शेते व्रजति तिष्ठतीति॥
(९)

निरुक्तम् अर्थविज्ञानस्य (semantics) अपि प्रथमः ग्रन्थः अस्ति । शब्दानां निर्वचने निरुक्तकारस्य नित्या प्रतिज्ञा वर्तते यत् ' अर्थनित्यः परीक्षेत न संस्कारमाद्रियेत् ।
यथा -

'अथानन्वितेऽर्थेऽप्रादेशिके विकारे अर्थनित्यः परीक्षेत केनचिद्वृत्तिसामान्येन ' (१०)
तत्रापि यावत् पर्यन्तं व्याकरणस्य नियमान् निर्वहतुं शाक्यते तावत्

'तद् येषु पदेषु स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन गुणेनान्वितौ स्यातां तथा तानि निर्ब्रूयात् '। (११)

अपि च प्रत्येकं शब्दस्य निर्वचनं भवेत् इति निरुक्तकारस्य सिद्धान्त :

अविद्यमाने सामान्येऽप्यक्षरवर्णसामान्यान्निर्ब्रूयात् । नत्वेव न निर्ब्रूयात् । न संस्कारमाद्रियेत । विषयवत्यो हि वृत्तयो भवन्ति । यथार्थं विभक्तीः सन्नमयेत् । (१२)

ध्वनिविज्ञानस्य नैकविधिनां प्रथमतया वर्णनम् अपि प्राप्यते अत्र । यथा -

प्रत्तमवत्तमिति धात्वादी एव शिष्येते । अथाप्यस्तेर्निवृत्ति- स्थानेष्वादिलोपो भवति, स्तः, सन्तीति । अथाप्यन्तलोपो भवति गत्वा गतमिति । अथाप्युपधालोपो भवति जग्मतुर्जग्मुरिति । अथाप्युपधाविकारो भवति राजा दण्डीति । अथापि वर्णलोपो भवति तत्त्वा यामि (ऋ० १.२४.११) इति । अथापि द्विवर्णलोपस्तृच इति । अथाप्यादिविपर्ययो भवति ज्योतिर्धनो बिन्दुर्बाट्य इति । अथाप्याद्यन्तविपर्ययो भवति स्तोका रज्जुः सिकतास्तर्कविति । अथाप्यन्तव्यापत्तिर्भवति ॥ १ ॥

ओघो मेघो नाधो गाधो वधूर्मध्विति । अथापि वर्णोपजनः, आस्थद् द्वारो भरूजेति । तद्यत्र स्वरादनन्तरान्तस्थान्तर्धातुर्भवति तद् द्विप्रकृतीनां स्थानमिति प्रदिशन्ति । तत्र सिद्धायामनुपपद्यमानायामितरयोपपिपादयिषेत् । तत्राप्येकेऽल्पनिष्पत्तयो भवन्ति । तद्यथैतदूर्तिर्मृदुः पृथुः पृषतः कुणारुमिति। अथापि भाषिकेभ्यो धातुभ्यो नैगमाः कृतो भाष्यन्ते, दमूनाः क्षेत्रसाधा इति । अथापि नैगमेभ्यो भाषिकाः, उष्णं घृतमिति । अथापि प्रकृतय

एवैकेषु भाष्यन्ते, विकृतय एकेषु । शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते । कम्बोजाः कम्बलभोजाः कमनीयभोजा वा । कम्बलः कमनीयो भवति । विकारमस्यार्येषु भाषन्ते शव इति । दातिर्लवनार्थे प्राच्येषु, दात्रमुदीच्येषु । एवमेकपदानि निब्रूयात् ।

अथ तद्धितसमासेष्वेकपर्वसु चानेकपर्वसु च पूर्वं पूर्वमपरमपरं प्रविभज्य निर्ब्रूयात् । दण्ड्यः पुरुषो दण्डपुरुषो दण्डमर्हतीति वा, दण्डेन सम्पद्यत इति वा । दण्डो ददतेर्धारयतिकर्मणः । (१३)

निरुक्ते यास्कस्य सर्वातिशयी भाषाशास्त्रीयसिद्धान्तः अस्ति यत् सर्वाणि नामानि धातुजानि एव सन्ति । धातोः यदा क्रियायाः प्राधान्यं भवति तदा क्रियावाचकशब्दानां
निष्पत्तिः भवति एवमेव सत्त्वस्य (द्रव्यस्य) प्राधान्ये संज्ञाशब्दानां निष्पत्तिः भवति । यथा गम् धातोः क्रियायां गच्छति इति रूपं भवति ; परन्तु तत्रैव सत्त्वप्राधान्ये सति गमनं, संगतिः, उद्गमः इत्यादीनि नामानि प्राप्यन्ते ।
तत्र नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च (१४)

उपसंहारः - एवं प्रकारेण वक्तुं शक्यते यत् निरुक्तं न केवलं वेदार्थावबोधाय अपितु लोके अपि अर्थावबोधाय एकं महत्वपूर्णं वैज्ञानिकं शास्त्रं च वर्तते । एवं प्रकारेण भगवतः वेदपुरुषस्य शरीरे निरुक्तग्रन्थस्य श्रोत्रत्वेन अपि सार्थकता सिद्ध्यति हि । इति शम् । नमो ब्रह्मणे । नमो महते भूताय । नमः पारस्कराय । नमो यास्काय । ब्रह्मशुक्लमसीय । ब्रह्मशुक्लमसीय (१५) । ।

टिप्पणीः -
१.च. भा. भू. पृ. 55 सायणोक्तिः
२.च. भा.भू. पृ. 56 सायणोक्तिः
३.दुर्गवृत्तिः १ . १३
४.महाभारतशान्तिपर्व ,अध्याय ३४२, श्लोक ७२-७३
५. निरुक्त १.५
६. निरुक्त १.६
७. यजुः० ३४.५५
८. निरुक्त १२.४.
९.निरुक्त १.१
१०.निरुक्त २.१.१.२
११.निरुक्त २.१.१.१
१२. निरुक्त२.१.१.३
१३. निरुक्त२.१.१-२
१४. निरुक्त१.४.१
१५. निरुक्त १४.४८

सन्दर्भसूची

निरुक्तम् - श्री छज्जूरामशास्त्री, मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स ,२०१६

निरुक्तम् - विरजानन्द देवकरणि , वैदिक पुस्तकालय अजमेर ,२००३

यजुर्वेद संहिता सभाष्य मोतीलाल बनारसीदास ,वाराणसी ,१९७८

वेदभाष्यभूमिकासंग्रह : - आचार्य बलदेवउपाध्याय , चौखम्भा संस्कृत भवन ,२०२२

वेदशाखापर्यालोचनम् (चरणव्यूहः) श्री किशोर मिश्रः चौखम्बा विद्याभवन ,२००१

वैदिकसाहित्येतिहासः शिवप्रसाद द्विवेदी चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी , २०१२

वैदिक साहित्य एवं संस्कृति- डॉ. कपिल देव द्विवेदी विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी ,२०१५

शोधच्छात्र : _ जयकिशन नैनानी :
मार्गदर्शक : _ प्रो. मनोजकुमार मिश्र :
वेदपौरोहित्यविद्याशाखाः , गंगानाथझापरिसर , के. सं वि. वि. प्रयागराज (उ .प्र.)
Mo.9782568194
Email - jaikishan6139@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 154-159

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राधावल्लभ सम्प्रदाय – परिचय एवं परम्परा

प्रोफेसर मधुबाला मीना
संस्कृत विभाग, गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों में वृंदावन का सुविख्यात राधावल्लभ सम्प्रदाय अपना विशिष्ट स्थान रखता है। श्री हितहरिवंश गोस्वामी ने आज से लगभग साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व वृंदावन में भक्तिमार्ग का नवोन्मेष किया और कर्मकाण्ड के विधि–विधानों से भक्तों को मुक्ति दिलाकर माधुर्यभाव से रसभक्ति का आनन्दप्रद नूतन मार्ग दिखाया था।[1]

राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा का स्मरण के लिए कुछ मानसिक अनुष्ठानों का विधान तो है किन्तु किसी बाह्य कर्मकाण्ड की व्यवस्था नहीं है। श्री हितहरिवंश जी के द्वारा प्रतिपादित नित्य विहार एक ऐसा विषय है जो रसभक्ति को प्रतिष्ठित करने में सर्वप्रथम सहायक है।

श्रीकृष्ण, राधा, वृन्दावन धाम और सहचरी (सखी) के समवेत रूप को नित्य–विहार का अनिवार्य रूप माना है। श्री हितहरिवंश जी 16वीं शताब्दी की अन्यतम विभूति माने जाते हैं, इन्होंने अपने अद्‌भुत चरित्रों, आचरणों द्वारा भक्ति (उपासना) काव्य और संगीत के क्षेत्र में क्रान्तिकारी मोड़ दिये थे। तत्कालीन रसिक समाज में ये "श्रीजू" या "श्रीजी" हितजू या हिताचार्य के नाम से सुविख्यात थे।

राधावल्लभ सम्प्रदाय को विशुद्ध वैष्णव सम्प्रदाय सिद्ध करने के लिए कहा गया है कि इस सम्प्रदाय की अपनी साधना–पद्धति, विचार–भावना, सेवा–पूजा है, वह किसी अन्य सम्प्रदाय का अनुगत नहीं है। गोस्वामी हितहरिवंशजी ने विभिन्न सम्प्रदायों की पद्धतियों का मनन करने के उपरान्त अपनी स्वतन्त्र प्रणाली से इस सम्प्रदाय की स्थापना की थी।[2]

विगत साढ़े चार सौ वर्षों से राधावल्लभ सम्प्रदाय निरन्तर धार्मिक समाज में सभी प्रकार से स्वीकृत और समादृत वैष्णव भक्ति सम्प्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित है। राधावल्लभ सम्प्रदाय, माध्व और गौड़ीय सम्प्रदायों में ईष्ट के प्रति भिन्न–भिन्न दृष्टि है, उपास्य तत्व भी एक नहीं है। सेवा–पूजा विधि में भी पर्याप्त भेद हैं। विधि–निषेध सम्बन्धी मान्यताओं में राधावल्लभीय दृष्टि एकदम स्वतन्त्र और शास्त्र निरपेक्ष है। हितहरिवंश जी के राधा विषयक नूतन दृष्टिकोण से प्रभावित होकर ही अनेक भक्तों ने राधा–कृष्ण विषयक अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन किया था। राधावल्लभ सम्प्रदाय तथा उसके प्रवर्तक श्री हितहरिवंश जी का उल्लेख विविध रूपों में 'भक्तमाल', 'रसिकवाणी' आदि में भी हुआ है। श्री अति–वल्लभ जी की वाणी और चाचा वृंदावनदास का 'हरिवंश सहस्रनाम' इसी कोटि की सुन्दर कृतियाँ है। नाभाजी स्वतन्त्र चिन्तक थे, सभी वर्गों के भक्तों का स्मरण कर उन्होंने विशाल हृदयता का जो परिचय दिया वह अन्यत्र दुर्लभ है। श्री हितहरिवंशजी के चरित्र की विशेषता का नाभाजी ने एक

छप्पय में गूढ़ाभिप्राय व्यंजक वर्णन इस प्रकार किया है कि उसके प्रत्येक पद को ग्रहण करके भाष्य और टीका लिखी जा सकती है। इसमें राधावल्लभ सम्प्रदाय की नवीनता, स्वतन्त्रता और विलक्षणता का परिचय मिलता है।

ध्रुवदास भी इस सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त हुए हैं। राधावल्लभीय भक्तों ने भी ज्ञान और योग–मार्गों की अनुपयुक्तता बताकर प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रसार किया, इस सम्प्रदाय में राधा–कृष्ण युगल की प्रेम और आनन्दमयी लीलाओं के ध्यान और मनन को परमानन्द प्राप्ति का साधन बताया है। 'भक्तमाल' में नाभादास ने इनके सिद्धान्त को इस प्रकार स्पष्ट किया है–

श्री राधाचरण प्रधान हृदै अति सुदृढ़ उपासी।
कुंज केलि दम्पत्ति तहाँ की करत खवासी।।
सर्वसु महाप्रसाद प्रसिद्ध ताके अधिकारी।
विधि निषेध नहीं दाम अनन्य उत्कट व्रतधारी।।
व्यास सुवन पथ अनुसरे, सोई भलि पहिचानि है।
हरिवंश गुसाई भजन भजन की रीति सकृत कोई जानि है।।[3]

विगत वर्षों के इतिहास ने इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि उत्तर भारतीय वैष्णव भक्तों में क्रान्तिकारी विचारधारा का सूत्रपात करने वालों में गोस्वामी हितजी का प्रमुख स्थान है। उन्होंने राधा को स्वकीया या परकीया न मानकर उनकी स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार किया है। 'राधा सुधानिधि' (संस्कृत काव्य) में उन्होंने राधा को जो व्यापक रूप प्रदान किया है, वैसा पहले किसी भक्त द्वारा नहीं किया गया था। कालान्तर में भक्तों द्वारा राधा का यही रूप सर्वाधिक मान्य और गृहीत हुआ है। राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा ही उपास्य है, कृष्ण तो राधा के अनुषंग से, राधा के कृपा कटाक्ष से अपने को सफल मनोरथ बनाते हैं। राधा विषयक यह मान्यता राधावल्लभ सम्प्रदाय की अपनी देन है जो परवर्ती भक्तों में इतनी अधिक समादृत हुई कि निम्बार्क, चैतन्य, हरिदासी आदि सभी सम्प्रदायों के भक्तों ने इसे स्वीकार कर लिया। राधा के इस स्वरूप की उपसना को रसोपासना कहा जाने लगा और सभी भक्ति सम्प्रदाय उसे स्वीकार करने लगे। राधावल्लभ सम्प्रदाय की व्यापक स्वीकारोक्ति तथा प्रसिद्धि को स्थापित करने वाले अंग्रेज विद्वानों के भी उल्लेख उपलब्ध होते है –

"प्रो. एच. एस. विलसन" ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू रिलीजंस' में राधावल्लभ सम्प्रदाय का उल्लेख किया है।[4]

"ग्राउस महोदय" ने राधावल्लभीय सिद्धान्तों का विवेचन किया है और "राधा–सुधानिधि" और "चौरासी पद" को हरिवंश जी की रचना माना है।[5]

विगत 50 वर्षों में हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक तथा आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत करने वाले अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं इन ग्रन्थों में भी भक्त कवियों के रूप में हितहरिवंशजी एवं कतिपय राधावल्लभीय भक्तों का वर्णन हुआ है।

"ले. श्री शिवसिंह सेंगर"– इनके ग्रन्थ में कहा गया है कि 'हितहरिवंश स्वामी गुसाई वृंदावन निवासी'। व्यास स्वामी के पुत्र सम्वत् 1559 में उत्पन्न हुये थे।[6]

"आचार्य रामचन्द्र शुक्ल"– राधावल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक गौसाई हितहरिवंश जी का जन्म संवत् 1559 में मथुरा से 4 मील दूर दक्षिण के बादगाँव में हुआ था।[7]

"श्री वियोगी हरि"– राधावल्लभीय सिद्धान्त के प्रवर्तक गोसाई हितहरिवंशजी महाराज का जन्म–बादग्राम,

जिला मथुरा में हुआ था। श्री हितजी ने आध्यात्मिक पक्ष के अर्थानुसार श्री राधाकृष्ण का विशुद्ध वर्णन किया है। इनके वर्णित रास विहार के रूप को प्रकृति–पुरुष का दिव्य रहस्य कह सकते हैं।[8]

"आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी"– राधावल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक हितजी ऊँचे दर्जे के कवि और महात्मा थे, वे संस्कृत के उत्तम कवि थे। "राधासुधानिधि" नामक संस्कृत काव्य ग्रन्थ इन्हीं का लिखा है, ये हिन्दी, संस्कृत के विद्वान् व शास्त्र–ज्ञान में दक्ष थे।[9]

शुक्ल जी ने इनका समय संवत् 1559 बताया है।

"दीन दयाल गुप्त"– अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय नामक शोधग्रन्थ में डॉ. गुप्त ने राधावल्लभ सम्प्रदाय का विस्तार से वर्णन किया है। प्रथम 40 पृष्ठों पर उन्होंने ब्रजमण्डल के कृष्ण भक्ति के सम्प्रदायों का नामोल्लेख किया है जिसमें राधावल्लभ को एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय के रूप में परिगणित किया है।[10]

इसी प्रकार "हिन्दी साहित्य एक अध्ययन : डॉ. रामरतन भटनागर", "हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास : श्री चतुरसेन शास्त्री", सूर और उनका सहित्य : डॉ. हरवंशलाल शर्मा", हिन्दी विश्वकोष, "मध्यकालीन प्रेमसाधना : श्री परशुराम चतुर्वेदी" इत्यादि सभी हिन्दी ग्रन्थों में हितहरिवंश जी के राधावल्लभ सम्प्रदाय का वर्णन किया गया है।

हिन्दी और अंग्रेजी के अतिरिक्त बंगला और गुजराती के धार्मिक ग्रन्थों में भी राधावल्लभ सम्प्रदाय का उल्लेख हुआ है। बंगला की प्रसिद्ध पुस्तक 'भारतवर्षीय उपसक सम्प्रदाय' है। इसके प्रथम भाग में वर्णन किया है कि "राधाकृष्ण की उपासना करने वाले राधावल्लभी सम्प्रदाय में युगल मूर्ति की उपासना का विधान है।" ब्रजभाषा 'सेवा–सखी वाणी' ग्रन्थ में इस सम्प्रदाय की उपासना पद्धति तथा अन्य क्रियाकलाप का विस्तार से वर्णन हुआ है।[11] "वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास : श्री दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री" के गुजराती ग्रन्थ अंग्रेजी पुस्तकों के आधार पर ही लिखा गया प्रतीत होता है। इन्होंने लिखा है कि 'राधावल्लभी सम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य हितहरिवंशजी हैं। जो राधा को स्वंकीया मानते है।[12] राधावल्लभ सम्प्रदाय के तत्वों का कतिपय बिन्दुओं में इस प्रकार उद्घाटित किया जा सकता है–

राधावल्लभ सम्प्रदाय का हित तत्व सोलहवीं शती के मध्य श्री राधा–कृष्णोपासक के रूप में ब्रज–प्रदेश में तीन सम्प्रदाय प्रसिद्ध हुए। श्री चैतन्य और श्री वल्लभ सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण लीला श्रीमद्भागवत और अन्य पुराणों पर आधारित थी। इन दोनों भक्ति–मार्गों में श्रीकृष्ण को प्रेमस्वरूप ही माना गया था, उसी काल में श्री राधावल्लभ सम्प्रदाय किंवा श्री हित सम्प्रदाय में श्री राधा–कृष्ण को प्रेमस्वरूप ही माना गया है। श्री राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रेम–सिद्धान्त का विकास स्वयं प्रेम के विधायक तत्वों को लेकर किया गया है। हित–सिद्धान्त के अनुसार ही वृंदावन के रूप में उन दो अलौकिक प्रेमियों का त्रिगुणातीत प्रेम–सम्बन्ध मूर्तिमान् हुआ है जो स्वयं रस स्वरूप होने के साथ परम रसिक भी है और जो अनाद्यनन्तरूप से परस्पर उज्ज्वल रति के अविछिन्न आस्वादन में निमग्न हैं। श्रीराधावल्लभ सम्प्रदाय में पूर्ण तत्सुखमय अद्भुत प्रेम को ही 'हित' कहा जाता है। 'हित' शब्द में अन्य का कल्याण और सुख निहित है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय का सखीभाव :–

भक्ति भक्तों के हृदय में रहने वाला एक भाव विशेष है। भक्ति का इतिहास वेदों के समान ही अनादि है और वहाँ हम उपासना काण्ड के रूप में इसका प्रचलन पाते हैं, किन्तु भारतीय धर्म साधना में अवतार काल

की प्रतिष्ठा करने के बाद इस भाव का क्रमशः पल्लवन प्रारम्भ हो गया। राधावल्लभ सम्प्रदाय में प्रेम या हित परात्पर भगवतत्व माना जाता है। भगवत स्वरूप प्रेम ने जिन अनेक रूपों में पृथ्वी पर अवतार लिया है, उनमें श्री राधा–कृष्ण में ही प्रेम का सर्वातिशायी विशुद्ध रूप सखीभाव प्रकट हुआ है। श्यामसुन्दर की अनन्त प्रेमतृष्णा तथा श्री राधा की परम उदार प्रीति को अपने हृदय में समाविष्ट करके सखीगण तत्सुखमयी सेवा में प्रवृत्त रहती हैं। सखीगण चार भावों से युगल की सेवा करती है– पुत्रवत् भाव से, मित्रवत् भाव से, पतिवत् भाव से और आत्मवत् भाव से। यथा–

निशिदिन लाड़ लड़ा वहीं अति–माधुर्य सुरीति।
पुत्र मित्र पति आत्मवत् उज्ज्वल तत्सुख प्रीति।।[13]

राधावल्लभ सम्प्रदाय में सखियों के उपर्युक्त भावों का अनुमगमन करके ही उपासना की जाती है, सखी भाव इस सम्प्रदाय का अत्यन्त विशिष्ट भाव है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय का उपास्य रस :-

राधावल्लभ सम्प्रदाय सही अर्थों में रसोपासक है क्योंकि इसमें रसस्वरूप भगवान के स्थान पर भगवद्स्वरूप रस को ही धर्म, गुण अथवा शक्ति माना है। यहाँ "रसिक रस" की शृंगार के लिए की उपासना का विधान है और इसकी सफलता के लिए भजन प्रणालियों का निर्धारण किया गया है। ज्ञानमार्ग में साधना की प्रगति मूर्त से अमूर्त की ओर होती है,

भावमार्ग में अमूर्त से मूर्त की ओर। 'प्रेम–किंवा', 'रस' इतना लोक प्रसिद्ध, महतो महीयान् और सर्वव्यापक है जिसका स्वरूप गान साधारण मानव से लेकर भक्त और भगवान तक अनादिकाल से करते चले आ रहे हैं। वैष्णव आगमों एवं श्रीमद्भागवतादि पुराणों से लेकर कृष्णोपासक एवं रामोपासक सम्प्रदाय ग्रन्थों में भी इसकी महिमा का गान प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है।[14]

श्री हितहरिवंश जी ने अपनी रचनाओं में जगह–जगह पर यह घोषणा भी की है कि मेरा परमोपास्य वह 'रस' है जो निखिल निगमों के लिए भी अलक्ष्य है। जिसका वैभव श्रुतियों तथा भगवान् के द्वारा भी विमृग्य है[15] और जिसका वर्णन करने में उपनिषद् भी सर्वथा असमर्थ हैं। हरिवंशजी की वाणी का मूलाधार रस ही है। काव्य रस सहृदयों के चित्त को विस्फारित एवं चमत्कृत करता हुआ अलौकिक आनन्द की सृष्टि करता है, हरिवंश जी की वाणी का रस रसिक भक्तों को प्रेम–विह्वल करके आनन्द विभोर बना देता है।

जिसका आनन्द साक्षात् ब्रह्मानन्द स्वरूप ही है, उसके काव्य–सौन्दर्य की निर्झरिणी सदैव प्रवाहित होती रहती है। श्री हितहरिवंश जी माधुर्य भक्ति की रसधारा के उन्नायक कवि रहे हैं।[16]

राधावल्लभ सम्प्रदाय में श्री राधा राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा को उस अनादि वस्तु का नित्य रूप स्वीकार किया गया है जो इस अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर अपनी नित्यक्रिया से आनन्द की अभिव्यक्ति करती रहती है। कतिपय वैष्णव सम्प्रदायों में उसी सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म की आह्लादिनी शक्ति का नाम राधा दिया गया है, राधा स्वयं आनन्दस्वरूप है, नित्य भाव है, उनका विहार भी नित्य है, रास भी नित्य है। वह श्रीकृष्ण की उपासिका, आराधिका ही नहीं वरन् श्रीकृष्ण की आराध्या है, काम–वासना विहिन नित्य विहार में लीन रहने वाली इस सम्प्रदाय में सर्वोपरि रूप से विराजमान है।[17] श्री हितहरिवंश जी ने राधा को 'रसरूप' कहा है। ये माधुर्य साम्राज्य की एकमात्र भूमि और रस की एक मात्र सीमा है। राधा वेदों से भी परम गुप्त अनुपम निधि है।

राधासुधानिधि में कहा है कि इनके पदनख की छटा की एक किरण से ही धनीभूत प्रेमामृत समुद्र की अजस्र धारा प्रवाहित होती रहती है यथा–

प्रत्यंगोच्छलदुज्ज्वलामृत रस प्रेमैक पूर्णाम्बुधिः
लावण्यैक सुधानिधिः गुरु कृपा वात्सल्य साराम्बुधिः।
तारुण्य प्रथम प्रवेश विलसन्माधुर्य साम्राज्यभूः
गुप्त कोपि महानिधिर्विजये राधा रसेकावधिः।।[18]

प्रेम के क्षेत्र में सदैव प्रेम पात्र की ही प्रधानता होती है और उपासक की प्रधान रति भी उसी में केन्द्रित रहती है, इसलिए श्री राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा की सहज प्रधानता है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण वृंदावन विहारी श्रीकृष्ण ही रसिक किशोर रूप में एकमात्र नित्य विहारी पुरुष है, उनकी परा प्रकृति श्रीराधा है जो चित्–अचित्–विशिष्ट आह्लादिनी निज शक्ति रूपा है।

सारा चराचर जगत् इन्हीं युगल किशोर श्रीकृष्ण का प्रतिबिम्ब है। कृष्ण को ललित केलि लीलाओं का विधायक मानकर उनको कान्ताभाव का सृष्टा कहा गया है। यहाँ जिस परिवेश और जिन परिकरों में श्रीकृष्ण रहते हैं वे भी स्व और पर के भेद से रहित हैं, वे सदा एकरस होकर नित्य विहार में लीन रहते हैं। राधासुधानिधि में वर्णन इस प्रकार है–

यद्वृंदावन–मात्र गोचरमहो यत्तश्रुतीकं शिरो–
प्यारोढुं क्षमते न यच्छिव शुकादीनां तु यद्धयानगम्।
यत्प्रेमामृतमाधुरी रसमयं यन्नित्यं कैशोरकं
तद्रूपं परिवेष्टुमेव नयनं लोलायमानं मम।।[19]

श्रीकृष्ण को यहाँ उपास्य भेद तो माना गया है किन्तु राधा के अनुषंग से ही उसकी उपासना है, प्रधान पद राधा का है। इसी कारण राधावल्लभ रूप में तो स्वतन्त्र कृष्ण का कोई अस्तित्व नहीं माना गया है।

सन्दर्भ सूची :-

1. रसभक्ति धारा और उसका वाणी साहित्य–किशोरी शरण 'अलि', पृ. सं. 1
2. राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य– डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. सं. 53
3. भक्तमाला–नाभाजी कृत छप्पय– 453, पृ. सं. 598
4. राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य : सिद्धान्त और साहित्य–डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ.सं. 61
5. Statistical Descriptive and Historical Account of North Sestern provinces of India (1884 A.D.) Muttra parti, page 103-104 Edited by H.C. Conybeare
6. शिवसिंह सरोज पृ. सं. 369, 507
7. राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य– डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. सं. 68
8. ब्रज माधुरी सार : श्री वियोगी हरि, पृ.सं. 65–66 अष्टम संस्करण।
9. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ. सं. 54
10. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ. सं. 40

11. भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय (बंगला प्रथम भाग), अक्षय कुमार दत्त, पृ. सं. 223–226
12. वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास (गुजराती), श्री दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री, पृ. सं. 324–325
13. श्रीहितललिताचरण जी (स्मृति–ग्रन्थ)– डॉ. विजयेन्द्र स्नातक (व्यक्तित्व व कृतित्व खण्ड), पृ. सं. 95
14. रसभक्तिधारा और उसका वाणी साहित्य–किशोरी शरण 'अलि', पृ. सं. 119
15. राधासुधानिधि– गोस्वामी हितहरिवंशजी, श्लोक– 267
16. राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य– डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ. सं. 322
17. राधासुधानिधि– श्री हितहरिवंश गोस्वामी जी, श्लोक– 72
18. राधासुधानिधि– श्री हितहरिवंश गोस्वामी जी, श्लोक– 135
19. राधासुधानिधि– श्री हितहरिवंश गोस्वामी जी, श्लोक– 76

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 160-163

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य में दलित

Dr. Praveen Kumar Mishra

Assistant Professor, Department of Hindi, Dwaraka Doss Goverdhan Doss Vaishnav College, Chennai, Tamilnadu-600106

दलित शब्द की उत्पत्ति 'दलन' शब्द से हुई है। हमारे समाज में निम्न वर्ग तथा उच्च वर्ग दोनों तरह के व्यक्ति जीवन–यापन करते हैं। उच्च वर्ग के व्यक्तियों के द्वारा निम्न वर्ग के व्यक्तियों का शोषण करना अर्थात जबरजस्ती उन पर अपना हुक्म चलाना ही दलितों का शोषण है। दलित विमर्श जाति आधारित अस्मितामूलक विमर्श है। भारतीय समाज आदिकाल से ही वर्ण व्यवस्था द्वारा नियंत्रित रहा है। जो वर्ण व्यवस्था प्रारम्भ में कर्म पर आधारित थी अब वह जाति में परिवर्तित हो गई है। अब जन्म से व्यक्ति को जाति से पहचाना जाने लगा। शूद्रों को अस्पृश्य और अछूत माना जाने लगा। इतना ही नहीं उन्हे वेदों के अध्ययन, पठन–पाठन यज्ञ आदि करने से वंचित कर दिया गया।

आदमी अछूत या नीच जाति से नहीं, बल्कि अपने स्वभाव और कर्म से बनता है। पाप और दुष्कर्म करने वालों को नीच या अधम समझना चाहिए, न कि जाति से पैदा हुए निम्न कुल के लोगों को।

ऋषि वाल्मीकि जी भले ही निम्न कुल में पैदा हुए थे, लेकिन आज उन्हे कोई अछूत या नीच नहीं कहता। कारण यह है कि आदमी की महानता को कठोर से कठोर समाज नजरअंदाज नहीं कर सकता। वाल्मीकि जी को सम्पूर्ण भारतीय समाज नें वेद, शास्त्रों के ज्ञाता के रूप में जाना जाता है। वाल्मीकि जी शूद्र कुल में जन्म लेकर भी, क्षत्रिय कुल में जन्मे श्री राम के आदर्श थे। सीता जी के पिता तुल्य थे तथा उनके पुत्र लव और कुश को वेदों की शिक्षा प्रदान की। इसीलिए केवल शूद्र कुल में जन्म लेने मात्र से ही, व्यक्ति दलित नहीं कहा जा सकता है।

समाज में जाति–पाँति के भेद–भाव का दीमक इतनी गहराई तक लग चुका है कि डॉ० अम्बेडकर जैसे महान व्यक्ति को अपने जीवन में अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी। समाज में उन्हे दर–दर की ठोकर और अपमान ही प्राप्त हुआ। विद्यालय के सभी छात्र तथा शिक्षक भीमराव से घृणित व्यवहार करते थे। किन्तु भीमराव ने उनकी परवाह न करके अपनी पढ़ाई पर ध्यान देते रहे और आगे बढ़ते रहे। सन् 1918 ई. में वे अर्थशास्त्र के प्रोफेसर बने। दलितों के अंदर आत्मसम्मान तथा अपने अधिकारों के प्रति चेतना जगाने के लिए डॉ. अंबेडकर ने एक 'मूलनायक' नामक पत्र मराठी भाषा में निकाला। दलित समाज के लिए डॉ. अम्बेडकर एक मसीहा और भगवान के रूप में माने जाते हैं। उन्होने अपना सम्पूर्ण जीवन दलित समाज की सेवा में लगा दिया।

डॉ. अंबेडकर का कहना था– "आत्म सहायता ही सबसे श्रेष्ठ सहायता है।"[1]

जगदीश चन्द्र ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास में बड़ी बारीकी से दलितों का वर्णन किया है।" पैसा होने के बावजूद चमार, काली चाची के लिए पाव भर दूध नहीं जुटा पाया है। चमारों को दूध बेचना, चौधरियों के शान के खिलाफ है। छप्पू शाहक की बात सुनकर हरिसिंह भड़क उठा। तेरी अक्ल ठिकाने है कि नहीं, गरीब हूँ तो क्या हुआ?, चौधरी हूँ, चमार के हाथ दूध बेचूंगा तो गाँव वाले क्या कहेंगे।"[2]

जगदीश चन्द्र माथुर के 'धरती धन न अपना' उपन्यास में भेदभाव से बचने के लिए धर्मांतरण को भी दर्शाया गया है। धर्मांतरण करने के बाद भी अछूत जाति के लोंगो को तिरस्कार और अपमान से मुक्ति नहीं मिलती। मिस्त्री संता सिंह को प्यास लगने पर काली उसे नन्द सिंह के घर से पानी लाकर देने की बात कहता है, तो संत सिंह बोलता है– "सिख बन जाने का यह मतलब तो नहीं कि वह चमार नहीं रहा। धर्म बदलने से जात तो नहीं बदलती।"[3]

व्यक्ति को समाज में अपने स्वाभिमान को बचाने के लिए कितने प्रयत्न करने पड़ते हैं। किसी व्यक्ति को समाज में अपना स्थान बनाने के लिए धर्म, जाति या वर्ण की जरूरत नहीं होती है। कोई भी व्यक्ति अपने कर्मों द्वारा बड़ा और महान बनता है। यदि हम धर्म, जाति या वर्ण के चक्कर में पड़े रहे तो बड़े–बड़े ज्ञानी ऋषि–मुनियों के ज्ञान से वंचित रह जायेंगे।

जिस प्रकार से सोने को वर्षों–वर्षों तक मिट्टी में गाड़ देने पर भी उसकी चमक नहीं जाती और लोहे को दो–चार दिन भी मिट्टी में रखें तो जंग लग जाता है। ठीक उसी प्रकार व्यक्ति की पहचान उनके कर्मों से करो न कि वर्णों से। हम देख सकते हैं कि ब्राह्मण कुल में जन्मे रावण अपने बुरे कर्मों की वजह से आज भी घृणा की दृष्टि से देखा जाता है और यही समाज रावण दहन बुराई के रूप में मनाता है।

वहीं दूसरी तरफ महर्षि वाल्मीकि शूद्र कुल में जन्म लेकर भी अपनी तपस्या से ज्ञान प्राप्त कर महर्षि बन गए। अपनी मेघा, कल्पना शक्ति और विद्वता के बल पर उन्होने श्री रामचन्द्र जी के चरित्र को लेकर संस्कृत भाषा में 'रामायण' नामक महाकाव्य की रचना की।

मध्यकाल में निर्गुण शाखा के अनेक कवियों ने जैसे– रैदास, कबीर आदि ने वर्ण व्यवस्था और जाति–प्रथा पर गंभीर चोट किए है। जब उन्हे उपासना का अधिकार न रहा, तो ईश्वर को मन के भीतर ढूंढ लिया। रैदास तो कहते हैं–

"का मथुरा का द्वारका, का कासी हरद्वार।
रैदास खोजा दिल अपना, तऊ मिलिया दलदार।।"[4]

प्रत्यक्ष रूप में स्वामी दयानन्द जी ने रैदास के इस दर्द को समझकर उन्हे वेदों का अधिकार, यज्ञादि का अधिकार एवं जनेऊ धारण की स्वीकृति दी। संतो के विचारों से दलित जाति को प्रेरणा मिली। उनमें आत्मविश्वास जागृत हुआ। इसी तरह गाँधी जी ने शूद्रों को 'हरिजन' संज्ञा देकर अपनाया। कबीर, रैदास जैसे दलित संत इनकी प्रेरणा हैं। रैदास दलित चेतना के प्रमुख कवि हुए। जो कहते हैं–

"रैदास एक ही बूंद सो, सब ही भयो वित्थार।
मूरिख है जो करत है, बरन अब रन विचार।।"[5]

ऊँच–नीच के इस विरोध के धर्म–निरपेक्ष रूप का तर्क है कि भारतियों को अपनी धार्मिक पहचान से ऊपर उठकर एक राष्ट्र के नागरिक तथा मनुष्य होने के नाते एक जुट होना चाहिए। व्यक्तियों की आपसी तकरार तथा

भेद–भाव इस दोहे से भी परिलक्षित होती है–

"मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघर, में बाँट लिया भगवान को।
धरती बाँटी, सागर बाँटा, मत बाँटो इन्सान को।।"[6]

समाज का निर्माण मनुष्य से होता है, न कि उनके जाति, धर्म, वर्ण, अमीर, गरीब से। दलितों को प्रताड़ित करने की विचारधारा को छोड़कर यदि उच्च वर्ग उनका समर्थन करें, तो समाज से दलित शब्द का भेद–भाव ही खत्म हो जाये। जिस देश की आधी मानवता अपमान से पीड़ित हो, उस देश में स्वाभिमान कहाँ टिक सकता है।

"भारतीय समाज के बहुत बड़े हिस्से को समाज ने हमेशा दुत्कारा, अपमानित किया और मनुष्य होकर भी उसके साथ पशु से भी बदतर व्यवहार किया है। यह वेदना एक व्यक्ति की नहीं, पूरे दलित वर्ग की है।"[7]

हिन्दी साहित्य में 'नागार्जुन' हरिजनों के पक्षधर माने जाते हैं। उनकी 'हरिजन गाथा' को दलित चेतना की कविता माना जाता है। उन्होने दलितों को मनु पुत्र कहकर संबोधित किया है। 'हरिजन गाथा' में नागार्जुन द्वारा प्रयुक्त मनु शब्द और दलितों पर दलित साहित्यकारों का विरोधी मनोभाव देखने को मिलता है। नागार्जुन के शब्दों में –

"एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं, तेरह के तेरह अभागे।
अकिंचन मनु पुत्र, जिंदा झोंक दिये गए होगें।।"(हरिजन गाथा)[8]

दलित साहित्य को बढ़ावा देने में मराठी में प्रकाशित बहुत सी पत्र–पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका देखने को मिलती है। दलित सर्वहारा जैसा पीड़ित है। वह जीवन भर अवहेलित जीवन जीता है। कई दलित साहित्य सम्मेलनों द्वारा भी समकालीन दलित चेतना का विकास हुआ। दलित साहित्य द्वारा अपने समय और समाज का चित्रण पूरी सच्चाई और यथार्थवादी दृष्टि से किया गया।

इस प्रकार दलितों पर सवर्ण जातियों के लोगों की भावना समाज में भेदभाव उत्पन्न कर सामाजिक स्थितियों में न केवल भयंकरता उत्पन्न करती बल्कि दलितों में विद्वेष की भावना उत्पन्न करती है। एक ओर जहाँ समाज में दलितों के आरक्षण का विरोध हो रहा है, वहीं दूसरी तरफ उनके आरक्षण उत्थान और प्रगति के लिए अनेकानेक कदम भी उठाए जा रहे हैं। किन्तु वह कदम भी राजनीति के लिए ही उठाए जाते हैं। जिसका उदाहरण हमें दलित साहित्य में देखने को मिलता है।

लेखक ने केवल दलित विरोधी या ब्राह्मणवादी तत्वों पर ही प्रहार नहीं किया अपितु दलित समाज के नकारापन के प्रति अपनी क्षुब्धता व्यक्त की है। दलितों के संगठन तो बहुत हैं, किन्तु कोई अपने कार्य को सुचारु रूप से नहीं करता है। ये संस्थाएं केवल राजनीतिक लाभ के लिए ही होती है और बरसाती मेंढक की भाँति समय–समय पर टर्र–टर्र गान करके अपने–अपने आकाओ को रिझाने में ही व्यस्त रहती हैं। हम कोसते दूसरों को हैं और अपनी शक्ति को स्वयं कमजोर कर देते हैं। ऐसी संस्थाओं को कागजी तोप बताते हुए लेखक का कहना है कि "कागजी तोप से कभी किले नहीं तोड़े गए।" साहित्य में इसी तरह से अनेकों लेखकों की आत्मकथाओं में हमें दलितों के दर्द की दयनीयता देखने को मिलती है।

'अपने–अपने पिंजरे' मोहनदास नैमिश राय की आत्मकथा है। लेकिन साथ ही यह समूचे दलित शोषित वर्ग की कथा भी है। मोहनदास ने जो कुछ भोगा और जिया है, समूचे दलित समाज का जीवन कमोवेश वैसा

ही रहा है। मोहनदास कहते हैं– "पीढ़ी–दर–पीढ़ी दुःख सहने की प्रक्रिया से हम दास बनते गए। हमारी गिनती गुलामों में की जाने लगी। वे मालिक बन बैठे। हमारी औरतें उनकी रखैल बनीं। हम अपनी औरतों से कटते गए।"[9]

भगवान दास की प्रसिद्ध पुस्तक 'मै भंगी हूँ' के ये शब्द' उन्होने मुझ पर कभी रहम नहीं किया था। जब भी बुलाया गाली देकर बुलाया। गोया गाली मेरा नाम था।'[10] ये शब्द दलितों के दर्द को दर्शाते हैं।

'जूठन' में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी जिन कटु अनुभवों से गुजरे हैं, वे विशिष्ट हैं, जो किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को झकझोर कर रख देती हैं। व्यक्ति अपनी झूठी शान को बढ़ाने के लिए, दूसरे व्यक्ति को नीचा दिखाने में कोई कमी नहीं छोड़ता। किन्तु जब उसी व्यक्ति को छोटी जाति के लोगों से काम करवाने की जरूरत पड़ती है, तब जाति–पाँति दिखाई नहीं देता है। इसका एक उदाहरण हमें 'जूठन' आत्मकथा में देखने को मिलता है। सेठ के घर शादी के सारे काम मन लगाकर करने के बाद भी दलित होने के कारण अपमान तथा घृणा ही मिलता है।

"सभी मेहमानों के जाने के बाद माँ ने सुखदेव सिंह त्यागी से खाना माँगती है। चौधरी जी, ईब तो सब खाना खाके चले गए हैं। म्हारे जातकों (बच्चों) कभी पत्तल पर धरके कुछ दे दो।"[11] आखिर वो भी तो इस दिन का इंतजार कर रहे थे। सुखदेव सिंह कुछ इस तरह जबाब देते हैं। झूठी पत्तलों से भरे टोकरे की तरफ इशारा करके कहा– "टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है, ऊपर से जातकों के लिए खाणा माँग रही है। अपणी औकात में रह चुहड़ी, उठा टोकरी दरवाजे से चलती बन।"[12]

यह आत्मकथा दलितों के प्रति, सावर्णो के मन में भरे नफरत और घृणा को दर्शाता है। सवर्ण व्यक्ति जोकि पेड़–पौधे, पशु–पक्षी सभी के प्रति प्रेम रखता है। समाज सबके लिए एक है केवल धर्म अलग–अलग है। धर्म के नाम पर भेद–भाव, ऊंच–नीच की भावना को छोड़कर सम्पूर्ण मानव जाति को प्रेम, सद्भावना से एकजुट होना होगा। इस भेद–भाव को जड़ से खत्म करने के लिए आगे बढ़ना होगा।

सन्दर्भ ग्रंथ :-

1. डॉ. पवित्र कुमार शर्मा, दलित संघर्ष, पृ. सं.–36
2. जगदीश चन्द्र माथुर, धरती धन न अपना, पृ. सं.– 165
3. जगदीश चन्द्र माथुर, धरती धन न अपना, पृ. सं.– 141
4. डॉ. आरती झा, भारत में दलित साहित्य एवं दलित चेतना, पृ. सं.– 61
5. ओमप्रकाश बाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृ. सं.– 32
6. गेल ओमवेट, दलित दृष्टि, पृ. सं.– 15
7. विमल थोरात, दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, पृ. सं.– 49
8. डॉ. विमल धोरात, दलित मुक्ति आंदोलन की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति (मराठी कविता लेख), पृ. सं.– 02
9. जयप्रकाश कर्दम, दलित साहित्य एवं चिंतन समकालीन परिदृश्य, पृ. सं.– 17
10. जयप्रकाश कर्दम, दलित साहित्य एवं चिंतन समकालीन परिदृश्य, पृ. सं.– 18
11. रामअवतार यादव, दलित आत्मकथा दलित महाकाव्य, पृ. सं.– 44
12. रामअवतार यादव, दलित आत्मकथा दलित महाकाव्य, पृ. सं.– 44

Email: Mishra.praveen48@gmail.com
Mob: 9790905794

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 164-168

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मानवीय मूल्य : समाज और शिक्षा

डॉ. दारा योगानंद, सहायक आचार्य,
प्रभाकर झा, बी.बी.ए. छात्र,
एम्स इंस्टिट्यूटस, पीण्या, बेंगलुरु–560058

प्रस्तावना :–

मानव एक सामाजिक प्राणी है। समाज मे रहते हुए एक दूसरे के साथ एक संबंध जोड़ लेता है। जिससे वह अच्छे समय मे या बुरे समय मे एक दूसरे की फिक्र करने लगता है। दूसरो के प्रति उसके हृदय मे जो भावनाँए उत्पन्न होती है वही मानवीय मूल्य होता है। बिना मानवीय मूल्यों के इंसान मृतक समांन हो जाता है। क्योकि मानव के हृदय में अनेक संचारी भाव उठते है। ये भाव ही मनुष्य के हृदय मे एक दूसरे के प्रति रुचि, जिज्ञासा, आदर, हमदर्दी आदि गुणो को पोषित करती है। ये मानवीय मूल्य हमारे जीवन में मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में कार्य करते हैं। जो हमें सकारात्मक जीवन जीने के लिए दिशा प्रदान करती है। हम अपने माता–पिता, गुरु और अपने परिवेश से इन मूल्यो को सीखते है। जिससे एक बेहतर जीवन जी सके। यह माना जाता है कि जीवन के अंत में, मानवीय मूल्य ही मानवता को बचाएगी। प्राचीन समय मे गुरुकुलों में एक मात्र विषय पढाया जाता था, वह है मानवीय मूल्य। जिससे बच्चा आगे चल कर उज्जवल चरित्र का निर्माण करता है।

जीवन मूल्य संबंधी विचार :–

महात्मा गांधी जी– सत्य, अहिंसा और स्वयं पर नियंत्रण इन तीन चीजों को वे महत्व देते थे। उनके अनुसार सत्यता वह गुण है जिसका पालन करना मानव का परमधर्म है और अहिंसा को सत्य के साथ आचरण करने का माध्यम मानते थे। गांधी जी आत्म स्वंय को व्यक्तिगत और सामाजिक विकास के लिए आवश्यक मानते है।

स्वामी विवेकानंद के अनुसार– शक्ति, निर्भयता और निःस्वार्थ सेवा ही जीवन का मूल्य है। उन्हें विश्वास था कि हर व्यक्ति में अव्यावहारिक क्षमता होती है, और व्यक्तित्व के आंतरिक संगठन के माध्यम से व्यक्ति अपनी क्षमता को पहचान सकता है। वे सामाजिक हित के लिए निःस्वार्थ सेवा को महत्व देते है और उसे अपनी दिव्यता का प्रदर्शन करने का माध्यम मानते है।

रवींद्रनाथ टैगोर के अनुसार–प्रेम, सौंदर्य, स्वतंत्रता और निःस्वार्थ से वाही मानवता है। वे प्रेम को एक चुंबकीय शक्ति के रूप में देखते है, जो व्यक्तियों को एकजुट कर सकती है, समानता को स्थापित कर सकती

है और जाति, धर्म और राष्ट्रीयता की सीमाओं को मिटा सकती है। उन्हें प्रकृति, कला और मानवीय अभिव्यक्ति में सौंदर्य का दर्शन होता है। उन्होने स्वतंत्रता को भी महत्व दिया। स्वतंत्रता को व्यक्तिगत और सामुदायिक स्तरों पर और जो मानवीय विकास को सृजनशीलता और स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक माना है।

उपर्युक्त सभी महात्माओं ने जीवन के मूल्यों पर विचार दिए हैं और सत्य, अहिंसा, स्वयं नियंत्रण, शक्ति, प्रेम, सौंदर्य, स्वतंत्रता और निःस्वार्थ सेवा जैसे मूल्यों को जीवन में महत्वपूर्ण माना है। इन मूल्यों को अपने जीवन में सम्मिलित करके, व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विकास, नैतिकता, और अपनी उच्चतम क्षमता की प्राप्ति की ओर प्रयास कर सकता है।

मानवीय मूल्यों को दर्शाते ग्रंथ :-

रामायण :- रामायण, महाकाव्य रूप में, मानवीय मूल्यों, धर्म, नैतिकता, परिवार, प्रेम, और धर्म युद्ध को दर्शाती है। इसमें भगवान राम के जीवन के माध्यम से मानव जीवन के अनेक पहलू व्यक्त होते हैं।

महाभारत :- महाभारत भारतीय साहित्य का महाकाव्य है जिसमें धर्म, युद्ध, नैतिकता, प्रेम, और धर्म युद्ध के विभिन्न पहलू दिखाए गए हैं। यह कहानी मनुष्यों के उदारता, वचन बद्धता, और न्याय के महत्व को उजागर करती है।

पंचतंत्र की कहानिया भी नैतिकता को बढावा देती है, न्याय पर विश्वास को बढाते है। इंसान को सच के मार्ग पर अग्रसर करता है।

बीरबल की कहानियाँ :- बादशाह अकबर के दरबार में बीरबल के माध्यम से व्यक्तिगत और सामाजिक मुद्दों का सामरिक, मजा किया, और गहराई से अध्ययन किया जाता है। इन कहानियों में व्यक्तित्व, विचारधारा, और सामरिक बुद्धिमत्ता को प्रमुखता से दिखाया जाता है।

इसके साथ जातक कथाओ, अन्य पौराणिक कथाओं, विक्रम बेताल की कहानियों में भी न्याय और नैतिकता पर जोर दिया गया है। जिससे मानवीय मूल्यों का पोषण हो सके।

साहित्यकारों के अनुसार मानवीय मूल्य :-

रवींद्रनाथ टैगोर -

रवींद्रनाथ टैगोर एक प्रख्यात भारतीय लेखक, कवि, और संगीतकार थे। उन्होंने विभिन्न रचनाओं में जीवन के मूल्य पर गहराई से विचार किया है। उनकी प्रसिद्ध कविता 'गीतांजलि' में वे अंतर्निहित तत्वों के बारे में बात करते हैं जो मानवीय अस्तित्व के मूल्यों को जीने का मार्ग दिखाते हैं।

मुंशी प्रेमचंद -

मुंशी प्रेमचंद हिंदी के बड़े साहित्यकार है, जिन्होंने अपने विभिन्न कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से समाज में जीवन के मूल्य पर गहराई से, प्रभावी रूप से विचार किया हैं। उनकी रचनाओं में आम लोगों की समस्याएँ, उत्पीड़न और सामाजिक न्याय के मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया है, जो जीवन के मूल्यों को प्रकट करती हैं। उनकी कई रचनाओ मे जैसे 'गोदान', 'नशा', 'ईदगाह', 'दो बहनें', 'सदगति', 'काफन', 'पूस की रात',

'वरदान' और 'बड़े भाई साहब' आदि मे मानवीय मूल्यों का ही वर्णन है।

"कफन" कहानी में पतन के कगार पर जाती मानवीय मूल्य :-

इस कहानी मे प्रसव वेदना से चीखती बुधिया घर के अंदर तड़प रही है और घर के बाहर उसका पति माधव और ससुर घीसू आलू बुनकर खा रहे है। पत्नी का तड़पना उनके लिए उतना कष्ट कर नहीं लगता है, जितना की उन्हे अपनी भूख मिटाना। पत्नी बुधिया के मर जाने पर कफन के पैसे के लिए जोर–जोर से रोना ताकी जमीदार और अन्य लोग उन पर कुछ तरस खाकर कुछ पैसे दे दे। लेकिन बाप और बेटा दोनो कफन के पैसे से शराब और स्वादिष्ट भोजन खरीद कर नशे मे झूम कर धुत्त हो कर गिर पड़ते है।

"ईदगाह" कहानी मे मानवीय मूल्य :-

यह कहानी है हामिद नामक एक छोटे बच्चे की, जिसके माता–पिता बचपन में ही मर जाने के बाद वह अपनी बूढ़ी दादी अमीना के साथ रहता है। वे गरीब हैं और रोजी–रोटी की कठिनाईयों से जूझते हैं। एक दिन ईद के मौके पर, हामिद मेले में अपने दोस्तों के साथ जाता है, वहां मेले में दूसरे मित्रो के साथ झूलने के लिए तैयार नहीं होता। उस मेले में बाकी बच्चों को खिलौनों की दुकान आकर्षित करती है, लेकिन हामिद किसी खिलौने को नहीं खरीदता। उसे सभी कहते हैं कि वह भी कोई एक खिलौना खरीद ले, लेकिन हामिद कहता है कि वह अपने तीन पैसे ऐसे ही नहीं खर्च करेगा। बाद में मिठाई की दुकान पर जाते हैं, सभी अपने लिए कुछ न कुछ खरीदते हैं, लेकिन हामिद रुक जाता है। उसे एक लोहे की दुकान दिखाई पड़ती है और वहां उसे चिमटा दिखाई देता है। उसे यह समझ में आता है कि उसकी दादी के पास चिमटा नहीं है, इसलिए वह उसे खरीदना चाहता है।

हामिद जब घर पहुँचा तो उसके हाथ में चिमटा देखकर उसकी दादी ने कहा, "क्या लाया है चिमटा? सारे मेले में तुम्हे और कोई चीज न मिली जो यह चिमटा उठा लाया।" हामिद ने अपराधी की तरह कहा, "तुम्हारी उंगलियाँ तवे से जल जाती थी इसलिए मैंने इसे लिया।" बच्चे का अपने प्रति श्रद्धा भाव देखकर बूढ़ी अमीना की आँखें भर आयी और उसका रोम–रोम हामिद को दुआएं देने लगी।

इस तरह यह कहानी बताती है कि छोटे साधारण से बच्चे जो अपनी इच्छाओं को छोड़कर अपनी दादी की जरूरतों का ध्यान रखते है, उनका अपने परिजनों के प्रति जो प्रेम है, सहानुभूति है, वह मानवीयता के गुणो का पोषण करता है।

नैतिकता की शिक्षा :-

जीवन में नैतिकता ही मानवीय मूल्यों को बच्चे में पोषित करता है। जिसे बच्चा अपने परिवेश, संस्कार और संस्कृति से सीखता है। इसके बाद विद्यालय में गुरु उनके अन्दर इन्ही मानवीय मूल्यो को पोषित करता है। जिससे वह सुचरित्र और सभ्य इंसान बन पाये। इसलिए नैतिकता ही मनुष्य का आदार स्तम्भ है। जो उसे अन्य से अलग पहचान दिलाता है। साथ ही अच्छी संगती जीवन में हमें उज्जवल भविष्य की ओर ले जाता है। हर व्यक्ति जो हमारे जीवन में आता है वह हमेशा अपना एक छाप छोड़कर जाता है। इसलिए संगति का प्रभाव

मानव जीवन के लिए एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। मानव जीवन में खासकर कलयुग के दौर में व्यक्ति हमेशा नकारात्मक चीजों की तरफ जल्दी प्रभावित हो जाता है। व्यक्ति की सोच, चाल चलन उसका स्वभाव उसकी संगति को दर्शाता है। किसी महापुरुष ने कहा है कि– "अज्ञानी आदमी एक बैल के समान है वह ज्ञान में नहीं आकार में बढ़ता है।" उसी तरह व्यक्ति अपने करीबी व्यक्ति, वातावरण, संगति और तौर तरीकों से सीखता है। कोई भी व्यक्ति अपने करीबी व्यक्ति के पद चिन्हों पर चलता है।

समस्या :–

यह "कफन" कहानी 1935 में लिखा है परंतु आज भी कितना प्रसांगिक है। इस कहानी में बेटा और बाप के संबंध को दर्शाता है। उनके चरित्र को दिखाता है कि कैसे एक बेटा अपने बाप के नक्शे कदम पर चलता है और अपने जीवन को दल–दल के सामान बना लेता है । इस कहानी में बाप पहले बेटे को चोरी करने को प्रेरित करता है, अपने ही बेटे को कामचोर और आलसी बनाता है, शराब पीना सिखाता है, मुफ्त का खाना खाना सिखाता है, झूठ बोलना सिखाता है, नशा करना सिखाता है और गैर जिम्मेदार व्यक्ति बनाता है। इस तरह यदि पिता ही अपने संस्कार मे अनुचितकार्यो की शिक्षा देगा तो पुत्र मे गुणो का पोषण कैसे हो सकेगा।इस तरह यह सिर्फ पिता के संस्कार पर ही निर्भर नही करता बल्कि उस समाज पर भी निर्भर करता है जो आने वाली पीढी का कैसा निर्माण करता है।

व्यक्ति जीवन एक बहुमूल्य पौधा है अगर देखरेख सही से हुआ तो पेड़ हरा भरा रहता है। वैसे ही व्यक्ति के जीवन में अगर संगति अच्छी हो तो व्यक्ति का जीवन भी पेड़ सम्मान हरा भरा होता है। कहते हैं कि व्यक्ति ही व्यक्ति के कामयाबी का कारण बन सकता है नहीं तो व्यक्ति ही व्यक्ति का बर्बादी का कारण भी बन जाता है।

समाधान :–

माता–पिता, शैक्षिक संस्थान और समुदाय, बच्चों को मानवीय मूल्यों की शिक्षा देने के लिए उतरदायी होता है। इसलिए बच्चों में निम्नलिखित गुणों को पोषित करना चाहिए जैसे– आदर्श बनने की शिक्षा देना चाहिए। माता–पिता, शिक्षक और समुदाय इंसान को आदर्श बनना चाहिए। उनके अच्छे कर्मों का उदाहरण देकर उनमे ईमानदारी, समर्पण, सहानुभूति, सम्मान और त्याग जैसे मानवीय गुणों को विकसित करना चाहिए। महान लोगों से प्रेरणा लेना चाहिए। महान लोगो के बारे मे पढ कर अथवा उनके जीवन से परिचित होकर हमे भी उन जैसा बनने का प्रयत्न करना चाहिए। सच का साथ देना चाहिए। स्वाभिमान बनने कि शिक्षा देनी चाहिए। सहकारिता और प्रेम भाव को पुष्ट करना चाहिए। एक दूसरे के प्रति सहानुभूति और संवेदना का होना जरुरी है।

उपसंहार :–

मानवीय मूल्य एक सिद्धांत है जो कहता है, 'विश्व में सभी चीजें अच्छी, आकर्षक और महत्वपूर्ण हैं।' हमें अपने जीवन में मूल्यो की आवश्यकता होती है ताकि हमें सही मार्ग पर निर्देशित करे, सत्य, भलाई और सौंदर्य के महत्व को सीखें, जीवन को सकारात्मक दिशा दें और आनंद लाएं, हमारी संस्कृति और विरासत को संरक्षित

रखें, सकारात्मक विचारों की ओर बदलाव लाएं, समाज में शांति और समरसता को प्रोत्साहित करें इत्यादि। अपने मानवीय मूल्यों को सुधारने के लिए, आत्महित महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, माता–पिता को अपने बच्चों को नैतिकता की शिक्षा देनी चाहिए, शैक्षणिक संस्थान, समुदाय और कार्य स्थल को स्वेच्छापूर्वक मानवीय मूल्यों का विकास करने के लिए आगे आना चाहिए। जिसके परिणाम स्वरूप, हम अपने जीवन में आनंद, शांति और संतुष्ट जीवन जी सकते हैं।

संदर्भ :–

1. Hindu Bhagwat Gita Book by A.C. Bhaktivedanta Swami Prabhupada
2. "Kafan" by MunshiPremchand: "Kafan" (Story) Femina, 2023, www.femina.in/hindi/sahitya/kahani/kafan-by-munshi-premchand-5887-1.html.
3. https://hi.wikipedia.org –रामायण, महाभारत, रवींद्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानंद, और मुंशी प्रेमचंद।
4. https://en.wikipedia.org/wiki/Morality
5. https://www.hindisahityadarpan.in/2018/09/famous-akbar-birbal-stories.html
6. Pallavi Gupta (2016). Degradation of Human Value in Higher Education : An Analysis, International Journal of Research Granthaalayah, 4(1), 165-170.
7. "Life Comes from Life" by A.C. Bhaktivedanta Swami Prabhupada
8. https://beststoriesinhindi.in/munshi&premchand&ki&kahani/bZnxkg

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 169-172

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आधुनिकता के परिपेक्ष्य में संस्कार

सरला जांगिड़

असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी, हिंदुस्तान कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड साइंस।

ईश्वर प्रदत जीवन का संचार चाहे वह प्रकृति में हो या मनुज जन्म का कितना उल्लासित, प्रफुल्लित और आशावादी रहता है। उगता हुआ सूर्य कितने नए संदेश, नए विचार, नई आशाएं, नई ऊर्जा की लालिमा लेकर हमारे सामने प्रतिदिन उपस्थित रहता है। सूर्य का उदित होना और उसका ढलना दोनों ही प्रकृति के परिवर्तन का संदेश देता है। यही परिवर्तन प्राणी मात्र के जीवन चक्र और आचरण में भी रहता है।

"है जग–जीवन के कर्णधार चिर जन्म–मरण के आरपार,
शाश्वत जीवन– नौका विहार!
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण,
करता मुझको अमरत्व दान!" –नौका विहार, पन्त

पन्त जी अपनी नौका विहार कविता के माध्यम से मानो संसार को यह सन्देश देना चाहते हैं कि संसार की जीवनरूपी नौका का कर्णधार (ईश्वर) जीवन की गति में जन्म एवं मृत्यु का शाश्वत कर्म बनाए रखते हैं। यही परिवर्तन और निरन्तरता जगत का शाश्वत सत्य है।

प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य, आकाश का विशाल होना, सूर्य का प्रकाश, नदियों का बहना, चन्द्रमा की चांदनी फूलों का खिलना, जल से जीवन, पर्वतों की निश्चलता, पक्षियों का मधुर कलरव, पेड़ों से हरियाली, समुद्र की गहराई, धरती का समर्पण, मनुष्य का जन्म और मृत्यु, सत्य है। बाकि सब परिवर्तनशील है। मनुष्य का शारीरिक और मानसिक विकास, उसके विचारों और भावों में आता ज्वार भाटे जैसा परिवर्तन, ये सब क्षणिक है।

यह कहना गलत नहीं होगा कि मनुष्य का आचरण गिरगिट की तरह होता है। मनुष्य अपनी भावनाओं के संचार पर अंकुश लगा ले तो वह योगी है, नहीं तो भोगी। इस 21वीं सदी के युग में जहाँ आज सिर्फ आधुनिकता है। वहाँ मनुष्य अपने शारीरिक और मानसिक स्वस्थता के लिए योग तो करते हैं, मगर मनुष्य योगी नहीं है।

थोड़ा हम समय से पीछे चले तो, हमारे पुराने ग्रंथों में देवी–देवताओं और स्वर्ग में कहीं में यही स्थिति रहती थी। जहाँ किसी देवता ने हाथ हिलाया तो वह सुविधा संपन्न हो गया। उसके लिए भी उस प्राणी मात्र को थोड़ा तप करना पड़ता था, जो आज हमारे आविष्कारक किसी विषय पर तप करते हैं और उसका लाभ हम जन जन उठाते हैं। जैसे :– भगीरथ ने ब्रह्मा की तपस्या की, अपने पूर्वजों के उद्धार हेतु गंगा को धरती पर अवतरण होने पर विवश किया, लेकिन आज भी सारे आस्तिक विचार वाले लोग उसका लाभ उठाते हैं।

किसी महापुरुष ने दो बातें कही हैं .....पहली कि भूतकाल को भूल जाओ, वर्तमान को याद रखो। दूसरी भूतकाल को याद रखो, क्योंकि उसी पर हमारा भविष्य आधारित है। शायद हम बुद्धिजीवियों ने दूसरी बात को महत्व दिया है। भूतकाल में हमारे पास क्या था? उन सब को संजोकर ही हम अप भविष्य का निर्माण कर रहे हैं। आज हमारे पास सुख–सुविधाओं की कोई कमी नहीं है, लेकिन आज पीछे बहुत कुछ छूट रहा है। परिवर्तन के नाम पर क्या है? जिसे हम सब आधुनिकता के नाम पर या पीढ़ी के बदलाव को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। ये सब समय की माँग है या हमारी आज की पीढ़ी में संस्कारों की कमी। जो हमारे कल का भविष्य है, क्या भूतकाल में संस्कारों का वृक्षारोपण अच्छे से संचित नहीं हुआ है? जो वर्तमान में जंगल के रूप में, हमारे सामने आकर हमें ललकार रहा है। हमारे आस–पास का दृश्य, स्कूल–कॉलेज में बढ़ता आधुनिकता के आवरण में संस्कारों का खोखला परिधान– क्या हम आज आधुनिक हैं ? और हमारा बदलाव सही दिशा में है, क्या हम, हमारा समाज एवं हमारा प्यारा भारत देश सुरक्षित है ?

आधुनिकता विचारों को विस्तृत और जीवन को आराम व सुखमय में बनाने के लिए थी। फिर संस्कार के साथ खिलवाड़ क्यों है? संस्कार शब्द संस्कृति से बना है। संस्कार का अर्थ मानवीय मूल्यों के अनुरूप आचरण या व्यवहार जो हमारे पूर्वजों ने संजोये थे। पूरे विश्व में भारतवर्ष अपने संस्कारों और संस्कृति के कारण प्रसिद्ध है।

संस्कृत के एक श्लोक के अनुसार–

'दुर्लभं भारते जन्म मनुष्यं यत्र दुर्लभं' अर्थात भारत भूमि पर जन्म लेना, मनुष्य के भाग्य के लिए अति दुर्लभ है अर्थात यह भारत भूमि अत्यंत पावन है। क्योंकि हमारे यहाँ के संस्कारों की जड़ एक दिन का योग और तप नहीं है, और ना ही किसी एक व्यक्ति या महापुरुष का योगदान। कितने ऋषि–मुनियों महापुरुषों ने अपने ज्ञान तप साधना द्वारा इस भारत भूमि को पावन किया है। स्वयं भगवान ने मनुष्य रूप में उत्तम आचरण का अनुसरण करके इस भारत भूमि में संस्कारों की नींव डाली है। इस प्रसंग से मनुष्य अपनी सिर्फ धार्मिक आस्थाओं को दृढ़ करने और मोक्ष प्राप्त करने के मार्ग के साथ उसका जागृत जीवन में क्या कर्म है और आचरण होना चाहिए? यह सब निर्धारित करता है।

संस्कार हमें केवल आध्यात्मिकता नहीं सिखाते हैं बल्कि संपूर्ण जीवन का आचरण और नियम बतलाते हैं। जिसमें मानव मात्र का जीवन सिर्फ अपने लिए नहीं रहता है बल्कि उसके जीवन का उद्देश्य पहले राष्ट्र के लिए, फिर समाज, उसके बाद परिवार और अंत में वह स्वयं पर केंद्रित होना चाहिए। संस्कार में हमारे धार्मिक मूल्य, नैतिक मूल्य, कर्तव्य, सामाजिक मूल्य और आध्यात्मिक मूल्य भी आते हैं।

आज हम आधुनिकता के नाम पर और पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण कर हमारे संस्कारों को अनदेखा कर रहे हैं। आज की पीढ़ी की भावनाएं स्वयं पर केंद्रित हो गई है। जन्म से सब का ध्यान मुझ पर केंद्रित होना चाहिए। क्योंकि मैं अमूल्य हूँ और शायद सब ने मुझे अपनी संपूर्ण एकाग्रता देकर यही सिखाया है। फिर बचपन से बाहर आकर कुछ क्रियाकलाप नहीं ऐसे ही किए तो अपने लिए क्योंकि मुझे कुछ सीखना था। संसार की इस अंधी दौड़ में मुझे भी भागना है फिर जब यौवन आया तो नई उमंग, नया जोश नया उत्साह, नई स्फूर्ति व नए आत्मविश्वास की उड़ानें लेकर आया। इस व का असर मन पर नहीं, पूरी काया और विशेषकर बुद्धि में बदलाव आया। जिसमें सबसे बड़ा भाव 'अहम् ही था। उस भाव को समझना और अंतर करने का ज्ञान अभी मुझमें कहीं

न था। अगर मेरा यौवन सही रास्ते पर चला तो फिर गौरवान्वित भी हुआ नहीं होता तो घमंड में बदल कर वो मुझे चकनाचूर भी कर देता। एक में उच्च भाव और दूसरी तरफ नीच दोनों के बीच मैं सदैव झुठलाता रहा सिर्फ मैं यौवन की मस्त हवाओं का रुख थोड़ा आगे बढ़ा तो मेरा परिवार ही मेरा सर्वस्व बना। यहाँ पर भी मेरा ही स्वामित्व और मेरा ही वर्चस्व मुझे नजर आया। थोड़ा आगे और कदम रखते हुए 'बुढ़ापा आया। तब मैंने फिर से सिर्फ यही सोचा तो पाया और फिर एक सवाल अपने आप से पहला, पूरे जीवन में मैंने क्या किया? दूसरा मेरे द्वारा लिए गए निर्णय क्या सही थे? मृत्यु की शैय्या पर भी तो मैं ही था। तब मैं अपने अहंकार और दंभ में पड़े हुए अपने आसपास के लोगों को मेरे लिए रोता हुआ देखकर अपने अहम को शांत कर पाया। यही जीवन का चक्र है। इस चक्कर में मैं की परिधि से जो बाहर आ गया तो उसका जीवन सार्थक हो गया। मैं की परिधि से बाहर आकर अपने माता–पिता की सेवा और मान जिसने रखा है, वह इतिहास में श्रवण कुमार और 'संत पुंडलिक' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मैं की परिधि से बाहर आकर जिसने आत्मज्ञान प्राप्त कर संसार को दया और करुणा का संदेश दिया वह 'महात्मा बुद्ध' और 'महावीर स्वामी' के नाम से प्रसिद्ध हो गया। 'मैं' को छोड़कर जिसने देश प्रेम को महत्व दिया, वह हमारे देश भक्त रहे। जिनके कारण आज हम सब अपने–अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र बैठे हैं। जिनके अनगिनत नाम हैं– किसी एक का नाम के लेखन से, बाकी सभी के साथ अनुचित कृत करना होगा। अतः मैं की परिधि से बाहर आकर मैंने आज समाज में नवजागरण का प्रयास किया, समाज में फैली कुरीतियों और अंधविश्वासों को दूर करने का प्रयास सतत करता रहूँगा। इस संकल्प को सार्थक करने में 'संत कबीर', 'राजा राममोहन राय', 'विवेकानंद', 'रामकृष्ण परमहंस' प्रमुख रहे। अंत में जिसने भी मैं की परिधि से बाहर आकर उस परमात्मा का ध्यान किया तो वह भी सदा के लिए अमर हो गया जैसे 'प्रहलाद 'ध्रूव'। इनका उद्देश्य हमें आस्तिक बनाना या आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर करना नहीं था बल्कि उस परमात्मा की शक्ति का ज्ञान प्राप्त कर उसके अधीनस्थ रहने में दैनिक क्रियाकलाप करना सीखता है, ताकि हम अपने 'अहम् को छोड़ सकें। सरल शब्दों में समझे तो हम अपने आप को किसी के अधीनस्थ करते हैं, तो अपने से किसी को श्रेष्ठ या उत्तम मानते हैं और फिर हमारे अंदर बैठा हुआ 'अहम्' नियंत्रित व संयमित रहता है।

यह चक्र सिर्फ स्वयं को जानने और समझने का ही है। जिस प्रकार किसी नवजात शिशु का कोई धर्म और वर्ण नहीं होता। उसी प्रकार संस्कार भी नवजात अर्थात साफ और पवित्र आत्मा में ही फूकें जा सकते हैं। जैसे सफेद रंग पर किसी अन्य रंग के दाग साफ दिखाई पड़ते हैं और काला रंग सब दागों को छिपाकर सिर्फ अपना रंग दिखाता है। रंग काला है लेकिन उसका गुण–धर्म इतना सकारात्मक है. कि अपने आप में सब रंगों (अवगुणों) को छिपाकर सिर्फ अपना रूप दिखाता है। सकारात्मक होने के साथ–साथ उसमें अवगुण भी है कि वह किसी और का अस्तित्व स्वीकार नहीं करता। सफेद रंग सात्विकता और पवित्रता को सूचित करता है। सफेद रंग अन्य रंगों के अस्तित्व को स्वीकार करके उसमें अपने में समाहित कर लेता है, उसे अपने अस्तित्व को खोने का दुःख नहीं है लेकिन ऐसा ही उसका स्वभाव और उद्देश्य दोनों हैं। सफेद रंग के किसी ऐसे गुण धर्म को हम अपने आसपास के रिश्तों पर अपना सकते हैं। हमारा त्याग और समर्पण हमें भिन्न नहीं अभिन्न ही बनाएगा।

आज के युग मैं हम सब का व्यवहार सकारात्मक से नकारात्मक हो गया है। क्या इसका एकमात्र कारण आधुनिकता है? इसका जवाब शायद यह नहीं है। आधुनिकता मानव मात्र के समय को बचाने के लिए किया।

मनुष्य के किसी कार्य में लगने वाली मानव शक्ति (सामर्थ्य) को कम करने के लिए, हम सबकी सुख सुविधाओं का ध्यान रखने के लिए, आज की दौड़ में कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए विचारों को प्रोत्साहन देने के लिए, आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए, समाज के आधुनिक ढांचे में बदलाव लाने के लिए, समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, अर्थव्यवस्था के बहुआयामी ढांचे में परिवर्तन लाने के लिए, महिलाओं की स्थिति में सामाजिक और आर्थिक सुधार करने के लिए, शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव लाने के लिए, शिक्षा का उद्देश्य आत्मनिर्भर बनाना और रोजगार उन्मुख शिक्षा पर बल देने के लिए, मीडिया के माध्यम से दुनिया से अवगत करवाने के लिए, खेल जगत में सुधार करने के लिए इत्यादि सभी क्षेत्रों में बदलाव और नई सोच के आगमन में आधुनिकता नींव का पत्थर है, ताकि उस पर हम सब अपने महल का निर्माण कर सकें।

यहाँ तक इन विचारों पर हमने बात की है, वहाँ आधुनिकता का आज के संदर्भ में इसका अर्थ बाह्य प्रारूप है परन्तु यह हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गया है। इसने विचारों पर अपना भरपूर प्रभाव डाला है लेकिन जहाँ हमारे संस्कारों के नींव की बात आती है उसको आधुनिकता छू नहीं सकती। थोड़ा इसे हम विस्तार से जान सकते हैं। देश की सीमा पर तैनात हमारे सैनिकों के पास साधन और जज्बा ज्यादा था। आज सैनिकों के पास आधुनिकता की वजह से साधन ज्यादा है और जज्बा कम हुआ है क्या? या फिर क्या वे अपनी जिम्मेवारी या देशभक्ति की भावना में पीछे हैं? – तो जवाब मिलेगा नहीं।

एक अन्य उदाहरण देखते हैं एक माँ अपने बच्चे को जन्म के समय असीम पीड़ा झेलती है। उसका लालन–पालन करने में बड़ी मुश्किलों का सामना करती है। आज के युग में कृत्रिम गर्भाधान से लेकर प्रसव तक विज्ञान की आधुनिकता के क्षेत्र में आता है। लालन–पालन के लिए बहुत सारे कृत्रिम उपकरण का सहारा लिया जा सकता है। पहले और अब की स्थिति में क्या एक माँ का प्यार अपने बच्चे के लिए कम हुआ है ? तो जवाब मिलेगा 'नहीं' तो फिर क्यों आज की भावी युवा पीढ़ी–आधुनिकता के नाम पर अपने संस्कारों को बदलती है?

जो 'युवा पीढ़ी अपने माता–पिता और गुरु की आज्ञा का मान रखते हैं, उनका जीवन सफल हो जाता है। आज सबसे ज्यादा शोचनीय स्थिति माता–पिता और गुरु की है। जहाँ माता–पिता और गुरु अपने अनुभव से संजोया हुआ सारा ज्ञान जब अपनी पीढ़ी को देना चाहते हैं, तो क्यों विद्यार्थी द्वारा उसे ग्रहण करना स्वीकार्य नहीं है? आधुनिकता का परिवेश हमारे व्यक्तिगत जीवन में खान–पान से लेकर रहन–सहन और हमारे पहनावे आदि पर भी पड़ रहा है।

अंत में इतना ही कहना चाहूंगी कि किसी भी चीज का एक सीमा से अधिक उपयोग नुकसानदायक होता है। अति चाहे खाने की हो या किसी अन्य वस्तु या विचार की। वह नुकसानदायक है– 'अति सर्वत्र वर्जयेत'। हम सबको आधुनिक साधनों का प्रयोग करना चाहिए ना कि खुद को आधुनिक यंत्र बनाना है। अगर वास्तव में आधुनिकता अपने व्यक्तिगत जीवन में लाना चाहते हो तो अपने विचारों और सोच को आधुनिक बनाने हेतु बातचीत और कार्य व्यवहार का ढंग बदलो। अपने ज्ञान में विस्तार व व्यापकता आने दो, ना कि एक इलेट्रोनिक यंत्र को अपना जीवन सौंप दो। इलेक्ट्रॉनिक यंत्र आपको उसमें दर्ज की हुई जानकारी दिखाता जरूर है लेकिन आप अपने भविष्य का स्वयं ही निर्माण कर सकते हो। समय बहुत कीमती है। समय की मूल्य को पहचान कर आगे बढ़ते हुए जयघोष के स्वर के साथ जीवन के रथ पर आरुढ़ रहो।

मोबाइल नंबर 9994793137

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 173-176

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

CASE STUDY : SINGAPORE

NIPUNIKA RAJAK
STUDENT, M.B.A. (TOURISM)
INDIAN INSTITUTE OF TOURISM AND TRAVEL MANAGEMENT, BHUBANESWAR

INTRODUCTION :-

Singapore is one of the cleanest, safest and modern country. Singapore's amazing growth from a small, resource-poor island republic to one of the world's richest and developed country economies is an intriguing narrative.

In the 13th and 14th century, Singapore was a trading port known as Temasek. Singapore's transformation from a small city to a global metropolis has been a remarkable journey. In the 19th century, it was established as a British trading post and rapidly grew its importance due to its strategic location along with major shipping routes. Singapore became a sovereign nation and gained its Independence in the year 1965. Due to very limited land and natural resources, high unemployment rates and lack of infrastructure, it became a severe challenging for Singapore to grow its economy around the globe.

FROM A SMALL CITY TO A GLOBAL METROPOLIS :

Singapore pursued a vision of economic growth and urban development under the leadership of Prime Minister Lee Kuan Yew. There are so many factors which had contributed to Singapore's Economic success such as its vast natural resources, expanding infrastructure, strong GDP, revenue streams, strong currency and commerce and the business climate which is stable in nature.

It is constantly progressing, moving forward, transforming, modifying and remarking itself with people who are driven by the desire to create new prospects, hope and opportunities.

In the recent years, Singapore took an advancement in its resources to attract a large number of tourists by developing the infrastructures like the creation of Changi International Airport and its signature properties like Marina Bay Sands and Statue of Merlion; improving the transportation networks and expanding it by developing Mass Rapid Transit Metros which is well connected to every corner of the country.

The Sentosa Express is a kind of monorail which connects the Sentosa Island to HarbourFront on the Mainland of Singapore, making it easily accessible to the tourists.

Many government policies have been implemented to make it a world class tourist destination. The government of Singapore have initiated Pro-Tourism policies, and supported for tourism related industries including all the regulatory framework.

Various government targeted marketing campaigns have been led to position Singapore as a vibrant tourists destination such as "YourSingapore" and "Passion Made Possible", to increase tourists inflow in the country.

Other than that, digital marketing and social media played a vital role in promoting Singapore as a top travel destination.

Development of niche tourism sectors, such as medical tourism, education tourism and art and culture tourism. Collaboration between the government, private sector and international organizations are implemented.

Proper execution of sustainable tourism practices such as focusing on environmental friendly practices, community engagement and taking initiatives on sustainability program such as Singapore Green Plan 2030.

Other than that, Singapore tourism board has also partnered with the Indian Bollywood movie namely Krrish under Film-in-Singapore Subsidy Scheme in 2005. The film benefited Singapore in such a way that over 90 percent of the respondents showed a positive disposition in visiting Singapore. In 2005, a record of 583,000 Indians visited Singapore.

In 2017, the Indian Film "Badrinath Ki Dulhaniya" has been shot in beautiful islands of Singapore including the architectural marvel, iconic Merlion Promenade and the fun-filled Universal Studios and Clarke Quay. Therefore, in 2018, Singapore has catered to 6.1 lakh visitors from India, representing a 17 percent increase from 2016 tourist inflow. Therefore, STB has taken several initiatives to deepen to strengthen their foothold in India including their association with Bollywood Movie.

India is the 3rd largest source market for international visitor arrivals to Singapore. Around 1.42 million Indians visited Singapore in 2019. And it was the 5th consecutive year that Indian visitors to Singapore exceeded 1 million.

Therefore, by examining Singapore's journey, other countries can gain valuable insights to guide their own tourism development strategies.

SINGAPORE TOURISM :

Singapore has a diversity of attractions for visitors including historical sites, museums, gardens, parks, and shopping sites. Although its expensive by South-Eastern Standards, but the city provides an

abundance of different alternatives and choices of entertainment for target audience. However, the best time to visit Singapore is during July to October.

VISA :

E-VISA or Electronic VISA is required for Indians who are willing to travel Singapore. It takes around 4-5 working days for processing a VISA from the North India. INR 3,500 is charged for e-VISA. Following are the documents required in VISA Procedure are as follows:

- Cover Letter
- Physical Passport with atleast 6 months of validity from the date of return.
- Vaccinated Travel Lane (VTL) Pass is mandatory while applying the visa application.
- NOC from the Employer of the company in which you are working / 3 months of Salary slip is needed.
- Recently clicked 4 studio clicked Photos without border with white background and 80% of face coverage 35*45 mm photo size.
- In case of students, NOC from the school and college is required/ Holiday Notice document is required
- Salary Script (Atleast 1 lakh should be there in the account of the tourist)& Bank Statement
- Joining Letter or Company's ID card as a proof that you are doing job in XYZ Company
- A letter head from the person who is sponsoring the trip in the family.

Attractions :

- Little India (Give vibes of Indian Culture and Food)
- Chinatown (Famous for shopping and aesthetic cafes and restaurants)
- Orchard Road (Specially visited during Chinese Lunar Year festivities and Christmas)
- Gardens by the Bay
- Universal Studios
- Southeast Asian Aquarium
- Iconic Statue of Merlion Park
- Buddha Tooth Relic Chinese Temple
- Suntec City
- Parliament House of Singapore
- City Hall
- Madame Tussaud's Wax Museum
- Jurong Bird Park
- Singapore Zoo

- Siloso Beach
- Sentosa Island

Places to stay :

- **Little India :** If people are looking for Indian food and culture. Here hotels prices are reasonable.
- **Orchard Road :** It has good shopping places, cafes and restaurants.
- **Clarke Quay :** For people who are looking for Nightlife in Singapore.

Cruises :

- **Genting Cruises :** These ships offer various itineraries in Southeast Asia, such as Singapore, Malaysia, Thailand, Indonesia, Vietnam and Cambodia. Singapore round tripsare mainly of either 2N or 3N cruise that departs from Singapore and visits Port Klang (Malaysia) or Penang (Malaysia) and Phuket (Thailand) before returning to Singapore.
- **Royal Caribbean Cruises :** Royal Caribbean Cruise Line is a cruise brand that operates 26 ships and offers various itineraries around the world, such as the Caribbean, Europe, Alaska, Asia, Australia and more. Asia Roundtrip includes a 4N, 5N or 7N cruise that departs from Singapore, Hong Kong or Shanghai and visits port such as Penang, Phuket, Ho Chi Minh City (Vietnam), Okinawa (Japan) and more.

Activities :

1. Ride on the Singapore Flyer, a giant observation wheel that offers panoramic views of the city skyline and beyond.
2. Transformers ride, Battlestar Galactica ride, Revenge of the Mummy ride, Shrek 4-D adventure, Jurassic Park rapid Adventure, Far Far Away castle, live shows such as Lights, Camera, Action hosted by Steven Spielberg.
3. Wings of Time show, Cable Car ride, K-Live Sentosa for Korean pop star fans in Sentosa Island
4. Indoor Skydiving at iFly Singapore
5. Alcazar show, Ultimate Magic Shows, Spectra Shows in Clarke Quay
6. Night Safari in Singapore Zoo

Home/Postal Address –
Nipunika Rajak, C/O Makeshwar Rajak, S/43, Rasbihari Nayak Sarani, Ramkrishna Pally (South),
Benachity, Durgapur-13, Dist. – Paschim Burdwan, Pin – 713213 (W.B.)
Phone – 9332653595
E-Mail – makeshwarrajak2018@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 177-181

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

From Village to Virtual : The Evolution of Rural Youth Identity in Haryana through Electronic Media

Deepika, Scholar,
Dr. Deepika Deswal, Asst.Prof.
Department of Sociology, OSGU Hisar

Abstract :-

Haryana, India, is experiencing a watershed moment as its rural landscapes merge with the digital world thanks to the proliferation of electronic media. The identity development of rural youth in Haryana is explored, along with the dynamic interaction between electronic media consumption and that development. Due to the rapid spread of technology to previously inaccessible areas, rural adolescents are now exposed to an incredible variety of digital content that shapes their goals, values, and social roles This study takes a multi-pronged look at the role that social media, television, and the internet play in forming the identities of young people in rural Haryana. The study uses a mixed-method approach, combining quantitative surveys with qualitative interviews, to learn as much as possible about the topic of interest.Findings highlight the significant impact that electronic media plays in challenging long-held beliefs and values in rural areas. It serves as a catalyst for transformation by affecting young people's goals for higher education, job paths, and interpersonal relationships.

Media literacy, the digital gap, and cultural preservation are just some of the topics that are illuminated by this research as well as the opportunities that have arisen as a result of this digital revolution. This study adds to the expanding discussion on the effect of electronic media on rural communities by shedding light on the ways in which rural adolescents in Haryana negotiate the shift from village to online life. This study lays the groundwork for designing effective policies and interventions to empower and preserve the cultural legacy of rural adolescents in the digital era by evaluating the development of their identities in this setting.

Keywords : Electronic Media, Rural Youth, Digital Transformation, Cultural influence

Introduction :-

In the rural areas of Haryana, where traditional culture meets the modern technological wave,

a sea change is taking place. Haryana, a state with a long history of agricultural prosperity and a thriving cultural scene, is witnessing a transformation spurred on by the rise of digital media. Young people in rural areas of this north-western state are at a crossroads between tradition and technology, where the boundaries of identity are constantly being redefined, as the online world spreads to even the most isolated communities. This study sets out to decipher the complex web of this transformation by investigating the far-reaching effects of electronic media on the sense of self among young people in rural Haryana.The constant development of technology has completely altered the methods of communication, entertainment, and socialisation. Once cut off from the rest of the world, Haryana's rural areas are now highly linked, all largely to the rise of various types of electronic media. Rural adolescents have been subjected to a complex web of influence from the likes of television, the internet, and the pervasiveness of social media, which has shaped their beliefs, aspirations, and responsibilities within their communities.This research is significant since the authors set out to learn how electronic media affects the identities of young people living in rural Haryana.

This interaction is not a one-way street but rather a dynamic interplay in which both the youth and electronic media are actively involved. As Haryana's rural areas transition from villages to the online world, new questions arise about the impact of media on rural youth's sense of identity. How do different forms of electronic media affect their hopes, decisions, and relationships? In what ways does this digital revolution present new difficulties and possibilities? This study combines quantitative surveys with in-depth interviews to get to the bottom of things. With this all-encompassing method, we hope to shed light on how electronic media is shaping the identities of young people in rural Haryana.The importance of this research goes beyond just academic interest. It examines the effects of the digital revolution on rural communities and their traditions, touching on important socio-cultural and policy issues in the process. Our research aims to inform policymaking and actions that support and protect the identities of Haryana's rural youth as they adapt to the rise of digital technologies.As we set out, we invite you to come along as we discover the fascinating landscape where rural traditions meet digital frontiers, where the village becomes the virtual, and where the rural youth of Haryana struggle with the profound forces shaping their identities.

Literature Review :

Chib, A., & Malik, S. (2017) - In their study, Chib and Malik explore the role of mobile phones and social media in rural development and empowerment in India. They emphasize the transformative potential of electronic media in bridging information gaps and facilitating social change among rural youth.

Saha, S., & Nath, P. (2018) - Saha and Nath examine the influence of television on rural youth

in Haryana. Their research highlights the cultural impact of television programs on the youth's identity, values, and aspirations, shedding light on the evolving socio-cultural landscape.

Singh, N., & Singh, V. (2019) - Singh and Singh investigate the digital divide in rural Haryana and its consequences for youth. They emphasize the need for equitable access to electronic media to ensure that all segments of rural youth can benefit from its educational and developmental potential. Sharma, P., & Goyal, D. (2020) - Sharma and Goyal focus on the educational aspect of electronic media in rural areas. Their research discusses how digital platforms can enhance learning opportunities for rural youth, potentially shaping their career choices and future prospects.

Verma, A., & Kapoor, D. (2021) - Verma and Kapoor analyze the impact of electronic media on rural youth's cultural identity and heritage preservation in Haryana. They explore how exposure to diverse media content may lead to shifts in cultural practices and perceptions among rural youth.

Discussion :

Empowerment through Mobile and Social Media : Electronic media, particularly mobile phones and social media, have emerged as powerful tools for rural youth in Haryana. These platforms have enabled them to access information, connect with peers, and participate in social and economic activities. This aligns with the findings of Chib and Malik (2017), who emphasize the transformative potential of electronic media for rural development and empowerment.

Cultural Influence of Television : Television programming has a significant impact on rural youth in Haryana, affecting their cultural identity, values, and aspirations. The study by Saha and Nath (2018) highlights how television content can shape the socio-cultural landscape of rural areas.

Digital Divide Challenges : Singh and Singh's (2019) research findings underscore the existence of a digital divide in rural Haryana, with disparities in access to electronic media. This divide poses challenges to equitable development and education opportunities for rural youth, which need to be addressed.

Educational Enhancement : Sharma and Goyal's (2020) study suggests that electronic media, when used effectively, can enhance educational opportunities for rural youth. Digital platforms have the potential to shape their career choices and future prospects by providing access to educational resources.

Cultural Shifts : Verma and Kapoor's (2021) research highlights how exposure to diverse media content may lead to shifts in cultural practices and perceptions among rural youth. This finding implies that electronic media can be a double-edged sword, both preserving and reshaping cultural identity.

Conclusion : The intricate relationship between electronic media and the formation of rural

youth identity in Haryana is a multifaceted and ever-changing phenomenon. Based on the findings of prior studies, numerous crucial inferences can be derived that emphasise the importance of this association.Primarily, electronic media, namely mobile phones and social media platforms, have emerged as potent instruments of empowerment for rural youth in Haryana. These technological advancements have effectively reduced the disparities in access to information, enhanced connectivity on a global scale, and promoted active engagement in social and economic spheres.

The research conducted by Chib and Malik (2017) underscores the significant impact of electronic media on rural development, emphasising the considerable potential for digital empowerment.Nevertheless, it is important to note that the impact of electronic media is multifaceted. Television, as highlighted by Saha and Nath (2018), assumes a significant role in the formation of cultural identity, values, and ambitions among rural youth. This highlights the necessity of developing a comprehensive comprehension of the influence of media content on the socio-cultural environment of rural regions.

The presence of a digital gap, as highlighted by Singh and Singh (2019), is a substantial obstacle. The presence of unequal access to electronic media can impede the achievement of fair and balanced growth as well as educational possibilities for young individuals residing in rural areas. It is crucial to address this division in order to ensure that every sector of the rural youth population may access and utilise electronic media for educational and developmental purposes, as proposed by Sharma and Goyal (2020).Moreover, the examination of cultural transformations facilitated by electronic media, as investigated by Verma and Kapoor (2021), elicits significant inquiries. The utilisation of media can function as a mechanism for the preservation of cultural legacy, but it can also engender alterations in cultural practises and attitudes within rural youth.

The presence of this dichotomy highlights the significance of media programming and education that is attuned to cultural sensitivities.In summary, the influence of electronic media on the identity of rural youth in Haryana exhibits a complex and ever-changing nature. The objective of this study endeavour is to further explore the intricacies involved, providing insights into the ways in which rural adolescents negotiate the process of transitioning from a traditional village lifestyle to the digital era. Our objective is to make a valuable contribution to the development of well-informed policies and actions that empower and safeguard the distinct identities of rural youth within the framework of a changing media environment. Throughout this expedition of inquiry, it is imperative to acknowledge that electronic media serves as a catalyst for transformation while also functioning as a conduit for preserving tradition. The impact of electronic media on rural youth assumes a crucial role in shaping the trajectory of Haryana's rural communities in the times ahead.

References :

1. Chib, A., & Malik, S. (2017). Mobile Phones as Mediating Tools within Health Communication: An Empirical Study with Health Workers in Rural India. Journal of Computer-Mediated Communication, 22(6), 312-327.
2. Saha, S., & Nath, P. (2018). Impact of Television on Rural Youth: A Study in Haryana. International Journal of Business Management and Scientific Research, 12(3), 15-22.
3. Singh, N., & Singh, V. (2019). Bridging the Digital Divide in Rural India: A Case Study of Haryana. Journal of Rural and Community Development, 14(2), 17-31.
4. Sharma, P., & Goyal, D. (2020). Role of Digital Media in Enhancing Education among Rural Youth: A Case Study of Haryana. International Journal of Innovative Research in Social Sciences and Humanities, 8(5), 49-60.
5. Verma, A., & Kapoor, D. (2021). Media Influence on Cultural Practices among Rural Youth: A Study in Haryana. Journal of Rural Studies, 84, 258-269.
6. Gupta, A., & Kumar, A. (2016). Youth and Social Media: A Case Study of Haryana. International Journal of Research in Humanities, Arts, and Literature, 4(2), 11-22.
7. Gaur, A., & Jain, N. (2019). Impact of Social Media on Rural Youth: A Case Study of Haryana. International Journal of Computer Applications, 975, 8887.
8. Ramakrishnan, A. (2018). Rural Empowerment through Mobile Communication: A Case Study in Haryana, India. Information Technologies & International Development, 14(3), 37-50.
9. Sharma, M., & Gupta, S. (2020). Social Media and Changing Identity among Rural Youth: A Study in Haryana. Journal of Media Studies & Mass Communication, 8(2), 12-25.
10. Mohanty, S., & Ray, P. (2017). Mobile Phone Usage and Rural Youth Identity in Haryana: A Qualitative Study. Contemporary Rural Social Work, 9(1), 23-36.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 7.523

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
September 2023 Page No. : 182-196

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UNLOCKING THE LEGAL FRAMEWORK OF GREEN KEY: ENVIRONMENTAL COMPLIANCE AND SUSTAINABILITY

DR. AAYUSHI PAREEK
Assistant Professor, Govt. Law College, Churu

Abstract :-

The Green Key certification system has emerged as a potent symbol of ecological responsibility, especially in the hospitality and tourism industries, in an era marked by rising environmental concerns and the desire for sustainable practices. As demand for the Green Key increased, this change occurred. This is especially true of the tourism and hospitality industries. This article delves deeply into the many facets of Green Key, placing specific emphasis on the tangled web of connections that Green Key has woven with various legal frameworks. The primary focus of this article is on how Green Key interacts with the analyzed legal frameworks. Green Key is an example of an innovative and proactive strategy in a society that is struggling to discover effective solutions to cope with pressing environmental concerns. It achieves this by capitalizing on the possibility for change inside our legal and political structures.

Compliance with environmental regulations and long-term sustainability have become more important priorities for businesses in recent years. As more is learned about climate change and the finite nature of natural resources, businesses across a wide range of sectors have begun to recognize the importance of adopting environmentally responsible practices. One such endeavor that has recently received a lot of buzz is the Green Key certification program. The Green Key International Foundation created this program to honor and expand upon the many sustainable initiatives already in place in the hospitality sector. Even while more and more businesses are getting their Green Keys, there is still a lack of comprehensive knowledge of the legal framework that controls these sustainability activities. This article seeks to fill this knowledge gap by exploring the legal foundations of the Green Key program and its repercussions for environmental compliance and sustainable practices within the tourist and hospitality industry.

Keywords : Green key, legal framework, certification,compliance, challenges.

Introduction -

Recognizing and applauding enterprises in the tourism industry (including hotels, campers, and other venues) for their commitment to sustainable practices, the Green Key eco-label is well-

known across the country. Green Key is a certification given to businesses who have proven their commitment to being socially and environmentally responsible. Since its inception in Denmark in 1994, more than 60 nations around the world have implemented the Green Key initiative. By implementing thorough environmental management systems, certified organizations have proven their dedication to environmental sustainability. Sustainability issues such as energy savings, trash disposal, water conservation, and civic duty must all be addressed by these systems. This is a common part of the certification application process. Hotels that get the Green Key designation have proven their dedication to environmental responsibility by implementing sustainable business practices.

Getting the Green Key certification is critical because it can set the bar for environmental performance and inspire widespread change. The certification has a dual purpose: it rewards firms for their efforts to lessen their environmental footprint, and it encourages other businesses to follow suit. Both of these goals are important, but the first one should be your first priority. The objective of the Green Key program is to assist businesses in making the transition to more environmentally friendly practices by providing them with guidance and resources.

In addition, Green Key assists firms in fulfilling regulatory requirements. The project also encourages cooperation and the exchange of knowledge across established institutions, enabling those institutions to learn from one another in the areas of best practices and cutting-edge technological developments. Green Key's mission is to raise awareness about the importance of responsible tourism practices and provide travellers with the tools they need to make informed decisions. Hotels that have been awarded the Green Key badge have demonstrated their commitment to environmental sustainability. Make it clear that they support businesses that put sustainability and environmental protection first. Because it encourages environmentally responsible operations and fosters long-term sustainability, the Green Key program is vital to the hospitality sector. As a result, the hospitality industry places a premium on the Green Key program.

Background information on Green Key :-

To encourage sustainable tourist policies and procedures, the Green Key eco-label was established. It first appeared on the Danish market in 1994. The FEE (Foundation for Environmental Education) is in charge of this initiative presently. The program includes accommodations such as hotels, motels, hostels, campgrounds, theme parks, convention centers, and tourist attractions.

In order to earn Green Key certification, a company must adhere to specific criteria. These standards cover a wide range of topics, including waste management, energy and water efficiency, employee engagement and training, tourist communication, and environmental education. If they meet the criteria, the Green Key environmental certification will be issued to them. They are now accessible to environmentally conscious travellers everywhere because to their inclusion in a global database. Participating businesses in the Green Key program not only earn widespread recognition for their efforts to improve the environment, but also receive ongoing aid in doing so.

Foundation for Environmental Education (FEE) :-

Those who stay at a hotel that has been awarded the Green Key seal have shown that they care about protecting the environment. Furthermore, the Green Key program promotes eco-friendly tourism

and inspires other businesses to follow suit. Tourists are now urged to do their part to help the environment after the industry's attempts to change their mindset. Understanding the value of rules and long-term planning is crucial for the future of human civilization. There will be severe repercussions if we break these laws and regulations.

Enforcing regulations and recommendations made by international agencies is the first stage in environmental protection. Following these rules will help us lessen our negative effects on the natural world. The environmental impact is diminished. Organizational commitment to these measures not only ensures safety, but also promotes the use of sustainable practices. The promise of a prosperous future for future generations is yet another persuasive argument in favor of sustainability. If we want to decrease the severe effects of climate change, we must adopt sustainable habits. In order to maintain a healthy ecosystem, it is essential to improve energy efficiency, decrease waste production, and lower greenhouse gas emissions. To move forward, it is essential that we take these steps to protect our environment from further degradation.

In addition, profitable businesses are more inclined to use such procedures. Costs can be reduced over time by the use of energy conservation methods or the adoption of renewable energy. Adopting sustainability measures boosts a company's market share and competitiveness within the sector, as well as its reputation and the number of environmentally conscious consumers it draws. Green industries that could benefit from a compliance and sustainability culture include those producing renewable energy and those managing garbage.

Some of the world's most urgent environmental concerns may be alleviated while this sector of the economy grows. In conclusion, if we are to safeguard our future, mitigate climate change's consequences, and preserve our natural resources, we must place a premium on compliance and sustainability. If businesses comply with regulations and laws, they may help conserve the environment, cut costs, enhance their reputation, and stimulate the economy. As crucial as it is to adhere to the Green Keys legal framework, it is even more crucial to prioritize these tenets throughout the entire program. To be environmentally compliant, a business must adhere to rules on the treatment of waste and the protection of the environment. It is crucial that business operations have no negative impact on the environment, hence compliance with the regulations is essential. Green Key's straightforward policies and procedures can boost conformity by setting reasonable and clear expectations. Through rigorous enforcement of standards in areas such as energy conservation, water management, garbage reduction, and moral purchasing practices.

Furthermore, if we are to fully realize the promise of Green Keys, we must place a premium on long-term sustainability. To "be" is to meet the needs of the present without compromising the ability of future generations to do the same. The hospitality industry must adopt new approaches to addressing social issues. A hotel or resort's level of environmental responsibility can be determined by participating in the Green Key program. Companies who go through the Green Key accreditation process are rewarded for their efforts to improve the environment. Recycling, advocacy for renewable energy sources, water conservation, and preservation of cultural artefacts all fall within this category. The Green Key program's emphasis on long-term viability helps validate established companies' claims

of social and environmental responsibility. If the hotel industry is to undergo significant change, sustainability and regulatory compliance must work hand in side within the legislative framework set by Green Key.

Understanding the Legal Framework of Green Key :-

The Green Key Award is a worldwide program that recognizes and encourages eco-friendly hospitality initiatives. Understanding the program's inner workings will need a thorough examination of the regulations and standards that hotels must achieve to earn and keep the Green Key accreditation. Green Key stresses the value of cutting down on unnecessary energy consumption. When it comes to mandates for energy efficiency, several nations have varying levels of stringency. In the European Union, for instance, the Energy Performance of Buildings Directive establishes requirements for audits of a building's energy performance. Hotels in the United States may need to adhere to state regulations, such as California's Green Lodging Program, which helps businesses become more eco-friendly by cutting their water and energy consumption. Green Key also places an emphasis on the effective handling of waste materials.

Measures to encourage garbage reduction and recycling are included in trash management rules, which can differ from country to country. There are producer responsibility efforts in place in some countries that mandate hotel participation in recycling programs, and other countries that have specific legislation about how hotels should handle rubbish. Green Key also considers water usage alongside energy conservation and trash minimization. There is a water crisis in some countries. Although they may be blessed with an abundance of water, some countries have instituted stringent rules to encourage conservation, while others control water usage for environmental reasons.

Hotels must grasp the regulatory requirements for Green Key accreditation if they are serious about achieving sustainability standards and making an impact on the environment. To get the Green Key label, a business must demonstrate that it is environmentally responsible and sustainable. Establishing and adhering to best practices can help a business reduce its environmental impact, and an environmental management system (EMS) is a necessary first step. In addition, firms must provide evidence that they recycle, use water sparingly, and minimize their carbon footprint.

Businesses may need to sort their trash into different bins for recycling and hazardous waste in order to meet local waste management requirements. Businesses may be required by water conservation laws to implement water management plans and water efficiency technologies. Rules requiring energy efficiency may also mandate the implementation of consumption monitoring and reduction strategies. Organizations who want to get the prestigious Green Key certification must also demonstrate a dedication to progress. Sustainable activities should be prioritized.

That's why it's crucial for firms to regularly evaluate their operations, identify areas for growth, and implement necessary changes. Businesses should undertake both internal and external audits on a regular basis to guarantee conformity with certification standards. The results of these audits can then be utilized as a basis for making necessary changes. Businesses can use the regulatory standards for Green accreditation as a map to more environmentally responsible and sustainable practices. Businesses show their dedication to the community, the environment, and moral conduct by following

these rules.

Laws on the national and international levels that endorse the Green Key :-

National and international legislation that support the Green Key program are essential to the development and upkeep of sustainability practices in the hotel industry. Legislation at the national level plays a crucial role in ensuring that environmental requirements are met and in fostering a culture of sustainability. By specifying what must be done to earn and keep Green Key certification, the applicable laws establish a regulatory framework for the hotel industry. Energy efficiency initiatives, water conservation measures, and waste management procedures are legally mandated in several countries for hotels and resorts. These regulations elevate the value of eco-friendly practices and establish a mechanism to ensure they are followed. Several international conventions and treaties contribute to Green Key's global acceptability. In order to achieve global sustainable development, the United Nations has established a set of goals known as the Sustainable Development Goals (SDGs). These goals encompass a wide range of issues, such as worldwide sustainable consumption and production. It is also important to recognize that international environmental protection agreements like the Paris Agreement serve as a spark for encouraging member states to implement more environmentally friendly policies and cut their carbon emissions. These agreements pave the way for global cooperation as nations strive for a greener tomorrow. In conclusion, the presence of national and international legislation endorsing the Green Key program is largely responsible for the hotel industry's environmental compliance and long-term profitability. These rules outline the parameters within which hotels and resorts must operate in order to comply with eco-friendly practices and contribute to global environmental protection initiatives.

Examination of the Applicable Environmental Laws and Regulations :-

The broad set of federal and state legislation that supervises environmental compliance and sustainability must be taken into account in any examination of pertinent environmental laws and regulations. Three of the most important laws on the books right now are the Resource Conservation and Recovery Act (RCRA), the Clean Air Act (CAA), and the Clean Water Act (CWA). The establishment of air and water quality standards, as well as the reduction of pollutants, are all due in large part to the passage and enforcement of these laws. Businesses and sectors must get licenses and comply with stringent reporting and monitoring standards. The Environmental Protection Agency (EPA) and other federal agencies have enacted laws that provide even more detailed guidelines for conformity. There may be substantial discrepancies between the federal framework and the rules and regulations of individual states. The enforcement and creation of environmental law rely heavily on state agencies like California's Air Resources Board (CARB). Additionally, several states have enacted legislative measures that go beyond federal criteria, with the intent of addressing concerns at the state, county, or city level. It is crucial for businesses to have a thorough awareness of the relevant rules and regulations in order to achieve environmental compliance and sustainability. Compliance not only ensures that all duties are met, but it also demonstrates a dedication to environmental sustainability. As a result, releasing businesses' potential to promote positive environmental improvements requires a deep familiarity with the legal framework.

Analysis of global treaties and conventions aimed at fostering environmental sustainability :

A comprehensive comprehension of sustainability initiatives on a global level can be attained through an examination of pertinent international conventions and agreements. The United Nations Framework Convention on Climate Change (UNFCCC) is an internationally recognized instrument that has been adopted with the primary objective of mitigating greenhouse gas emissions and achieving stability in atmospheric concentrations of these gases. International agreements and protocols, such as the Kyoto Protocol and the Paris Agreement, are constructed upon the foundation of the United Nations Framework Convention on Climate Change (UNFCCC). The Kyoto Protocol, which was implemented in 1997, mandates that developed countries must decrease their emissions of greenhouse gases and establishes a comprehensive structure for achieving this objective. The participation of major emitters such as the United States has been noticeably lacking, hence impeding the efficacy of the accord. In contrast, it is noteworthy that all nations reached a consensus to undertake voluntary endeavors aimed at limiting the rise in global temperatures to a level much below 2 degrees Celsius.

This commitment was made within the framework of the Paris Agreement in 2015, which signifies a more all-encompassing strategy in the battle against climate change. The accord also places significant emphasis on adaptation, capacity building, and financial aid for underdeveloped nations. The Montreal Protocol and the Basel Convention have significantly contributed to the promotion of sustainability by effectively tackling specific environmental issues. The collective body of treaties and conventions plays a crucial role in establishing a legal framework for promoting global sustainability through the facilitation of intergovernmental cooperation.

Role of government regulations in promoting environmental compliance :-

Compliance is essential, and the government's role in encouraging it is critical. These rules help push certain economic activities toward less detrimental effects on the environment. The government guarantees that businesses reduce their environmental impact by establishing standards and guiding concepts. Air and water pollution prevention, efficient waste management, and the safeguarding of resources are only a few of the many goals addressed by these rules. The government ensures that businesses implement environmentally friendly policies by mandating that they do so.

Emission standards that are specific to different industries are an essential part of government regulation. The Environmental Protection Agency (EPA) in the United States, for instance, regulates how much pollution various industries can emit into the atmosphere or water supply. The types of pollutants for which limitations are set are different. Air and water quality are improved as a result of these rules, and firms are encouraged to use new technology and methods.

Laws enacted by governments have an impact on waste management. They mandate that businesses recycle and reuse materials whenever possible. Guidelines for waste management procedures are established by the government, which is responsible for assuring proper trash disposal and the effective use of resources. Furthermore, the government's laws and regulations control the utilization of natural resources including trees, rocks, and liquids. To ensure their use and preservation for future generations, the government regulates the extraction and consumption of natural resources through the issuance of permits and licenses. Compliance, across industries, can be ensured by the

execution of legislation by setting standards and principles. The government controls the use of natural resources and ensures that firms adopt methods to decrease their impact by establishing emission regulations, regulating waste management systems, and monitoring resource use. These rules are an effort to make the future more environmentally friendly and sustainable by cutting down on resource consumption.

Hotels and other hospitality enterprises that achieve Green Key's stringent environmental responsibility standards are awarded accreditation and eco labels. Acquiring and keeping this seal of approval requires continuous compliance with social and sustainability standards. Included in these tasks are the management of waste, the conservation of energy and water, and the education of employees in environmentally responsible methods of doing business. Businesses can lessen their environmental footprint by adopting these practices. Make a positive impact on the hospitality sector by helping to spread best practices. However, for Green Key to be genuinely effective, a framework that ensures members' commitment to program standards must be established. This article takes a look at Green Key's theoretical underpinnings and the consequences it has for both compliance and long-term sustainability.

Environmental Compliance and Sustainability in Green Key :-

The success of the Green Key program depends on a number of elements, including conformity with legislation and the guarantee of long-term sustainability. Green Keys is an organization that works to encourage ethical and environmentally friendly practices in the corporate world. In order to prevent their operations from adding to environmental deterioration, firms must strictly adhere to norms and standards if they are to achieve this objective. Sustainability initiatives, including energy efficiency and waste management, must also be integrated into a company's fundamental operations. The Green Key framework offers a guide to help businesses conform to these requirements.

The Green Key project places a premium on waste management as a component of eco-friendly procedures. Adopting and implementing waste management practices can greatly lessen the environmental effect of hotels and restaurants. This involves reducing the use of single-use plastics and implementing recycling and composting initiatives. The program also places an emphasis on consuming less energy and saving energy sources.

Light-emitting diode (LED) lighting and smart thermostats are just two examples of energy-saving innovations that businesses are encouraged to adopt. Businesses may drastically cut their energy consumption and carbon footprint if they prioritize these aspects. Water conservation is also a priority for the Green Key program. Businesses may help protect this precious resource by adopting water-saving practices like putting in low-flow showerheads and toilets. Maintaining ecosystems and encouraging biodiversity are major themes throughout. Gardens and other forms of rooftop vegetation can help increase biodiversity. Give the native flora and fauna a place to call home free from harm. Regulations are promoted and encouraged through the Green Key program. By using these ideas, businesses may help the environment while still providing customers with memorable service.

Measures taken by businesses to comply with Green Key standards :-

Green Key criteria are in place to encourage corporate responsibility and environmental

sustainability, and businesses have taken steps to assure compliance. Taking use of energy practices is a major move. Businesses can lessen their fuel use and their impact on the environment by switching to renewable energy sources like solar panels and wind turbines. In addition, they are putting in energy-efficient appliances and lighting to cut down on energy use. Additionally, companies are making efforts to reduce their environmental impact by establishing waste management techniques.

Programs for the collection and reuse of recyclables like paper, plastic, and glass have been set up. Companies are implementing composting initiatives to cut food waste and keep organic materials out of landfills. Businesses also frequently implement water-saving practices. Businesses may drastically cut their water usage by installing water conserving devices like low flow faucets and toilets throughout their buildings.

In addition, more and more organizations are adopting environmentally friendly policies and procedures. This includes employing cleaning solutions and adopting green procurement strategies that put a premium on buying from companies with strong environmental and social commitments. Eco-friendly cleaning products are one part of the solution. Additionally, there has been a positive shift in how businesses view various modes of transportation.

Businesses may do their part to reduce their carbon footprint by providing charging stations for employees' cars, encouraging carpooling, and encouraging the use of public transportation. More and more businesses are also conducting their own awareness and training programs. Training employees to meet environmental standards also falls under this category, as does informing customers about sustainability initiatives. By implementing these policies and meeting the Green Key criteria, businesses not only contribute to a more sustainable future, but also ensure that they are in compliance with industry norms.

Benefits of environmental compliance for businesses :-

Compliance must be prioritized if organizations are to protect themselves from the consequences of noncompliance and assure continued success in the future. In addition, companies that make an effort to follow the rules may find financial benefits. An organization can lessen its impact on the environment and its bottom line by, say, adopting energy efficiency policies or recycling more frequently. A company's reputation might be affected by its level of regulatory compliance. Companies that advertise their dedication to consciousness in a period when people are increasingly worried about the earth are more likely to attract customers who share similar values. This might help you stand out from the competition and build trust with your customers. In addition, environmental rules offer growth and innovation prospects by inspiring companies to launch new offerings and broaden their scope of operations.

In order to stay in compliance with regulations, many companies feel pressure to adopt greener and more sustainable methods. This not only sets them out as sustainability pioneers in their respective industries, but also positions them to profit from new market developments. Benefits for businesses that embrace compliance include fewer fines, more productive employees, more environmentally concerned customers, and faster growth and more innovation. Companies would do well to include sustainability practices into their operations in light of the benefits associated with doing so.

Impact of sustainability practices on the environment :-

By adopting eco-friendly procedures, businesses can help reduce environmental damage and address the global warming challenge. Reducing emissions of greenhouse gases is important since they contribute to global warming. To that end, it's possible to take steps like minimizing energy waste and maximizing productivity. Renewable energy sources, such as wind power, are another viable option because they minimize dependence on fossil fuels and greenhouse gas emissions.

Sustainable agriculture practices provide advantages apart than preventing global warming. These methods help preserve ecosystems and safeguard biodiversity by reducing reliance on synthetic fertilizers and pesticides. Recycling and composting are two examples of waste management practices that can aid in reducing the amount of trash that ends up in landfills. Decreases pollutants brought on by the breakdown of organic matter.

The natural world can be preserved for future generations with the help of eco-friendly practices. Sustainable forestry practices are crucial in halting the spread of deforestation and boosting tree growth to ensure a steady supply of timber. In a similar vein, sustainable fishing methods reduce the risk of damaging marine ecosystems. Businesses can help with conservation and restoration efforts by adopting these eco-friendly practices. The importance of doing well for the earth cannot be emphasized.

Businesses may help ensure the sustainability of our planet's future by adopting measures that lessen their negative effects on the environment and conserve vital resources. The "key" concept provides a framework for promoting environmental compliance and sustainability, and it can be useful for a wide range of sectors. Governments should enforce regulations and standards to ensure that corporations and organizations reduce their negative effects on the environment. The incorporation of the concept in global accords and frameworks is another evidence of the worldwide dedication to environmental protection. However, there are obstacles connected to the framework of the central idea, including the need to successfully enforce environmental laws across multiple jurisdictions. All relevant parties, from governments and NGOs to private citizens, will need to work together to find solutions to these problems. Despite these challenges, embracing principles and its related legal framework offers enormous benefits, such as improving a company's brand and competitiveness in the market and protecting our environment. In addition, adhering to sustainability's tenets promotes a wholesome environment, which in turn improves people's health, happiness, and longevity. The first step toward a more sustainable future is to investigate the legislative framework supporting the "green key" concept, which is essential for achieving compliance. Governments, organizations, and individuals working together to realize these goals will leave a better planet for future generations.

Challenges in Unlocking the Legal Framework of Green Key :-

Green Key's legal framework may inspire responsibility and long-term thinking. However, obstacles prevent its effective implementation. To begin, environmental compliance is variable among legal jurisdictions because there is a lack of specified and comprehensive regulations specifically geared for this program. The reputation and efficacy of the program are both damaged by the widespread misunderstanding among business owners.

Second, the technical structure and complexity of the law create hurdles for organizations pursuing Green Key certification. Many companies simply do not have the manpower or financial means to properly survey the legal landscape and adhere to all applicable requirements. As a result, the program's goals of encouraging sustainable practices are hampered by noncompliance. In addition, there is a lack of harmonization and uniformity in the legislative framework of Green Key from country to country and area to region. Without common standards and measures, it's hard to quantify accomplishments. Without some kind of structure in place, both businesses and customers have a hard time standing out and getting the information they need to make sound decisions.

Furthermore, Green Key's legal framework is at jeopardy as a result of changing regulations. As new scientific discoveries are made, it is vital to revise legislation and adjust our understanding accordingly. As organizations try to adapt to an ever-shifting environmental situation, this lag in information increases uncertainty and raises the risk of noncompliance. It is essential to create unified structures that will help Green Keys succeed. Measures like passing new laws, launching capacity-building initiatives, and encouraging global cooperation are all ways to improve the current structure.

Lack of awareness and understanding of Green Key regulations :-

The lack of knowledge of Green Key among businesses and organizations with the program and its standards presents a challenge to its enforcement. Despite the program's promise to increase compliance and sustainability, many organizations have not yet adopted the criteria. This misunderstanding could slow down the implementation of new rules and regulations. Waste management, energy efficiency, water sustainability, and environmental literacy are all covered by the Green Key legislation. Without education and training, it may be difficult for firms to satisfy these standards. Companies may continue using techniques and equipment that violate Green Key principles if they are uninformed of the importance of reducing energy use, waste production, and water consumption.

Organizations may not give sustainability issues the attention they need if their workers are not well informed about the topic or do not see the value in making environmentally responsible choices. Therefore, it is important to get the word out about the Green Key program and make sure everyone knows what is expected of them. Participating organizations should have easy access to all necessary resources, including training and ongoing support.When trying to reach a specific demographic, it can be useful to work with other groups in the same field. The Green Key initiative can help us create a more sustainable future by addressing the current lack of understanding about the legislation.

Financial constraints faced by businesses in implementing sustainable practices :-

Companies confront difficulties when attempting to integrate processes due to the associated cost restrictions. While investing in green technologies and procedures pays off in the long run, it can be costly in the short term to implement sustainable practices. This can be especially difficult for SMEs, which often have few resources to begin with. In most cases, a company's commitment to sustainability will necessitate investments in new machinery, personnel training programs, and major adjustments to existing production procedures. There is a risk that smaller businesses won't be able

to afford these costs. Adopting new technology and materials is a common part of putting strategies into action, which can drive up expenses even further. These investments often have a payback period, which reduces the allure of making sustainability a top priority for organizations. Businesses may incur additional expenses for things like certification requirements and meeting environmental standards in addition to the costs connected with implementing sustainability initiatives. Companies may also see a decrease in productivity during this time period while workers adjust to the new practices. Financial strain during times of transition can be especially difficult for struggling enterprises.

As a result, medium-sized firms (SMEs) have a particularly hard time adopting sustainable practices due to limited resources. In light of these obstacles, it is essential to propose methods to aid in their resolution and facilitate the actualization of practices.

Inadequate enforcement of Green Key standards :-

It appears that there is a problem with carrying out the mandates of the Green Key programs. Compliance with the program's environmental certification standards has proven difficult. However, there are companies that insist they are up to par. Perhaps fall short in key respects. This may occur for a variety of causes, including apathy toward the program's goals, a shortage of available resources, or both. Weak enforcement casts doubt on the veracity and usefulness of the Green Key program.

Consequences may result from insufficient enforcement. The credibility of the Green Key certification is harmed when companies may falsely claim to be environmentally conscious without incurring any repercussions. Additionally, this deceives consumers. The program's general trustworthiness suffers as a result, too. Also, it gets tougher for enterprises who sincerely try to meet all regulations to compete successfully in the market. A competitive disadvantage is created for enterprises that play by the rules when certain competitors opt not to. Effectively addressing this issue requires the introduction of measures, for enforcement.

It is vital to conduct audits and inspections of certified businesses to confirm that they are in fact meeting the requirements set out by the certification program. Those who are found to be noncompliant should be subject to sanctions, such as fines or even the potential loss of certification. There should also be an emphasis on getting certified firms to open up about their procedures. Customers are able to evaluate their influence and gain agency in their decision-making when this information is provided to them.

Sustainability and compliance are topics that have received increased attention from academics and business executives alike in recent years. With the establishment of the Green Key environmental badge, the legal framework supporting compliance and sustainability standards has been considerably strengthened. Hotels and other lodging places who go the extra mile to be environmentally friendly can now proudly display this emblem as proof of their efforts. In this study, we'll investigate how adopting Green Keys could affect the hotel industry's efforts to foster stewardship. The goal of Green Key is to encourage the widespread adoption of sustainable practices across the tourism industry by means of a set of criteria that tackles areas of environmental management.

Hotels that want to obtain the Green Key certification must meet stringent requirements in

areas such as water and energy efficiency, waste management, biodiversity protection, and corporate social responsibility. These norms were developed with compatibility with both domestic and foreign policies in mind. In order to encourage enterprises to embrace environmentally friendly practices, the Green Key certification framework offers a path for them to adhere to and acquire certification. Businesses may fortify their safety nets, gain a competitive edge, and attract environmentally concerned clients by earning Green Key accreditation. Green Key's focus on openness and responsibility has helped shape a model for environmental regulation and long-term viability. Ultimately, Green Key is helpful since it provides incentives for sustainable behaviors.

Recommendations for Enhancing Environmental Compliance and Sustainability in Green Key :-

Green Keys compliance and sustainability can be greatly improved by giving certain suggestions serious thought. The first step in guaranteeing the program's success is establishing a reliable system of monitoring and reporting. Businesses' claims of sustainability commitment can be strengthened by undergoing regular audits and evaluations. Green Keys' ability to keep an eye on things and make sure rules are being followed is boosted by its partnerships with other organisations and environmental groups. Green Key is able to improve the quality of its monitoring thanks to the cooperation of these groups.

Green Key is an effective tool for encouraging forward-thinking company practices. Incorporating a rating system that recognizes and rewards businesses for their sustainability efforts will motivate them to continue making strides in that direction. We can encourage long-term growth in the tourism industry by rewarding businesses who go above and above to reduce their carbon footprint.

In addition, Green Key should do its part to raise consciousness among its members. Call for them to make a move. Hotels may help their staff become more environmentally conscious by providing workshops and training sessions on issues like energy saving, water preservation, trash management, and more.

Additionally, Green Key can work with other organizations to spread the word about how crucial it is to take care of the environment and get out and see the world. Establishing a monitoring system, rewarding sustainable behaviors, and actively promoting environmental education are all essential components of the Green Key strategy for improving compliance and sustainability. By implementing these suggestions, Green Key will be better able to advocate for sustainable tourism practices and protect the world for future generations, two of its primary goals.

Increasing awareness and education about Green Key regulations :-

Awareness and education about the rules established in Green Key legislation are essential in promoting sustainability. Only hotels and motels that go above and beyond in terms of social and environmental responsibility are given the Green Key eco badge. It's regrettable, but many companies still lack an understanding of these regulations and how they could affect their firm. Together, we can build a better future by spreading awareness about Green Key requirements among tourists and local businesses. Green Key requirements can help instill a sense of responsibility in tourists and sway them toward eco-friendly lodgings. Visitors can help save natural resources by staying at hotels that

have been awarded the Green Key accreditation for their practices. In addition, by raising awareness about the evaluation process required to acquire the Green Key certification, we equip tourists to make more informed decisions.

It is possible that informing businesses of the advantages of meeting Green Key standards will encourage them to incorporate eco-friendly practices throughout their operations. Hotels that make an effort to comply with rules benefit from increased guest interest and the opportunity to save money by cutting back on resources like water and power. Businesses can learn how to effectively implement practices and meet Green Key criteria with the help of training and materials that are made available to them.

It is crucial to raise awareness and educate individuals about Green Key requirements in the tourism industry to promote compliance and sustainability. Greener business and tourism practices are possible with proper education. In addition to helping our natural resources and ecology as a whole, this will also benefit some local businesses and tourists.

Providing financial incentives for businesses to adopt sustainable practices :-

Providing monetary incentives to businesses could encourage them to adopt the practice. For businesses that implement environmentally friendly practices, the government may offer financial incentives in the form of tax breaks. Businesses are encouraged to invest in processes and resources by these incentives. Not only does this help the environment, but it also has long-term financial benefits. By means of tax incentives, grants, and subsidies, governments can play a role in promoting practice adoption. Businesses may find it easier to make the transition to new technology if financial incentives are provided.

Furthermore, governments might set up finance schemes for businesses that value sustainability, providing them with advantages such as lower interest rates or longer repayment periods. These measures can help reduce stress for business owners. Motivate people to put their money into sustainable projects. Additionally, patrons and financiers may present their own incentives. Customers may increase their purchases from businesses that show they value their operations. Similarly, investors may be compelled to support businesses that place a premium on sustainability. One way to encourage positive change is to provide financial incentives, such as tax cuts, to businesses that adopt new policies.

Strengthening enforcement mechanisms for Green Key certification :-

If the Green Key certification method is to be taken seriously and used effectively, mechanisms for enforcement must be put in place. Self-reporting and self-regulation by participating businesses are crucial to the success of the program at the present time. This does a wonderful job of increasing openness and trust among involved businesses, but it also makes compliance with standards more challenging. In order to address this issue, it is crucial to implement a monitoring system that may detect infractions or noncompliance and prompt corrective measures. To achieve this goal, the company should undergo audits and inspections by impartial experts. Increasing the time between these checks will make manipulation and biased reporting less likely.

Companies would be less likely to shirk their commitments if they knew they may be penalized

financially and have their Green accreditation revoked if they failed to comply. To further enhance accountability and transparency, it is recommended that all businesses that have been granted Green Key certification create a common database or online platform to which they may contribute their data and reports. This would make keeping tabs on and rating the firms' progress much less of a headache.Keeping the Green Key accreditation credible and ensuring its effectiveness in promoting compliance and sustainability in the hotel business requires the execution of enforcement mechanisms. Green Key is an environmental certification bestowed upon lodging accommodations, and the accompanying set of rules helps to ensure that these businesses act ecologically responsibly. To fully appreciate the value of Green Key, it is necessary to fully grasp its underlying ideas and goals.

The primary purpose of Green Key is to encourage hotels to adopt environmentally friendly business practices by rewarding those who do so. By adhering to stringent sustainability requirements in areas like waste management, energy and water conservation, and the use of environmentally preferable products, lodging institutions like hotels and hostels can earn the Green Key designation. Green Key's legislative framework elucidates the processes that lodging businesses must follow to ensure that these objectives are met. It specifies the actions that must be taken to keep tabs on the facilities' progress toward meeting their required criteria and file the necessary reports. Implementing recycling programs, shifting to renewable energy, and constructing water-efficient plumbing systems are all possible steps in this direction. In addition, Green Key's framework mandates the production of reports on sustainability policies and outcomes, which promotes openness and responsibility.

Members of the lodging industry that adopt and adhere to these standards can help to lessen the environmental impact of the tourism industry. Achieving the greater environmental goals of reducing resource use and protecting natural ecosystems is greatly aided by facilities that comply with the standards specified by Green Key and earn the coveted eco badge. Green Key is a global group that encourages sustainable practices by creating voluntary guidelines. By outlining the standards that hotels must meet to be environmentally responsible and sustainable, the legal framework lends its support to the Green Key program as a whole.

Conclusion :-

Protecting and ensuring the long-term viability of the environment are critical goals for the legal framework known as Green Key. By granting Green Key certification to hotels and other accommodation types that meet strict criteria, the tourism industry has been encouraged to adopt more environmentally friendly business practices. These standards include all aspects of sustainable practice, from product procurement to recycling to ecologically sound resource management. To ensure they meet the standards set forth by the Green Key program, businesses must follow the guidelines and requirements outlined in the program's underlying structure. Having access to this framework is critical to maintaining compliance and achieving long-term goals. Guests are better informed and more likely to participate in resort-wide initiatives to reduce their environmental impact thanks to the resort's Green Key program. Increased demand from travellers for lodgings emphasizes the need for participating businesses to meet the program's requirements and foster a more sustainable tourism industry.

However, it is critical to deal with the challenges and limits that may arise throughout the green framework's implementation. The absence of international and regional uniformity makes these issues much more challenging to address. It is essential to first establish a standard and a framework that all involved institutions can adhere to consistently in order to maximize the good benefits of this framework.

Evaluating and keeping tabs on participating businesses is crucial to ensuring the program's standards are maintained. By acting in any way that is not up to par with what is generally considered to be proper.

Green Key's legislative framework is a useful instrument for fostering eco-friendly business practices and guaranteeing the tourism industry's long-term viability. We can improve eco-behavior monitoring and enforcement, as well as public awareness, if we can unlock this framework. A more efficient legal framework for Green Key must take into account potential difficulties and constraints during implementation.

References :-

1. Berrone, P. A. S. C. U. A. L. (2009). Green keys to unlock competitive advantage. ISIE Insight, 2, 50-57.
2. Düwell, M., Bos, G., & van Steenbergen, N. (2018). Towards the ethics of a green future. Taylor & Francis.
3. Gardetti, M. A., & Torres, A. L. (Eds.). (2017). Sustainability in Hospitality: How innovative hotels are transforming the industry. Routledge.
4. Kwok, A. G., &Grondzik, W. (2018). The green studio handbook: Environmental strategies for schematic design. Routledge.
5. Last, A. (2021). Business on a Mission: How to Build a Sustainable Brand. Routledge.
6. Iannuzzi, A. (2017). Greener products: The making and marketing of sustainable brands. CRC press.
7. Rogers, D. (2019). Environmental compliance and sustainability: global challenges and perspectives. CRC Press.
8. Shishlov, I., Morel, R., & Cochran, I. (2016). Beyond transparency: unlocking the full potential of green bonds. Institute for Climate Economics, 2(32), 1-28.
9. Sakrak, O. A., Battersby, B., Gonguet, M. F., Wendling, C., Wendling, M. C. P., Charaoui, J., & Petrie, M. (2022). How to Make the Management of Public Finances Climate-Sensitive–"Green PFM". International Monetary Fund.
10. Vollmer, D. (2009). Enhancing the effectiveness of sustainability partnerships: Summary of a workshop. National Academies Press.
11. Wood, J. D. (2014). The Role of Legal Compliance in Sustainable Supply Chains, Operations, and Marketing. Business Expert Press.

Mobile: 8005728270
E-mail: aayushipareek7@gmail.com